प्रकाशक—गोविन्दभवन-कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर

संवत् २०२३ से २०३५ तक ४०,०००
सवत् २०४४ पाँचवाँ संस्करण १०,०००
कुल ५०,०००

मूल्य चार रुपये

जीवनमें नया प्रकाश

याद रखिये, पूर्वजन्मोंके अनेक पुण्यों तथा सत्कार्योंके फल-स्वरूप यह बहुमूल्य मानव-जीवन आपको ईश्वरकी धरोहरके रूपमें प्राप्त हुआ है। इसे पाकर दुखी, निराश या भयभीत रहना—एक प्रकारका पाप है। इसके भागी मत बनिये।

आप तनिक-सी विपत्ति या दुःखसे अनायास ही डर जाते हैं। थोड़ी-सी परीशानीसे घबड़ा जाते हैं, यह एक मानसिक कमजोरी है। सुख-दुःखका कारण बाह्य परिस्थितियाँ नहीं, प्रत्युत मनुष्यकी मनःस्थिति ही है। उस कायर मनःस्थितिको दूर कीजिये।

जिसका मन बलवान् है, जिसकी विवेक-बुद्धि संतुलित रहती है और जिसकी संवेदनशीलता छुई-मुईकी तरह सुकुमार नहीं है, वह मनुष्य दुःखको आसानीसे झेल लेता है। आप ऐसे ही बनें।

जिस धैर्यवान्‌ने दुःखके अस्तित्वमें विश्वास नहीं किया, जो कष्टों और आपत्तियोंको उद्बोधन, सतर्कता, सावधानी और कर्मठताका हेतु मानता है, वह सुखोंसे अधिक दुःखोंसे लाभ उठाता है।

शत्रु यदि मिलकर आक्रमण कर देते हैं, तो हमें हरा देते हैं, किंतु यदि हम उन्हें अलग-अलग कर उनसे संघर्ष करें, तो हम उन्हें अनायास ही हरा सकते हैं। कठिनाइयोंका जमघट हमें परीशान करता है। उन्हें चुन-चुनकर पृथक् कीजिये और

एक-एकसे निपटिये। आप परीशानीको अवश्य परास्त करके रहेंगे। याद रखिये—

जीवनं त्विदं मृषेति पामरा जना वदन्ति।
नैव तत्तथा ततोऽत्र संयतस्व जीवनाय॥ १॥

यह जीवन मिथ्या है, ऐसा मूर्ख और पामर लोग ही कहते हैं। यह जीवन मिथ्या नहीं है। उच्च कार्योंके लिये बना है। यश, प्रतिष्ठा, सेवा, नेतृत्व, धर्म, अर्थ, मोक्ष इत्यादि सब श्रेष्ठ कर्म आपको करने हैं। इसीलिये इस संसारमें जीनेका यत्न कीजिये।

मानव-जीवन सत्य है। चट्टानकी तरह सुदृढ़ है। लगभग सौ वर्षोंतक निर्विघ्न चलनेवाला है। यदि आप व्यर्थकी काल्पनिक परीशानियोंमें न फँसें, तो धीरे-धीरे सब जटिल समस्याएँ स्वयं सुलझनेवाली हैं। आप व्यर्थ ही डर रहे हैं। इस कायरताका त्याग कीजिये।

प्राप्य मानवीयजन्म पुण्यकर्मसंचयेन।
दीनदुःखिरक्षणेन संयतस्व जीवनाय॥ २॥

इस सुरदुर्लभ मानव-जन्मको पाकर पवित्र कर्मोंका संचय और दीन-दुखियोंकी सेवा-रक्षा करते हुए जीनेका यत्न कीजिये।

मनुष्य-जीवन शुद्ध अर्थोंमें 'मनुष्य' ही बननेके लिये है। उन देवोपम गुणोंका अर्जन करें, जिनसे मनुष्य देवपद प्राप्त करता है।

सत्पथानुवर्तनेन भव्यभावभावनेन ।
लोकसम्प्रसारणेन संयतस्व जीवनाय ॥ ३ ॥

मित्रो! सदाचारके मार्गपर चलते हुए, सुन्दर समुन्नत विचारोंको रखते हुए और लोक-कल्याणका प्रसार करते हुए जीनेका यत्न करो।

आप हाड़-मांसके पिण्ड नहीं हैं, अनेक दैवी शक्तियोंसे सम्पन्न साक्षात् इन्द्र हैं। अनेक वज्रोंके स्वामी हैं। आप साहस-हीन कदापि न हों। अपनी विशेषताएँ मालूम करें और सतत उनका विकास करें।

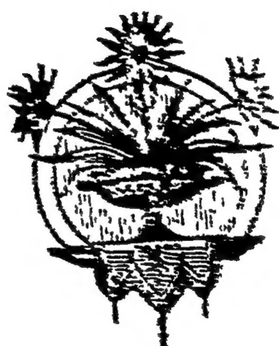
दैन्यभावभञ्जनेन धैर्यधर्मधारणेन ।
वीरतासमाश्रयेण संयतस्व जीवनाय ॥ ४ ॥

आप दीनताके डरपोक भावको दूर करते हुए, धैर्यरूपी धर्मको धारण करते हुए, वीरता और आत्मविश्वासके साथ इन पृष्ठोंमें बताये हुए मार्गपर चलनेका प्रयत्न करें।

यह जीवन ही आपका समस्त संसार है। बहुमूल्य है। बार-बार इस पृथ्वीके स्वर्गका आनन्द प्राप्त नहीं होता। पता नहीं, भविष्यमें मिले अथवा न मिले। इसलिये संकट या विपत्ति कुछ भी हो, कैसी भी कठिन परिस्थिति क्यों न हो, जीवनकी रक्षा, विकास, विस्तार और उन्नतिका बराबर यत्न करते चलिये।

महेन्द्र-साहित्यसदन
नयापुरा, कोटा (राजस्थान)

डा० रामचरण महेन्द्र
एम्० ए०, पी-एच्० डी०



श्रीहरिः

विषय-सूची



श्रीहरिः

(घोर अन्धकारके बाद)
जीवनमें नया प्रकाश

वे गिरे, गिरकर उठे, उठकर चले !

जब भगवान् बुद्ध हताश हुए

निराशा किसके पास नहीं आती ! मनुष्य और देवता सभी इस दुर्गुणसे परेशान हुए हैं; किंतु उन्होंने अपने आत्मबलसे इसे पछाड़ा है और निरन्तर आगे बढ़े हैं।

भगवान् गौतम बुद्ध जीवनके रहस्योंको माल्रुम करनेके लिये बहुत दिनोंतक तपस्या और कठोर साधनामें लगे रहे। उन्होंने शरीरको भी पर्याप्त कष्ट दिया, खूब चिन्तन किया, पर आत्मज्ञानकी प्राप्ति नहीं हुई।

उन्हें कठिनाइयों और परेशानियोंने विक्षुब्ध कर दिया। क्या करें। वे साधना करते-करते जैसे थक गये थे। पर्वत-जैसे ऊँचे

आकारवाली परेशानियोसे त्रस्त होकर वे हताश हो गये। या यों कहिये कि वे कर्तव्य छोड़कर धड़ामसे गिरे............

'अब मैं और अधिक कठिनाइयाँ सहन नहीं कर सकूँगा। मैं मानवताके सुख और समृद्धिके अपने उच्च लक्ष्यको छोड़ता हूँ।'— ये कायरताके शब्द उनके मनमें लगातार घूम रहे थे।

उन्होंने अपनी तपस्या मध्यमें ही छोड़कर घर लौटनेका निश्चय कर लिया।

वे मन-ही-मन कह रहे थे, 'मैं व्यर्थ ही इतनी परेशानियोंमें पड़ा रहा। मैने जीवनके रहस्योको मालूम करनेमें बहुत-सा समय नष्ट कर दिया, पर हाय! कुछ हाथ नहीं आया। इतना समय, परेशानी, शारीरिक और मानसिक कष्ट सब व्यर्थ हो गया। अब सब मुसीबतें छोड़ता हूँ।'

निराशा, अविश्वास और पराजयकी कायर भावनाओंने उन्हें विक्षुब्ध कर दिया। वे लौट पड़े वापस घरके लिये।

लड़खड़ाते कदमोंसे वे वापस आ रहे थे। मार्गमें उन्हें प्यास लगी। जल पीनेके लिये वे एक झीलके किनारे गये। जल पिया, विश्राम किया, मन कुछ ठंडा हुआ। सामने एक अजीब दृश्य देखा—

एक नन्ही-सी गिलहरी झीलके जलमें अपनी पूँछ भिगो-भिगोकर पानी बाहर छिड़क रही है। एक बार, दो बार, दस बार,

बीस बार, सैकड़ों बार—यही काम कर रही है । वह जलमें पूँछ भिगोती है, सूखी धरतीपर जाती है और पानी बाहर झाड़ आती है । उन्हें उससे बातें करनेकी बड़ी उत्सुकता हुई ।

'प्यारी गिलहरी ! तुम यह क्या कर रही हो ?'

वह दृढ़ताभरे स्वरमें बोली—'इस झीलके पानीने मेरे बच्चोंको बहाकर मार डाला है । उससे बदला ले रही हूँ । झीलको इस प्रकार सुखाकर ही छोड़ूँगी ।'

उसने फिर अपना काम पूर्ववत् शुरू कर दिया ।

बुद्ध बोले, 'झीलको सुखा रही हो ? बिना किसी बरतनके पानी बाहर फेंक रही हो । तुम्हारी छोटी-सी पूँछमें भला कितनी बूँदें सूख पाती होंगी । तुम्हारे इतने छोटे शरीर, थोड़े-से बल और सीमित साधनोंसे भला कैसे यह विशाल झील सूख सकेगी ? इसमें न जाने कितने युगका समय लग जायगा, तुम्हारी आयु ही कितनी है ? इतना बड़ा काम और इतने सीमित साधन ! यह सब व्यर्थ होगा ! व्यर्थ क्यो अपनी शक्तिका अपव्यय कर रही हो ? तुम इस झीलको कभी खाली न कर सकोगी ।'

गिलहरीने निर्भयता और दृढ़तासे भगवान् बुद्धकी ओर देखा; फिर वह दृढ़ शब्दोंमें बोली—

'यह झील कब खाली होगी या नहीं होगी—यह मैं नहीं जानती, न इसकी कोई परवा ही करती हूँ । मैं दृढ़तापूर्वक अपने काममें निरन्तर लगी रहूँगी । श्रम करना, लगातार अपनी लक्ष्यपूर्तिमें

लगे रहना, कठिनाइयोंका सामना करना और अन्तमें विजय प्राप्त करना मेरी योजना है।'

भगवान् बुद्धके मनमें फिर उथल-पुथल हुई।

वे सोचने लगे, 'जब यह नन्ही-सी गिलहरी अपने थोड़े-से साधनोंसे इतना बड़ा कार्य करनेके स्वप्न देखती है, तब भला मैं स्वस्थ मस्तिष्क और सुदृढ़ शरीरवाला विकसित मनुष्य अपने लक्ष्यकी पूर्ति क्यों न कर सकूँगा।'

वे फिर वापस अपनी साधनाके लिये लौट गये। उन्होंने फिर जंगलोंका कठिन जीवन बिताने और घोरतम तपस्या करनेका निश्चय किया।

एक दिन वे अपने लक्ष्यमें सफल होकर ही रहे।

कठिनाइयोंसे लड़ने और उनपर विजय प्राप्त करनेसे मनुष्यमें जिस आत्मबलका विकास होता है, वह एक अमूल्य सम्पत्ति होती है और उसको प्राप्तकर मनुष्यको अपार संतोष होता है।

न्यूटनने दुबारा प्रयत्न किया

सर आइजक न्यूटन संसारके प्रसिद्ध वैज्ञानिक थे। उन्होंने प्रकाश और गुरुत्वाकर्षण, ग्रह और नक्षत्रों आदिके सम्बन्धमें अद्भुत खोजें की थीं। दिन-रात वे परिश्रम करते रहते थे।

अपने वैज्ञानिक अनुसंधानोंके लिये उन्होंने सरकारकी ओरसे महान् यश प्राप्त किया। उन्हें पार्ल्यामेन्टका सदस्य बनाया गया और 'सर' की उपाधिसे विभूषित किया गया।

वे सांसारिक यश और सम्मानोंकी चिन्ता न कर अपने लक्ष्यकी साधनामें लगे रहते थे। उन्होंने अनुभव किया कि उन्हें अभी बहुत करना शेष है।

एक बारकी बात है। तब उनकी आयु पचास वर्षोंकी थी। वे बीस वर्षसे अधिक प्रकाशका सिद्धान्त मालूम करनेके लिये श्रम कर चुके थे। कठोर अध्ययन और निरन्तर लेखन-कार्य चल रहा था।

एक बार रात्रिके समयसे लिखते-लिखते थक गये। मेजपर उनके अनुसंधानकी पुस्तक, आवश्यक कागज-पत्र बिखरे पड़े थे। लैम्प मेजपर जल रहा था। उनका छोटा कुत्ता डायमंड कमरेकी अंगीठीके सामने सो रहा था। मेजपर उन कागजोंके ढेरको छोड़कर, जिन्हें उन्होने बीस वर्षोंमें तैयार किया था, वे कुछ देरके लिये घूमने बाहर चले गये।

न जाने क्या हुआ, जब उसका स्वामी बाहर था, छोटा कुत्ता कूदकर मेजपर चढ़ गया। लैम्प उलट गया और तुरंत ही कागजोंमें आग लग गयी।

जैसे ही विनाश पूर्ण हुआ, न्यूटन बाहरसे आये। कमरेमें प्रवेश करते ही दंग रह गये।

'हाय ! यह क्या !' बीस वर्षका उनका परिश्रम राखके ढेरमें बदल गया था।

जिन पुस्तकों, अनुसंधान-सम्बन्धी कागजोंको तैयार करनेमें, एक-एक नयी बातको एकत्रित करनेमें उन्हें रात-रातभर जागना

पड़ा था, जिनके बलपर वे संसारको एक नयी चीज देना चाहते थे, जो उनके जीवनका प्रधान लक्ष्य था, वह सब राखके ढेरमें एकाएक बदल गया था।

इन सबकी हानि करनेवाला कसूरवार डायमंड वहीं खड़ा न्यूटनकी ओर अबोध नेत्रोंसे देख रहा था।

बीस वर्ष! कठोर श्रम! जीवनभरकी कठिनाइयाँ! समस्त सुख-सुविधाओंको तिलाञ्जलि·······मुसीबतोंसे संघर्ष! उफ! कितना दुःख! कितनी भारी निराशा!

और कोई होता, तो कदाचित् मानसिक आघातसे पागल ही हो जाता।

अथवा क्रोधसे उन्मत्त होकर तुरंत ही उस छोटे कुत्तेको मृत्युदण्ड दे देता!

न्यूटनमें मुसीबतोंमें भी मानसिक संतुलन स्थिर रखनेकी अद्भुत आत्मशक्ति थी। वे मानते थे कि कठिनाइयोंसे गुजरे बिना कोई अपने लक्ष्यको नहीं पा सकता। वे कहा करते थे कि जिस उद्देश्यका मार्ग कठिनाइयोंके बीचसे नहीं जाता, उसकी उच्चतामें संदेह करना चाहिये। कठिनाइयाँ मनुष्यको चमकाने और उसे तेजस्वी बनानेके लिये ही आती हैं। कठिनाइयोंका साधनामें वही महत्त्व है, जो उद्योगमें श्रमका और भोजनमें रसका है।

न्यूटनने अपनी सदैवकी-सी दयासे कुत्तेके सिरको थपथपाया, यद्यपि उनका हृदय दुःखसे भग्न था।

'ओ डायमंड ! डायमंड !! जो हानि तूने की है, उसे तू नहीं जानता !

इस घटनाके कुछ समय बादतक न्यूटनके स्वास्थ्य और मानसिक शक्तियोंपर निराशाका दूषित प्रभाव रहा । उस छोटे कुत्तेके प्रति उनके व्यवहारका आप अनुमान लगा सकते हैं ।

लेकिन उन्होंने फिर साहस और उत्साहसे अपनी खोयी हुई शक्ति एकत्रित की । फिर समस्त कार्य किया । इस सब अनुसंधान और खोजमें उन्हें बहुत अधिक परिश्रम और कठोर साधना करनी पड़ी । उन्होंने फिर उत्साहसे अपना कार्य जारी रक्खा और अन्तमें उन्होंने पूर्ण सफलता प्राप्त की ।

कठिनाइयाँ मनुष्यको चमकाने और तेजस्वी बनानेके लिये ही आती हैं । मुसीबतोंसे लोहा लेकर ही मनुष्यका चरित्र चमकता है और वह मनुष्यत्वसे देवत्वकी ओर बढ़ता है । कहा भी है—

रुहो रुरोह रोहितः । (अथर्ववेद १३ । ३ । २६)

अर्थात् उन्नति उसकी होती है, जो प्रयत्नशील है । भाग्यके भरोसे बैठे रहनेवाले सदा दीन-हीन ही रहेंगे ।

ब्रूस आखिर जीत गया

स्काटलैंडका राजा ब्रूस अपने शत्रुओंद्वारा पराजित हुआ । उसके सङ्गी-साथी छूट गये । धन-जनकी बड़ी हानि हुई । जीवन बड़ा लाञ्छित और पराजित था । बस, यों कहिये कि किसी प्रकार जीवनमात्र बच गया था । शत्रु उसकी टोहमें थे ।

प्राण बचानेके लिये वह भागा-भागा फिर रहा था। मौत उसपर अपने क्रूर पंजोंको फैलाये नाच रही थी। स्थिति यह थी कि अब मरा, अब मरा!

राजा ब्रूस एक खोहमें छिपा बैठा अपनी मृत्युकी प्रतीक्षा कर रहा था। कैसी क्रूर होगी उसकी मौत! शत्रुकी तलवार पलभरमें उसका काम तमाम कर देगी। उफ!!

वह गिरा, गिरकर मन-ही-मन छटपटाता रहा। उसकी आत्मा किसी आश्रयकी खोजमें थी। उसने सामने एक दृश्य देखा।

एक नन्ही-सी मकड़ी खोहके मुँहपर जाला बुननेमें सतत और अथक प्रयत्नशील थी। वह बार-बार गिरती, बार-बार उठती। कई बार धूलमें गिरी; कई बार अपने शरीरको झाड़कर उठी और फिर नये उत्साहसे उसने जाला बुननेका प्रयत्न किया।

'यह व्यर्थका प्रयत्न कर रही है। इसके पास कोई आधार नहीं है। बिना आधार अपना जाला बुननेका प्रयत्न कर रही है। बार-बार असफल हो रही है। यह कभी भी जाला न बुन पायेगी। मर जायगी।' ब्रूस यही सोच रहे थे।

आश्चर्य! बड़ा आश्चर्य! ब्रूसने देखा कि मकड़ीका एक झीना-सा सूत्र खोहके मुँहपर अटक गया।

अब क्या था! एकके बाद कई सूत्र अटके और मकड़ीका जाला बुना जाने लगा। थोड़ी देर बाद पूरी खोहके मुँहपर जाला तैयार था।

शत्रुके सिपाही उधर आये, किंतु खोहपर मकड़ीका बुना हुआ जाला देख वापस लौट गये । जब जाला है, तो अंदर कोई कैसे हो सकता है ?

आयी हुई मौत तो वापस लौट गयी, पर ब्रूसको एक गहरे विचारमें निमग्न छोड़ गयी !

वह अब सोच रहा था, 'जब यह मकड़ी बार-बार गिर-गिरकर भी निराश और परास्त नहीं हुई, तो मैं तो मजबूत हाथ-पाँववाला आदमी हूँ । मै तो बहुत कुछ कर सकता हूँ । मैंने कैसी गलती की कि तनिक-सी हारसे निराश हो गया और प्रयत्न करना छोड़ किस्मतको दोष देने लगा । मुझमें कायरता आ गयी । उसने मेरी ऊँची ताकतों-को शिथिल कर दिया । लेकिन यह मकड़ी मुझे नयी प्रेरणा दे गयी है । अब मै फिर पूरी ताकतसे प्रयत्न करूँगा । मैं अवश्य जीतूँगा । मै अपने शत्रुओंको जरूर परास्त करूँगा; क्योंकि इस मकड़ीने मेरा संकल्प मजबूत कर दिया है ।' वह खोहसे निकल आया । अब वह बिल्कुल बदला हुआ नया आदमी था ।

वह चुपचाप लौट गया । अपने बिछुड़े हुए साथियोंको संगठित किया और अन्तमें विजयी हुआ ।

ब्रूसके जीवनका निष्कर्ष निम्न पंक्तियोसे स्पष्ट होता है—

'मनुष्यका विकास कठिनाइयोंसे सदा लड़ते रहनेसे होता है । जो व्यक्ति कठिनाइयोंसे जितना दूर भागता है, वह अपने-आपको उतना ही निकम्मा बना लेता है और जो उन्हें जितना ही आमन्त्रित करता है, वह अपने-आपको उतना ही वीर और साहसी

बनाता है। इच्छाशक्तिका बल बढ़ानेके लिये सदा-सर्वदा जीवनभर कठिनाइयोंसे लड़ते रहना आवश्यक है।

जिसने निराश होना नहीं जाना

एक आधुनिक व्यक्तिकी निराशा-आशा, हार-जीत और संघर्ष-विजयका यह वृत्तान्त देखिये, कितना प्रेरक है। यह आदमी तीस वर्षोंतक निराशासे युद्ध करता रहा और अन्तमें उसने निराशाको परास्त कर ही दिया।

बार-बार हारपर भी हिम्मत न हारी और अन्तमें विजय प्राप्त की। सन् १८३१ में उस व्यक्तिको व्यापारमें बड़ी हानि हुई। हाथका संचित सारा रुपया जाता रहा। उसने सोचा था, व्यापारके क्षेत्रमें मैं सबसे ऊँचा उठ सकूँगा; पर उसे इस नुकसानसे ज्ञात हुआ कि व्यापारका क्षेत्र उसके लिये नहीं था।

फिर भी वह परास्त नहीं हुआ। उसने मन-ही-मन कहा, 'बाहरी कठिनाइयाँ तो बदलती रहती है। मनुष्यकी सच्ची कठिनाइयाँ तो आन्तरिक हैं। वे मुझमें नहीं हैं। मै अब नये क्षेत्रमें उन्नतिका प्रयत्न करूँगा।'

निर्बल तथा निराश मन सदा कायरताकी अभद्र कल्पनाएँ किया करता है। पर यह व्यक्ति सदासे आशावादी था। वह मनसे साहसी और शूरवीर था। वह मनमें दृढ़तासे विश्वास किये हुए था कि मैं अपने चारों ओरकी विपत्तियोंको मनोबलसे परास्त करके ही रहूँगा। अतएव उसने कठिनाइयोंसे सदा लड़नेका रास्ता चुना।

अब उसने अपने देश—अमेरिकाकी लेजिस्लेचरमें चुनाव लड़ा। खूब तैयारियाँ कीं। राजनीतिक दाँव-पेंच काममें लिये। जनताकी खूब सेवा की। सबको अपने पक्षमें करनेके लिये सच्चाई और ईमानदारीके सब साधन अपनाये। उसे सफलताकी पूरी आशा थी—

लेकिन हाय! लेजिस्लेचरके चुनावमें उसकी हार हुई। १८३२ का वर्ष उसके लिए व्यर्थ गया !

वह फिर सोचने लगा, 'शायद मैंने गलती की है ? क्यों न एक बार फिर व्यापार ही करूँ ?' उसने फिर व्यापार प्रारम्भ किया।

सन् १८३३में उसे व्यापारमें फिर भयंकर नुकसान हुआ। अब क्या करे ? कौन-सा क्षेत्र ठीक रहेगा उसके लिये ? उसने १८३४ में फिर नये उत्साहसे, नयी तैयारीसे लेजिस्लेचरका चुनाव लड़ा।

सन् १८३५में भाग्यने एक ठोकर और मारी। यह उसके व्यक्तिगत जीवनसे सम्बन्धित थी। इस वर्ष उसकी प्रिय पत्नीकी मृत्यु हो गयी !

साधारण आदमी शायद इस मानसिक आघातसे पागल हो जाता; पर उसका गुप्त साहस और कार्यक्षमता बढ़ती जा रही थी। वह हिम्मत बाँधे हुए था। कठिनाइयोंसे लड़ते-लड़ते सन् १८३६ में वह स्नायु-रोगसे पीड़ित हो गया। उसने फिर स्पीकरके चुनावमें लड़नेका प्रयत्न किया।

लेकिन आपत्तियाँ एकके बाद एक उसपर बिजलियोंकी तरह टूटती ही रहीं।

सन् १८३८ में स्पीकरके चुनावमें हार !

जीवन फिर बहुत वर्षोंतक कठिनाइयोंसे लड़नेमें व्यतीत होता रहा । सन् १८४३ में लैंड-अफसरकी नियुक्तिमें हार !

भयंकर मानसिक आघात ! विधिका क्रूर चक्र !! मौतके कुटिल पंजे अब उसे दबोचनेके लिये बाहर निकल आये ।

फिर भी उसका उत्साह और शौर्य चलता रहा । उसने हिम्मत नहीं हारी । अब उसके मनोबल और विरोधी परिस्थियोंमें युद्ध चल रहा था । उसकी पराजय और भी हुई—

कांग्रेसके चुनावमें हार—१८४६ । फिर भी वह कठिनाइयोंसे लड़नेको तत्पर । दुबारा चुनावमें हार—१८४८ । वह फिर भी आपत्तियोंसे युद्ध कर रहा है । सिनेटके चुनावमें हार—१८५५ । वह जीवन-युद्धमें लगातार आगे बढ़ रहा है । विकट परिस्थितियोंसे भयभीत नहीं हो रहा है । वह वाइस प्रेसीडेंटके पदके लिये लड़ रहा है !

वाइस प्रेसीडेंटके चुनावमें हार—१८५६ ।

वह अपना सर्वस्व खोनेको तैयार है, पर खतरनाक परिस्थितियोंसे हार नहीं मान रहा है । जमकर पूरी हिम्मतसे लड़ रहा है । वह अपनेमें ही नहीं, आस-पासके व्यक्तियोंमें भी वीरताके भाव जाग्रत् कर रहा है ।

सिनेटके चुनावमें हार—१८५८ ।

उसे सत्ताईस लंबे वर्ष संघर्ष करते-करते व्यतीत हो गये हैं; पर उसका साहस दृढ़ है । कोई और व्यक्ति होता तो दस बार

टूटकर समाप्त हो जाता, पर वह कठिनाइयोंपर विजय प्राप्त करनेमें लगा हुआ है। वह कठिनाइयोंको परास्त करके रहेगा।

समय बदलता है। अब परिस्थितियाँ उसके पक्षमें हो रही हैं। वह स्वावलम्बनमें विश्वास रख रहा है। लीजिये, वह जीत गया। विजयश्री उसे प्राप्त हो गयी है।

प्रेसीडेंटके चुनावमें जीत—१८६० और सर्वोच्च पदकी प्राप्ति, तीस वर्षोंतक निराशाके झूलेमें झूलते रहनेपर भी आशाकी ज्योति, पूर्ण विजय, सार्वजनिक सम्मान, यश और विजय-वैजयन्तीको फहरानेवाला यह साहसी पुरुष कौन था।

यह गाँवका एक गरीब युवक था।

यह वह साहसी व्यक्ति था, जो इच्छाशक्तिके कारण मुसीबतोंके तूफानसे घिर जानेपर भी कभी निराश नहीं हुआ।

यह वह आदमी था, जिसने दुर्भाग्यके आगे कभी हार नहीं मानी, दृढ़ आत्मविश्वासका सम्बल लेकर नित्य-नवीन उत्साहसे जीवन-पथपर आगे बढ़ता चला गया।

वह था अमेरिका-जैसे विशाल देशका भूतपूर्व राष्ट्रपति—। अब्राहम लिंकन

अब तनिक सोचकर देखिये, यदि यह व्यक्ति एक-दो हार या पराजयोंसे भयभीत हो साहस छोड़ देता, तो तीस वर्षों बाद कैसे इतना यश और सम्मान प्राप्त कर सकता था।

फिर आप तनिक-सी मुसीबतसे क्यों निराश हो रहे हैं? साहसी बनिये और उसका व्यापक अर्थ समझिये—

एच० जी० वेल्सका दृष्टिकोण देखिये। आज साहसिकताका परिवर्तित अभिप्राय क्या है? वे कहते हैं—

पहलेके जमानेमें शूरवीरता और साहसिकताका जो मतलब था, वह अर्थ आज बदल चुका है। कलकी वैयक्तिक साहसिकता आज सामूहिकतामें बदल चुकी है।

पहले कोई एकको विजय कर लेनेमें साहसी और वीर समझा जाता था, किंतु आज उस छोटे दायरेका कोई महत्त्व नहीं रह गया है। अपने व्यक्तिगत साहसको केवल अपनी व्यक्तिगत भलाईके लिये काममें लाना, आजके जमानेमें अच्छा नहीं समझा जायगा।

आजकी साहसिकतामें वे सभी कार्य शामिल हैं, जो मनुष्यकी भलाईके हैं। आज नवीन ग्रहमण्डलोंकी खोज, उनपर मनुष्यकी विजय-पताका फहरानेको साहसिकता कहा जायगा। आज गंदी बस्तियों और ग्रामोंमें धनहीन होते हुए भी जागरण और जीवन लानेके प्रयत्नको साहसिकताकी परिधिमें लाना होगा। आज गरीबी, भुखमरी, अज्ञान, अशिक्षा, मलिनता, पशुता और अत्याचारके विरुद्ध संग्राम छेड़ना साहसिकता है। मानवजातिके सबसे बड़े शत्रुके विरुद्ध अभियान साहसिकताका प्रमाण है।

प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय। (अथर्ववेद १२।२।२२)

याद रखिये, यह जीवन हँसते-खेलते जीनेके लिये है। चिन्ता, भय, शोक, क्रोध, निराशा आदिमें पड़े रहना महान् मूर्खता है।



सब माननेकी बात है !

हमारी शक्तियोंका हमें ज्ञान नहीं है । हम मामूली चालसे चलते और आलस्यभरे दिमागसे विचार करते हैं । इस अधूरे प्रयास और थके हुए संकल्पबलके कारण हम जो कुछ हो सकते हैं, वह नहीं हो पाते । बहुत-से विद्यार्थी मामूली खेल-कूद, सस्ती नेतागिरी, फिल्म-एकटिंग तथा फैशनकी देख-रेखमें ही अपना मूल्यवान् जीवन समाप्त कर देते है और वर्षके अन्तमें फेल होकर अध्ययन छोड़ बैठते हैं । जब कि वे ही यदि मनोयोगपूर्वक श्रम करते तो प्रसिद्ध डाक्टर या इंजीनियर बन सकते थे । वे अपनी गुप्त सोयी हुई मानसिक शक्तियोंको नहीं जानते । इसीलिये ऊपरके स्तरवाला जीवन व्यतीत करते हैं ।

जो मामूली श्रम करेगा या आलस्यमें पड़ा अथवा देरतक सोया रहेगा, वह दो कौड़ीका साधारण नागरिक बनकर रह जायगा । ऐसे ओछे व्यक्ति, कामचोर एक ही स्थितिमें पड़े रहते हैं । वे कूपमण्डूक हैं । वे अपने बुजुर्गोंकी ही कमाई खाते रहते हैं । बड़ी-बड़ी जायदादें खतम कर डालते हैं और सदा दुःखोंसे पिसते रहते है ।

हम यह क्यों नहीं सोचते कि पुराने जमानेमें मनुष्यने जो कुछ किया है, हम उससे भी अधिक कर सकते हैं । हम प्राचीन-कालकी अपेक्षा आज अधिक चतुर, ज्ञानवान्, विवेकवान् और साधनसम्पन्न हैं ।

वास्तवमें सब कुछ कारण हमारे 'मानने'में है। यदि हम अपने-आपको मजबूत मानने लगें, हर शुभ कार्यमें समर्थ सोचने लगें, सफल कहने लगें, भाग्यवान् समझने लगें तो निश्चय ही बहुत ऊँचे उठ सकते हैं। हम अपनेको कुछ मानें, अपनी शक्तियाँ बढ़ावें, अपने अंदर विश्वास करें, फिर उसीके अनुरूप श्रम करें तो महान् पद प्राप्त कर सकते हैं।

हम मानते नहीं, विश्वास नहीं करते, इसलिये कार्य नहीं कर दिखाते। दुनियामें कोई भी कार्य पहले 'मान लेने'से होता है।

वस्तुतः जैसा हमारा 'मानना' होगा अर्थात् जैसा हमारा अपने विषयमें आधारभूत विचार होगा, वैसा ही फल होगा। गलत माननेका फल गलत और ठीक माननेका फल ठीक होता है। इस स्वर्णसूत्रका उदाहरण हम अपने जीवनमें क्षण-प्रतिक्षण देख सकते हैं।

यदि हम किसी बातका अस्तित्व मानते है, तो उसके अस्तित्वकी खोज करेंगे और न हुआ, तो हमारा मानना गलत था।

अपने मन, शरीर, आत्माकी शत-शत शक्तियोंका और संसारमें जितना हम कर सकते हैं, जो हमारी पहुँचके भीतर है जो वस्तुतः हमें कर ही डालना चाहिये, उस सबका ज्ञान हमें न होनेसे ही, उसका उपयोग न होनेसे ही हमें सर्वत्र दुःख, अभाव और शून्य प्रतीत होता है।

याद रखिये, सब शक्तियाँ, सूक्ष्म जगत्का सब भण्डार हमारे 'मानने'की बाट जोह रहे हैं कि हम उन्हें मान लें, तब वे प्रकट हों।

ये सब जाग्रत् और प्रकट होकर प्रकाशमें आनेके लिये हमारे विचारोंकी जादूभरी आज्ञाका रास्ता देखते हैं । हमने अपनेको जगत्‌में जैसा मान रक्खा है, वह बहुत थोड़े अंशोंमें सत्य है और अभी बहुत बड़े अंशोंमें गलत है ।

हमारा अस्तित्व हमारे आजके माननेकी अपेक्षा बहुत अधिक ऊँचा माननेपर निर्भर है । यदि हम अपनेको मनुष्य समझते हैं तो हमें प्राचीन वीरों, प्राचीन विद्वानोंसे भी बड़े अद्भुत करिश्मे कर दिखाने चाहिये । इतना ही नहीं, यदि हम अपनेको ईश्वरका सद्गुणी पुत्र समझ लें तो ईश्वरके सब गुण, दिव्य शक्तियाँ, आत्मज्ञान, सर्वोच्च शक्ति अथवा यों कहिये कि ईश्वरत्व हमें प्राप्त हो जाय ।

यदि हमें यह विश्वास हो जाय कि हम बलके देवता हैं । मनोराज्य हमारा है । हम पूर्ण स्वतन्त्र हैं, तो हम किसीका भी सहारा न लें । आवश्यकता है बस माननेकी और सवाल हल करनेकी ।

चींटी और शेर—दोनोंके उदाहरण सामने हैं । तुम किसके बच्चे हो । तुम्हारी कितनी महान् परम्पराएँ हैं । तुम कितना अधिक कर सकते हो ? तुममें कितनी अद्भुत शक्ति है ? तुम मालिक बनोगे या नौकर ? यह आज ही निर्णय कर लो ।

हमारे विश्वासमें, निश्चय और संकल्पबलमें क्या-क्या चमत्कार सम्भव हैं, यह अकथनीय है । हम अपनी शक्तियोंकी खोज ही नहीं करते । हम समझते हैं कि संसारकी जो चाल नजर आती है, वही हममें है । हम भी मामूली-से निरीह प्राणी हैं—यही हमारी गलती है ।

दूसरी कमजोरी यह है कि हमें अपने काममें उत्साह ही नहीं है। हम नीचोंको देखते हैं, अपने सम्बन्धमें साधारण-से विचार रखते हैं, फिर उन्नतिशील कैसे होंगे?

पर्वतकी चोटीपर दृष्टि जमानेवाला अवश्य यह इच्छा करेगा कि देखें तो वहाँ कैसा है। जो दृष्टि ही नहीं उठाता, वह भला उन्नतिके शिखरपर कैसे चढ़ेगा?

हम उन्नत पुरुषोंके विचारो, कार्यों एवं उनके जीवनको देखते ही नहीं, अपने आस-पास ही देखते है, मामूली-से ही संतुष्ट हो जाते है; फिर उन्नतिके विचार कैसे आवें और उन्नति कैसे हो?

प्राचीन और वर्तमान कालके महापुरुषोंने जो-जो बड़े कार्य किये हैं, उन्हें देखकर हम अचम्भा करते हैं और यह कहते हैं कि 'उन लोगोंमें शक्ति थी, इसीलिये उन्होंने यह महान् कार्य किया। हममें शक्ति नहीं है।' ऐसा मानना बड़ी भारी भूल है। उन लोगोंके बडे कार्योंको देखकर हमें भी इच्छा करनी चाहिये और उत्साह आना चाहिये कि हम भी वैसा ही, प्रत्युत उससे भी हजारगुना बड़ा और ऊँचा कार्य करें।

अपने प्रति अखण्ड विश्वाससे ही हम भविष्य बना सकते हैं?

नास्ति चात्मसमं बलम्।

अपनेपर भरोसे-जैसी दूसरी कोई शक्ति नहीं है।



आप अमृत-संतान हैं !

कुरुक्षेत्रके रणस्थलमें महाभारतका युद्ध प्रारम्भ होने जा रहा था। दोनों ओर सजी हुई कौरव और पाण्डवोंकी सेनाएँ सुसज्जित तैयार खड़ी हुई थीं। भयंकर घमासान युद्ध होनेकी आशंका थी।

शत्रु-पक्षमें अपने गुरुओं और सम्बन्धियोंको रणमें उपस्थित देखकर अर्जुन मोहवश कातर हो गये। युद्ध करें अथवा न करें? अपनी मातृभूमिके लिये उनका क्या कर्तव्य है? युद्धमें कितनी बड़ी हानि होगी, कितना नर-संहार तथा रक्तपात होगा—ये प्रश्न उनके मनको विक्षुब्ध करने लगे।

उनकी मनःस्थिति द्वन्द्वात्मक थी। मोहका आवरण पूरी तरह उनपर छाया हुआ था।

यह दशा देखकर योगेश्वर श्रीकृष्णने उन्हें एक अमृतमय उपदेश दिया। श्रीकृष्णजीके ये शब्द युग-युगसे प्रेरणाके केन्द्र

बने हुए हैं। असंख्य कवियोंने इन बहुमूल्य शब्दोंसे नित नयी प्रेरणाएँ, साहस, धैर्य और नयी शक्ति पायी है। आप भी इन शब्दोंको मन, वचन और कर्ममें धारण कीजिये। भगवान्ने अर्जुनको प्रोत्साहित करते हुए कहा—

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप॥

(श्रीमद्भगवद्गीता २।३)

अर्थात् हे अर्जुन! तुम हीन नहीं हो। तुम असमर्थ नहीं हो। तुम कायर नहीं हो। शरीर, मन अथवा आत्मासे किसी भी प्रकार दुर्बल नहीं हो।

तुम अमृत-संतान हो। वह व्यक्ति हो जो सत्-चित्, आनन्दस्वरूप है, अजर-अमर है, कभी क्षय न होनेवाला है। तुम आत्म-तेजके केन्द्र हो।

तुम मोह और संशयके आवेशमें आकर अपनेको दुर्बल, कायर या डरपोक समझ रहे हो। व्यर्थ ही तुम अपने-आपको क्षुद्र समझकर भयभीत हो गये हो।

हृदयकी समस्त दुर्बलताका परित्याग करो। मनके काल्पनिक शत्रुओंको सदा-सर्वदाके लिये निकाल फेंको। मनमें व्यर्थके दुर्बल विचारोंको मत आने दो। संकटका पूरे साहससे सामना करो और सैनिकके कर्तव्य-पथपर डटे रहो। यह शरीर नाशवान् है, पर तुम्हारा आत्मा अजर-अमर-अक्षय है।

ऊपर लिखे शब्दोंमें कायर व्यक्तियोंको भी साहसी और

निर्भय बना देनेकी अद्भुत शक्ति है। भगवान्‌के शब्द-शब्दमें हमारे लिये अमृतमय उपदेश भरा पड़ा है। यदि इस उपदेशको दैनिक जीवन और व्यवहारमें लाया जाय, तो भीरुता और कायरता दूर हो सकती है। हमारी अवनतिका कारण ये दोनों मनोविकार हैं। जहाँ कायरता आ जाती है, वहाँ मनुष्य, राष्ट्र और देशकी चहुँमुखी उन्नति स्वयं रुक जाती है। मनुष्यकी उत्तमोत्तम शक्तियाँ रुक जाती है। कायर व्यक्ति बे-सिर-पैरकी विघ्न-बाधाओंकी कल्पनाएँ कर अपना जीवन नरकमय बना लेता है।

स्वामी विवेकानन्दजीके महत्त्वपूर्ण विचार स्मरण रखें

स्वामी विवेकानन्दजीने अमेरिकामें एक महत्त्वपूर्ण भाषण किया था। उन्होंने जो कहा था वह आज भी नयी प्रेरणा देनेवाला है। स्वामीजीने कहा था कि "वेदका अन्तिम निश्चय यही है कि हम मायाबद्ध नहीं हैं, वरं पहलेसे ही मुक्त हैं और भविष्यमें भी मुक्त ही रहेगे। जो व्यक्ति यह कहता है कि 'मै मायाबद्ध हूँ'; 'दीन-हीन निर्बल हूँ'; 'मै असहाय या कायर हूँ'—वह व्यक्ति इन कमजोर विचारोंके कारण अपने ही हाथोंसे गर्दनमें जटिल फंदा लगाता है। निर्बलतासूचक भावना न तो मनमें लानी चाहिये, न वचनोद्वारा उच्चारण ही करनी चाहिये।"

वेदान्त कहता है कि 'जगत्‌की समस्त दुःखमय, कायरतापूर्ण स्थितियोंका मूलकारण यह मनकी कल्पना-जनित निर्बलता ही है। हम जिन संकटोंकी कल्पना करते हैं, वे वास्तवमें होने-जानेवाले हैं। मृत्यु और शोक कुछ भी नहीं हैं। हम केवल मायाके कारण

व्यर्थ ही शोकातुर हो जाया करते हैं। इसलिये ऐसी भ्रान्तियोंको त्याग दो, जिससे बड़े-बड़े दुःखोंका नाश हो जायगा।'

जीवनका प्रेम, साहस, धैर्य, शान्ति, उत्साह, विवेक—जब यह स्रोत हमारे चारों ओर प्रवाहित हो रहा है, तब लोगोंको दुर्गन्धयुक्त नालीका गंदा पानी क्यों पीना चाहिये? मनुष्यमात्र जो स्वभावतः पवित्र और शुद्ध हैं, उन्हें सत्य, प्रेम, उत्साहका शिक्षण क्यों न दिया जाय? धर्मात्मा और पापात्मा पुरुष और स्त्री, वृद्ध और बालकको साहस, पौरुष, धैर्यका पाठ क्यो न पढ़ाया जाय? जो सिंहासनारूढ राजा, मार्गमें झाड़ू देनेवाला मेहतर धनाढ्य और कंगाल है, उसे शक्तिके सिद्धान्तोका अमृतपान क्यो न कराया जाय? 'मै देवोका देव हूँ और मेरी अपेक्षा उच्च दूसरा कोई देव नहीं है— इस प्रकार सर्वसाधारणका निश्चय होना ही चाहिये।

महाभारतका विदुलोपाख्यान!

यदि हम अपने प्राचीन साहित्यको देखें, तो हमारे उदासीन कायर जीवनमें नये प्राण, नया उत्साह और नयी शक्ति-स्फूर्ति उत्पन्न करनेवाले अनेक मार्मिक प्रसंग मिल जाते है।

महाभारतमें विदुलोपाख्यानको ही ले लीजिये। जब उस वीर भारतीय माताका सैनिक पुत्र युद्धसे डरकर लौट आया तो विदुलाको बड़ा दु.ख हुआ। उन्होंने उसे प्राचीन भारतीय गौरव तथा वीरताका स्मरण दिलाया। डाँटते-फटकारते हुए वीर माता विदुलाने कहा—

'अलातं तिन्दुकस्येव मुहूर्तमपि ज्वलितं श्रेयो न धूमायितं चिरम्।'

अर्थात् मेरे पुत्र ! तू तेन्दुकी लकड़ीके समान दो घड़ीके लिये तीव्रतासे क्यों नहीं प्रज्वलित हो उठता ? जीनेकी इच्छासे धुँधुआता क्यों है ? भूसीकी तरह धुँआ क्यों करता है ? इससे तो दो घड़ी तेजीसे प्रज्वलित रहना अधिक अच्छा है। दीर्घकालतक धुँआ करना घोर कायरताकी तरह हेय है।

उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु।

अमरपुत्र ! उठ बैठो, सजग हो जाओ और कल्याणकारी कार्योंमें अपनेको लगा दो।

वास्तवमें, हम अपने चरित्रमें अपने गुप्त मन, शरीर तथा आत्मामें असीम शक्तियाँ छिपाये हैं। ये हमारे अंदर सोयी पड़ी हैं। वीरता और साहस हमारी आत्माके गुण हैं। हमें अपनी शक्तियोंके प्रति पूर्ण विश्वास धारण करना और धीर-वीर बनना चाहिये। हम निश्चय ही अमृत-संतान हैं, अमर हैं। प्रातः और सायं हमारी परमात्मासे यही प्रार्थना होनी चाहिये—

विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये
त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः।
सत्यया वो देवहूत्या हुवेम
शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये॥

हे सकल पूजनीयो ! (हमें) समझाओ, ताकि (हम अपनी) रक्षा कर सकें। कुटिलतायुक्त बुरे मार्गसे हमें बचाओ। सुनो, दिव्यज्योतियो ! मेरी इस सच्ची टेरको सुनो। जीवन सफल और सुरक्षित हो। (ऋ० १०। ६३। ११)

कायरताका परित्याग कीजिये

मनमें कभी कायरता और डरपोकपनको स्थान मत दीजिये। 'अपने उज्ज्वल भविष्यका मैं स्वयं जिम्मेदार हूँ। मैं पुण्य और पापोंका निर्माण करता हूँ। मैं पवित्र और आनन्दमय आत्मा हूँ'—जो इस भावनाके विपरीत विचार है, उनका परित्याग कर दीजिये।

सदा यह ही सोचा कीजिये कि 'मुझे मरना नहीं है। मुझे किसीका भय नहीं है। मेरा कभी नाश नहीं है। सुख-दुःखके विकारोंसे मैं बँधा हुआ नहीं हूँ। जो विकार शरीरमें होते है, वे मेरे नहीं हैं। जो शरीरका नाश है, वह मेरा नहीं है; क्योंकि मैं सच्चिदानन्द हूँ। पवित्र आत्मा हूँ। आनन्दमय हूँ। 'शिवोऽहम् शिवोऽहम्।'

सदा याद रखिये, आपमें विपत्तियोपर पूर्ण विजय पानेकी गुप्त शक्तियाँ मौजूद हैं। सब प्रकारके विरोध दूर होनेवाले हैं। आप दृढ़ हैं, मजबूत हैं और चट्टानके समान स्थिर हैं। कठिन-से-कठिन विघ्न-बाधाओंसे भी आप चलायमान नहीं हो सकते।

निर्भीक बनिये; क्योंकि आप अजर, अमर, अमृत-संतान हैं, धीर और वीर हैं। आप सदा-सर्वदा विजयी होनेवाले हैं। परिस्थितियोंपर आपका पूरा नियन्त्रण है। आप पूर्ण विजयी होकर रहेंगे।

आदमीका बड़प्पन इस प्रकार नापा जाय ?

मनुष्यके मूल्याङ्कनकी सच्ची कसौटी

सेठ लक्ष्मीचंदको अपने धनका बड़ा अभिमान है। उनसे बातचीत होने लगी तो बोले, 'आदमी वह बड़ा, जिसके पास ढेर-के-ढेर रुपये हों, तिजोरियाँ आभूषणोंसे भरी हों, खूब जमीन-जायदाद हो, बड़ी फर्मोंमें शेयर हों, व्यापार धड़ाधड़ रुपया बरसाता हो।'

मैं सोचता रहा कि शायद सेठ लक्ष्मीचंदका दृष्टिकोण ही ठीक हो, पर उस दिन मिल गये बाँके पहलवान। हमने पूछा, 'कहिये, आदमीका बड़प्पन किस प्रकार नापा जाय ?'

वे तपाकसे बोले, कितना आसान सवाल है। अरे भाई! जिसके शरीरमें ताकत है, वही बड़ा है। मनुष्यकी सबसे बड़ी इच्छा है कि वह शक्तिशाली बने। माँ अपने बेटेको मजबूत चाहती है, पत्नी पतिको उसकी ताकतसे बड़ा मानती है। बलवान् बनो। लो उस्तादका गंडा बाँधो। अकल, जाति, बिरादरी, गुण-कर्म कुछ भी कामके नहीं हैं। बड़ा बनना है तो बस मजबूत बनो, मुहल्ले-मुहल्लेमें स्कूल-कालेजोंकी जगह अखाड़े चलाओ। लाठी, बल्लम, लेजिम, डंबल, मुद्गर, लोहेके गोले उठाना, लाठी चलाना, घुमाना, फेंकना और मारना सीखो।'

पहलवानके दृष्टिकोणपर हम बहुत विचार कर ही रहे थे कि सिनेमाके गीत गुनगुनाते बनाव-शृङ्गार किये अभिनेता मुकुल मिल गये। मुकुलजीका सिनेमाके जगत्में बड़ी लोकप्रियता है। उनसे भी हमने अपना सवाल दुहराया।

अभिनेता बोले, 'सुन्दर बनो, अरे यार! बड़ा बनना है, दुनियामें कुछ नाम कमाना है तो खूबसूरत बनो। मुझे देखो, रोज आइनेके सामने घंटों बैठ साज-सँवारकर फैशन बना पूरे बनाव-शृङ्गारसे पर्देपर आता हूँ, सदा सिनेमाके रंगीन मस्ताने गीत गाता हूँ; फिर मुझमें सुन्दरता क्यों न आयेगी? सुन्दरता ही आदमीके बड़प्पनकी कसौटी हो सकती है।'

मेरा मन तो भानमतीका पिटारा बन गया। एक कहता है, आदमी अपने रुपयेसे बड़ा बनता है, दूसरा शक्तिको महानताकी निशानी मानता है, तो तीसरा सौन्दर्य-यौवन और बाह्य आकर्षणको मनुष्यके मूल्याङ्कनकी कसौटी मानता है।

आखिर बड़ा कौन है? हम किसे महान् मानें और किस दिशामें बढ़ें? वह क्या आदर्श हो सकते हैं, जिनकी आराधनासे समाज और मानवताकी उत्तरोत्तर उन्नति और विकास हो सकता है?

मनुष्यका सही मूल्याङ्कन—एक बड़ी समस्या

आदिकालसे हमारे विचारक मनुष्यके बड़प्पनकी कसौटी तलाश करते रहे हैं। कोई धन, कोई बल, कोई सौन्दर्यको मनुष्यकी श्रेष्ठताकी निशानी मानते रहे हैं।

भारतीय चिन्तकों, विचारको और तत्त्ववेत्ताओंने इस प्रश्नपर बहुत बारीकीसे सोचा है । लघुता और महानताके प्रश्नपर बहुत कुछ कहा है । महाभारत, भागवत, पुराण, गीता, उपनिषद्, वेद इत्यादि ग्रन्थोमें स्थान-स्थानपर ऐसे बहुमूल्य वाक्य भरे पड़े हैं, जिनमें मनुष्यकी श्रेष्ठताकी कसौटी स्पष्ट की गयी है ।

इन सब ग्रन्थोंका निचोड़ यह है कि मनुष्यकी सूरत-शक्ल, रुपया-पैसा, अधिकार-प्रभाव इत्यादि कोई भी बड़प्पनकी निशानी नहीं है । रुपया तो सांसारिक दृष्टिसे चतुर व्यक्तियों, व्यापारियों, पूँजीपतियो, कालाबाजार करने तथा रिश्वत लेनेवालो, चोर-डाकुओं और वेश्याओंके पास भी बहुत होता है । जमीन-जायदाद, मकान-मोटर, भरी हुई तिजोरियाँ, हुंडी, प्रापर्टी संसारमें असंख्य मनुष्योके पास अनाप-शनाप भरे पड़े हैं । सट्टा-फाटका, ब्याज, कालाबाजार और रिश्वतसे आजका कंगाल भी कलका साहूकार बन जाता है । इसलिये धन कभी भी बड़प्पनकी कसौटी नहीं रहा है ।

रूप-यौवन-सौन्दर्य कितने दिन रुकते हैं ? किसके रुके हैं ? इतिहासके पृष्ठोमें एक-से-एक सुन्दर स्त्री-पुरुषोका उल्लेख मिलता है, पर मौतके एक साधारणसे झटकेने उनका सौन्दर्य नष्ट कर दिया । बुढ़ापा वह बला है जो खूबसूरत-से-खूबसूरत इन्सानको कुरूपतामें बदल देता है ।

और शारीरिक शक्ति ? मनुष्यकी ताकत हमेशा घटती-बढ़ती रहती है । भीम तथा रुस्तम-जैसे बलशाली महान् पुरुष भी न रहे ! तो हमारी क्या गिनती है ! पहलवान लोग चार-चार सेर दूध,

पाव-पावभर घी-मक्खन हजम कर जाते हैं, कसरत करनेवाले चार-चार घंटे डंड-बैठक, मुद्गर, सूर्य-नमस्कार, कुश्ती लड़ते रहते हैं। शक्ति-कामना एक मृगतृष्णा ही है। शारीरिक दृष्टिसे मोटे-तगड़े आदमियोंको कौन बड़ा कह सकता है? इसी प्रकार उच्च कुल, पुराने प्रसिद्ध परिवार, पहुँच, अधिकार, सिफारिश, मिलीभगत इत्यादि सब तुच्छ तरीकोंसे कोई बड़ा नहीं हो सकता। कलक्टरका लड़का कलक्टर या चपरासीका लड़का चपरासी हो—यह जरूरी नहीं है। इसी प्रकार किसी उच्च या धनी वंशमें उत्पन्न होनेवाले सभी व्यक्ति अपने पूर्वजोंके समान ही अच्छे और श्रेष्ठ हों, यह कोई आवश्यक नहीं है।

लघुता और महानताको यों नापा जाय

हिंदू-धर्म और भारतीय संस्कृति जिस तत्त्वको सर्वाधिक महत्ता देती रही है, वह शील, गुण, योग्यता, आचार-विचार और लोकोपकारका धन है। हमारे यहाँ ऐसे अनेक विचारक, कवि, विद्वान्, समाजसेवी, तत्त्वज्ञानी हुए हैं, जिनके पास एक पैसा भी नहीं था या जिनके जेब ही नहीं थी, फिर भी वे बड़े भारी धनवान् थे। ज्ञानकी समृद्धि सदा उनके पास थी।

ये गुणी व्यक्ति इतने बड़े धनवान् हैं कि उनकी समता समाजके बड़े-बड़े पूँजीपति, आलीशान इमारतोंमें निवास करनेवाले कदापि नहीं कर सकते। जिनके बड़ी-बड़ी गगनचुम्बी इमारतें, जमीन-जायदादें बाह्य टीपटाप, विपुल ऐश्वर्य, हाथी, मोटर इत्यादि

कुछ भी नहीं थे, पर वे आज भी इतने महान् हैं कि उनकी बराबरी कोई नहीं कर सकता ।

धनवान् वास्तवमें कौन है ?

लार्ड कालिंगवुडका उत्तर सुन लीजिये, 'दूसरोंको सोना-चाँदीके टुकड़ोंपर मरने दो, मैं तो बिना पैसेके अमीर हूँ; क्योंकि मैं जो थोड़ा-सा धन कमाता हूँ, नेकी और ईमानदारीसे कमाता हूँ ।'

और लीजिये सिसरो क्या कह रहे हैं, 'मेरे पास थोड़े-से ईमानदारीके साथ कमाये हुए पैसे हैं; परंतु ये मुझे करोड़पतियोंसे भी अधिक आनन्द देते हैं ।'

जिसका हृदय उदार है, जन-जनके कल्याणके लिये जो सदैव तैयार है, जिसका मन पवित्र है, जिसके पास योग्यता और अच्छे गुण-कर्म हैं, यथार्थमें वही धनवान् है, वही महान् है, पूजनीय है, वन्दनीय है ।

महर्षि दधीचि, महामुनि वसिष्ठ, महाकवि वेदव्यास और वाल्मीकि, श्रीचैतन्यमहाप्रभु, भक्तप्रवर तुलसीदासजी और सूरदासजी, गुरु रामदास, महान् विचारक कबीर इत्यादि विद्वान् बिना पैसेके अमीर थे ।

रुपये-पैसे जैसे सांसारिक वैभवोंवाली क्षणिक अमीरीकी शान गाँठनेवाले असंख्य आदमी इस दुनियामें उपजे और समा गये हैं, किंतु उपर्युक्त संत, विचारक और कवि अपने अमर ग्रन्थोंके माध्यमसे आज भी जीवित हैं । ये बिना पैसेके बड़े अमीर थे ।

ये विद्वान् बताया करते थे कि मनुष्यका सब आवश्यक भोजन मुखद्वारा ही अंदर नहीं जाता और न जीवनको समुन्नत, श्रेष्ठ और अमर बनानेवाली सब वस्तुएँ पैसेसे खरीदी जा सकती हैं।

ईश्वरने हमारी जीवनरूपी पुस्तकके प्रत्येक पृष्ठपर अमूल्य रहस्योंको अङ्कित कर रक्खा है। यदि हम शील, गुण और कर्मोंकी श्रेष्ठताको पहचान लें, तो जीवनको प्रकाशपूर्ण बना सकते हैं।

तुलसीदासजीको कभी आलीशान महल न मिला था। सूरदासजी शायद आयुपर्यन्त कुटियामें निवास करते रहे होंगे, महात्मा कबीर कच्चे मकानमें कपड़ा बुनते रहे। गुरु नानकदेवजी सदा सादगीका जीवन बिताते रहे और अपने अमूल्य विचार फैलाते रहे। स्वामी दयानन्दजीको कभी जीवनका विलास न मिला। ये महान् आत्माएँ झोपड़ियोंमें रहकर संसारमें अपने गुण, सत्कर्म और सद्विचारका प्रकाश फैलाते रहे। एक विशाल हृदय और उच्च आत्मावाला विद्वान् झोंपड़ीमें रहकर भी अपनी विद्या और बुद्धिसे रत्नोंकी जगमगाहट पैदा करेगा।

जो व्यक्ति लोकजीवनके सुधार, समाज-सेवा और परोपकारमें प्रवृत्त है, वह अपने गुण-कर्मकी उच्चताके कारण इस लोकमें भी धनी है तथा परलोकमें भी अमीर है, भले ही उसके पास सोना-चाँदीका अभाव हो। यदि आप विनयशील, प्रेमी, निःस्वार्थ और पवित्र हैं तो विश्वास कीजिये आप अनन्त धनके स्वामी हैं।

जिसके पास पैसा नहीं है, वह गरीब कहा जाता है, परंतु जिसके पास केवल पैसामात्र है, अच्छे गुण, शुभ कर्म, सद्बुद्धि-

ऊँची योग्यता, दृढ़ चरित्र और सदाचार नहीं है, वह उससे भी अधिक कंगाल है ।

क्या आप सद्बुद्धि और सद्गुणोंको धन नहीं मानते ?

अष्टावक्र आठ जगहसे टेढ़े थे और धनहीन थे, पर जब महाराज जनककी सभामें जाकर उन्होंने अपनी विद्वत्ता और उच्च गुणोंका परिचय दिया, तो गुणोंसे प्रभावित होकर राजा उनके शिष्य हो गये ।

गुरु द्रोणाचार्य जब धृतराष्ट्रके शाही दरबारमें पहुँचे, तो उनके शरीरपर ठीक तरहके वस्त्रतक न थे । कोई कह नहीं सकता था कि यह व्यक्ति इतना गुणी हो सकता है; लेकिन जब राजाको उनकी विद्या-बुद्धि और कुशलताका पता चला, तो उन्हें राजकुमारोंके राजगुरुका सम्मानपूर्ण पद मिला था ।

महात्मा डायोनीजके आध्यात्मिक वैभवसे दिग्विजयी सिकन्दर बड़ा प्रभावित हुआ । उसने मन-ही-मन अनुभव किया कि सैनिक सफलता क्षणिक है । उसने बड़प्पन प्राप्त करनेके लिये जो रक्तपात, हिंसा, दमन और बर्बरता की है, वह व्यर्थ रही है । बड़प्पन कहीं है तो वह महात्मा डायोनीजके ही पास है । वह एक दिन उनके पास गया और हाथ जोड़कर आत्म-समर्पण करते हुए बोला—

'महात्मन् ! मैं आपको बड़े श्रद्धाभावसे देखता हूँ । श्रद्धाप्रसूनके रूपमें आपको कोई भेंट प्रस्तुत करना चाहता हूँ । कृपया बतलाइये, गुरुदक्षिणाके रूपमें कौन-सी चीज हाजिर करूँ ?'

डायोनीज कुछ देर सोचते रहे। अपनेको महान् समझनेवाला सिकन्दर उनके सामने ऐसे खड़ा था, जैसे सिंहके सामने बकरी।

महात्मा बोले, 'सिकन्दर! हिंसा, हत्या, कत्ल, रक्तपात, आतङ्क आदि पाशविक तरीकोंसे कोई बड़ा नहीं होता। महानता मनुष्यकी विद्वत्ता, शील, गुण और अच्छे कर्मोंसे ही नापी जाती है। तूने अपने सारे जीवनमें पाप ही इकट्ठा किया है। अच्छा, मेरी धूप मत रोक और एक ओर खड़ा हो जा। यह प्राकृतिक चीज मुझसे मत छीन, जो मुझे अपने वैभवसे नहीं दे सकता।'

सिकन्दर उत्तर सुनकर स्तब्ध रह गया। उसने एक आह भरते हुए कहा, 'हाय! मैंने आतङ्कद्वारा बड़प्पन प्राप्त करनेमें ही जीवन समाप्त कर दिया। यदि मै सिकन्दर न होता, तो डायोनीज ही होना पसंद करता।'

गुरु गोविन्दसिंह, वीर हकीकतराय, छत्रपति शिवाजी, महाराणा प्रताप आदि वीर अपने उच्च गुणों तथा पवित्र कर्मोंके कारण ही बड़े माने जाते हैं। उन्होंने क्षुद्र सांसारिक आदर्शोंके लिये कभी भी यह जीवन नष्ट नहीं किया था।

माननीय गोखलेसे एक बार एक सम्पन्न व्यक्तिने पूछा, 'आप इतने बड़े राजनीतिज्ञ होते हुए भी गरीबीका जीवन क्यों व्यतीत करते हैं?'

उन्होंने उत्तर दिया, 'मेरे लिये गुण-कर्मोंकी उच्चता ही मनुष्यके बड़प्पनकी कसौटी है। पैसा जोड़नेके लिये जीवन-जैसी महत्त्वपूर्ण

वस्तुका अधिक भाग नष्ट करनेमें मुझे कोई बुद्धिमत्ता मालूम नहीं होती।'

फ्रेंकलिनसे एक बार उनका एक मित्र यह पूछने गया, 'मैं अपना धन कहाँ रक्खूँ ?'

उन्होंने उत्तर दिया, 'तुम अपनी थैलियोंको अपने सिरके अंदर उलट लो। (अर्थात् अपनी ज्ञानबुद्धि कर लो) तो उस धनको कोई नहीं चुरा सकेगा।'

कामभोगप्रियास्तीक्ष्णाः क्रोधनाः प्रियसाहसाः।
त्यक्तस्वधर्मा रक्ताङ्गास्ते द्विजाः क्षत्रतां गताः॥
गोभ्यो वृत्तिं समास्थाय पीताः कृष्युपजीविनः।
स्वधर्मान् नानुतिष्ठन्ति ते द्विजा वैश्यतां गताः॥
हिंसानृतप्रिया लुब्धाः सर्वकर्मोपजीविनः।
कृष्णाः शौचपरिभ्रष्टास्ते द्विजाः शूद्रतां गताः॥
इत्येतैः कर्मभिर्व्यस्ता द्विजा वर्णान्तरं गताः।
धर्मो यज्ञक्रिया तेषां नित्यं न प्रतिषिध्यते॥
इत्येते चतुरो वर्णा येषां ब्राह्मी सरस्वती।
विहिता ब्रह्मणा पूर्वं लोभात् त्वज्ञानतां गताः॥
(शान्तिपर्व, मोक्षधर्म० १८८। ११-१५)

अर्थात् मनुष्यो ! याद रक्खो, वर्णोंमें कोई शारीरिक विभिन्नता नहीं है। सब आदमियोंके शरीर एक-से हैं। (स्वेद, मूत्र, श्लेष्मा, पित्त और रक्त सबके शरीरमें प्रवाहित हो रहे हैं।)

समस्त जगत्को ब्रह्माने पहले ब्राह्मणमय ही सृष्ट किया था। सब ही अच्छे थे। सबमें पवित्र शुभकर्म थे।

लेकिन बादमें सभी लोग कर्मानुसार नाना वर्णोंको प्राप्त हुए। पहले सब ही ब्राह्मण थे। फिर जो ब्राह्मण काम-भोगप्रिय, तीक्ष्ण-स्वभाव, क्रोधी, साहसप्रिय थे और स्वधर्मका त्याग करके राजसिक लोहित वर्णके आदमी हो गये, उन्हें क्षत्रिय कहा गया।

गोरक्षण-वृत्ति ग्रहण करके जो कृषिजीवी हुए, वे स्वधर्मत्यागी पीले रंगवाले वैश्य हुए।

जो ब्राह्मण हिंसाप्रिय, अनृतप्रिय, लोभी और सर्वकर्मोपजीवी हो गये, वे सफाईका काम करनेवाले काले रंगके व्यक्ति शूद्र कहलाये।

इस प्रकार गुण, कर्म और स्वभावकी विभिन्नताके कारण पृथक्-पृथक् ब्राह्मणलोग ही वर्णान्तरको प्राप्त हुए। अतः उनके लिये शुभ क्रिया और धर्म नित्य विहित है, निषिद्ध नहीं।

इन चारों वर्णोंको ज्ञानमें समान अधिकार है। ब्रह्माका यही पूर्वविधान है। लोभके कारण ही लोग अज्ञानको प्राप्त होते हैं।

अच्छे गुण, शुभ कर्म और मधुर स्वभावसे मनुष्य ऊँचा उठता है और बड़ा बनता है। कहा गया है—

एभिस्तु कर्मभिर्देवि शुभैराचरितैस्तथा।
शूद्रो ब्राह्मणतां याति वैश्यः क्षत्रियतां व्रजेत्॥

अर्थात् 'याद रखिये, सदाचार और सत्कर्मसे शूद्र भी ब्राह्मणका गौरव प्राप्त करता है और वैश्य क्षत्रिय होता है।'

एतैः कर्मफलैर्देवि न्यूनजातिकुलोद्भवः ।
शूद्रोऽप्यागमसम्पन्नो द्विजो भवति संस्कृतः ॥

अर्थात् 'सत्कर्मके फलसे आगमसम्पन्न शूद्र सुसंस्कृत होकर द्विजत्व प्राप्त करता है ।'

जहाँ एक ओर अच्छे गुण-कर्मसे नीची जातिवाले व्यक्ति ऊँचे उठ सकते हैं, वहाँ गंदे कार्यों और दूषित चरित्रसे उच्च वर्णके आदमी भी नीचे गिरते हैं । देखिये—

ब्राह्मणो वाप्यसद्वृत्तः सर्वसंकरभोजनः ।
ब्राह्मण्यं स समुत्सृज्य शूद्रो भवति तादृशः ॥

अर्थात् 'ब्राह्मण भी असत्-चरित्र और सर्वसंकर-भोजन करनेसे जातिच्युत होकर शूद्र हो जाता है ।'

इसलिये शुभकर्म करना ही सबसे बड़ा धर्म है । अच्छे गुणोंको विकसित करना ही सबसे अच्छी नीति है । कर्मके द्वारा ही भाग्य बदला जा सकता है । भाग्यवान् होनेपर भी अच्छे गुण, कर्म और स्वभावसे ऊँचा उठा जा सकता है ।

कबीर कहते हैं—

कबीर सब जग निर्धना धनवंता नहिं कोय ।
धनवंता सो जानिये जाके राम-नाम धन होय ॥

अतः उत्तम गुण, श्रेष्ठ कर्म, सदाचार तथा सेवापरायणता और भगवद्भजन—ये ही असली बड़प्पनके लक्षण है ।



आशाकी जीवन-ज्योति

आप जिंदगीसे घबराये हुए हैं ?

कभी-कभी आप निराश और साहसरहित होकर कहते हैं, 'मैं जिंदगीसे घबरा उठा हूँ। मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। मैं संसारसे ऊब गया हूँ। मुझपर जो मुसीबत पड़ी है, वह असाधारण है। दुनियामें इतना दुखी कोई व्यक्ति नहीं है, जितना दुखी मैं हूँ।'

'मेरे निकटतम सम्बन्धीकी मृत्यु हो गयी। वही मेरे जीवनका सब कुछ था। अब दुनियामें मेरा कौन है ? मेरा सब कुछ नष्ट हो गया। मेरी दुनिया लुट गयी। जीवन सूना हो गया है। अब मैं क्यों जीऊँ ? बिना उस बिछुड़े हुए साथीके जीवन व्यर्थ है। जिंदगीकी डोर टूट गयी है। मेरा दिल सदा-सर्वदाके लिये टूट गया है। मैं अब जीकर ही क्या करूँगा ?'

'मुझे व्यापारमें धक्का लगा है। यह ऐसा धक्का कि अब मेरा पाँव जमना कठिन है। बाजारमें मेरी साख गिर गयी। समाजमें मैं मुँह दिखाने योग्य नहीं रहा। बिना इज्जतके, बिना रुपये-पैसे या आर्थिक समृद्धिके जीना व्यर्थ है। ऋणदाता मेरा रक्त ही चूस डालेंगे। मेरा घर-बार, दूकान सब नीलाम हो जायँगे। उफ् ! कितनी बेइज्जती है। इससे तो मरना ही बेहतर है।'

'मेरे घरमें सदा कलह बनी रहती है। सास-बहूकी कचकच, पुत्र आवारा होता जा रहा है, पढ़ता-लिखता या कमाता नहीं है। दिन-रात घरमें क्रोध और आवेशका हुड़दंग मचा रहता है। इस

नित-नितकी कलहसे तो आत्महत्या ही कर लें, जिंदगीकी इस कड़वाहटसे छुटकारा तो मिले।'

'मेरी नौकरी छूट गयी है। जीविकाका प्रश्न विकटरूपसे मेरे सामने मुँह फैलाये साँपकी तरह निगलनेको तैयार है। अब टुकड़ा कैसे मिलेगा? बाल-बच्चों, पत्नी तथा परिवारको भोजन कैसे प्राप्त होगा? इस बढ़ी हुई उम्रमें मुझे कौन नौकरी देगा? भूखों मरनेसे तो एक बार ही फाँसी लगाना ठीक है।'

'मैंने प्रेममें मुँहकी खायी है। मेरी प्रियतमाने मुझे धिक्कारा है। मेरे प्रेमका तिरस्कार किया है। मेरे भावी सुख-सपनोंकी दुनिया नष्ट कर डाली है। इस दुनियामें भला मुझे कैसे चैन मिल सकती है? मै यह कैसे सहन कर सकता हूँ कि मेरी हृदयेश्वरीका विवाह किसी दूसरे युवकसे हो। मेरे हृदयके दुःखकी कोई सीमा नहीं। मेरे दिलके हजार टुकड़े हो चुके हैं।'

'मै सदा बीमार ही रहता हूँ। शरीर कमजोर होता जाता है। हाथ-पाँवोंसे उठा-फिरा नहीं जाता। भूख नहीं लगती। कैसी जिंदगी है—बस जिंदा मौत ही है।'

ये बातें वे निराश लोग करते हैं, जिनके पास दुर्बल हृदय और अशक्त संकल्पशक्ति है। ये तर्क उन हीन, कमजोर और छोटे मनवाले आदमियोंके हैं, जो जीवन-युद्धसे भाग चुके हैं; मामूली-से संघर्षसे साहसरहित हो चुके हैं।

निराश व्यक्तिको नवजीवन

बस, तनिक-से कष्टसे निराश हो गये। आप परम पुरुषार्थी

होकर क्षणभरमें कायर बन गये। आप कभी भी असफल नहीं हो सकते।

क्योंकि आप जानते हैं कि निराशा एक प्रकारका क्षणिक काला अन्धकार है, जो थोड़ी देरमें स्वयं ही हटता है। काले अंधेरे वादल फटते हैं और नयी आशाओंकी रजत-किरणें फूटती हैं। रात्रिके बाद प्रकाशवान्, दीप्तिमान्, नया उत्साह, नयी शक्ति और स्फूर्ति देनेवाला दिन उदित होता है। चारों ओर नया जीवन फिर छिटकता है।

संसारमें कौन-सी ऐसी मुसीबत है, जो मनुष्यपर नहीं पड़ी। मनुष्यने हर मुश्किलको आसान बनाया है। हर मुसीबतमें वह पनपा है। हर विरोधको उसने परास्त किया है।

किस बड़े आदमीने कठिनाइयोंसे संघर्ष नहीं किया? दुःखकी काली छाया किस महत्त्वपूर्ण व्यक्ति, प्रसिद्ध नेता, लोकप्रिय धर्मप्रचारकपर नहीं पड़ी? ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जो सदा जीवनपर्यन्त फूलोंकी मृदुल सेजपर सोया हो।

संसार टक्करोंसे भरा हुआ है। यहाँ मनुष्यको, विशेषतः पुरुषको पग-पगपर टक्करें खानी पड़ती हैं—समाजकी टक्करें, जाति-बिरादरीकी ठोकरें, परिवारकी टक्करें, रोजगार और नौकरीकी टक्करें, पर आदमी अन्तमें इन सबको जीतकर ही रहा है। उसने हर टक्करको अपने सीनेपर सहा है।

प्रतिपल आशाका संचार

इस उत्तुङ्ग चट्टानको देखिये। यह समुद्रके किनारे सीना तानें खड़ी है। समुद्रकी उत्ताल तरङ्गें इसपर कस-कसकर वार कर

रही हैं। न जाने कितने प्रहार हो चुके हैं, किन्तु यह एक सच्चे शूरवीरकी भाँति सीना ताने खड़ी है।

आप भी इस उत्तुङ्ग शृङ्गकी भाँति ही दृढ़ हैं। संसारके कष्टोंमें इतनी शक्ति नहीं कि वे आपको हिला सकें। आप मुसीबतोंके मध्य महिमान्वित अविचल हिमाचलकी तरह अडिग हैं, अविचल है। पूरी तरह दृढ़ है। सांसारिक कष्ट तो उन बवंडरोंकी तरह हैं, जिनका आपपर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

आप वह महाशक्तिसम्पन्न महामानव हैं, जिसकी महिमा ये बड़े-बड़े ऊँचे बर्फीले पर्वत कह रहे हैं, जिसकी शक्ति नदियोंसहित यह समुद्र वर्णन कर रहा है, ये चारों दिशाएँ जिसके बाहुतुल्य हैं। आपके शक्तियोंका अन्त नहीं है। वे निस्सीम हैं।

संसारमें युग-युगसे मृत्यु अपना भयंकर मुँह फैलाये जीवोंको निगलती रही है। कभी इसने महामारीका रूप धारण किया, कभी रणका रक्तपात आया, कभी भूख, विवशता, पीड़ा, हाहाकार आया, पर मनुष्यकी सदा विजय ही रही है। उसने मृत्युको हमेशा परास्त किया है।

जो-जो बाधाएँ जीवनसे लोहा लेने आयीं, सदा ही परास्त हुईं। हमेशा मानव ही जीता है, निष्ठुर प्रहारोंमें भी जीवनकी गति चलती आयी है। उसकी राह कभी नहीं रुकी है। फिर आप क्यों निराश हैं?

विनाशने सृजनशक्तिसे संघर्ष किया, पर सृजनकी बहुतायतसे ही जीवका अस्तित्व है। पृथ्वीसे असंख्य जीव मरे; पर सृजनकी

शक्ति देखिये। पृथ्वीपर जीवोंकी संख्या उत्तरोत्तर वृद्धिपर ही है, भविष्यमें भी जीवन सदा विनाशको इसी प्रकार पछाड़ता रहेगा; क्योंकि उसका शक्ति-भंडार ईश्वर है।

आप सृजन-शक्तिके भंडार हैं। मृत्युको आखिरी दमतक पछाड़नेवाले साहसी सैनिक हैं। छाती खोले खड़े हैं। भला ऐसी कौन-सी राक्षसी शक्ति है, जो आपका सामना कर सके। आपकी गति वायुसे भी तीव्र है। मृत्यु स्वयं मरेगी; जीवनकी ही विजय रहेगी।'

निराशा एक प्रकारकी कायरता है, इसे त्यागिये

एक विद्वान्‌ने उचित लिखा है, 'निराशा एक प्रकारकी कायरता है। जो आदमी कमजोर होता है, वह कठोर परिस्थितिका सामना नहीं कर पाता। वह एक कायरकी तरह युद्ध छोड़कर भाग जाता है।'

'निराशा एक प्रकारकी नास्तिकता है।' जो व्यक्ति संध्याके डूबते हुए सूर्यको देखकर दुखी होता है और प्रातःकालके सुनहरी अरुणोदयकी आशा नहीं करता, वह नास्तिक है।

मरणके बाद जीवन होता है। पतझड़के बाद वसन्त आता है। ग्रीष्मके बाद वर्षाकी सुखद सुहावनी शीतल ऋतु आती है।

इसी प्रकार दुःख क्षणिक हैं, अल्पकालमें दूर होनेवाले हैं। जब दुःखके बाद सुखका दैवी विधान है, तब क्या कारण है कि हम अपनी कठिनाइयोंको स्थायी समझें?

जो माताके क्रोधको स्थायी समझता है और उसके प्रेमपर विश्वास नहीं करता, वह बालक नास्तिक है। हमें अपनी नास्तिकताका दण्ड रोग, शोक, विपत्ति, जलन, असफलता और अल्पायुके रूपमें भोगना पड़ता है।

लीजिये कविवर श्रीसुधेशजीका यह उद्बोधन-गीत सुनिये और उससे प्रेरणा प्राप्त कीजिये—

हर विफलतापर न तुम आँसू बहाओ।
हर सफलताका यही पहला चरण है।
हर कदमपर ही तुम्हें यदि शूल मिलते,
तो उन्हें भी प्यार कर दिलसे लगा लो;
यदि तुम्हारे स्वप्न भी घायल हुए हैं,
तो उन्हें चुपचाप पलकोंमें छिपा लो;
बाँध लो तुम नींदको भी मुट्ठियोंमें,
मौत सोना है, कि जीवन जागरण है!
जो कभी चलता नहीं, वह क्या गिरेगा?
जो कभी गिरता, वही उठ उठ चलेगा।
जो कि हँस हँस आँधियोंसे खेलता है,
वह प्रलयमें भी दिवाकर-सा जलेगा;
इसलिये चलते चलो गिर-गिर सँभल कर,
रास्तेमें पाँव रुक जाना मरण है।

आप तुच्छ नहीं, महान् हैं

एक छोटे-से बीजसे कितना बड़ा वटवृक्ष उत्पन्न हो जाता है। छोटे-से बीजको देखकर कौन उसमें छिपी गुप्त शक्तिका अनुमान कर सकता है! लेकिन उसी बीजसे आश्चर्यचकित करनेवाला दृढ़ और

मजबूत वृक्ष बनता है, जिसकी छायामें न जाने कितने व्यक्ति विश्राम करते हैं। इसी प्रकार आपमें अद्भुत शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक शक्तियाँ भरी हुई हैं। इनके विकाससे आप संसारको चकित कर सकते हैं। कुछ दिन पश्चात् आपके जीवनका सबसे सफल भाग आ रहा है। आपके यश और कीर्तिके दिन आगे आ रहे हैं। ठहरिये और प्रतीक्षा कीजिये। परिस्थितियाँ अब बदल रही हैं। निराशाके काले बादलोंमें आशाकी स्वर्ण-रेखाएँ चमक रही हैं। तनिक साहस कीजिये। आप तुच्छ नहीं, महान् हैं। इस क्षणिक विपत्तिसे आपको किसी कमजोरीका अनुभव नहीं करना चाहिये।

आपके पास जो गुप्त आत्मिक शक्तियाँ है, वे अचूक ब्रह्मास्त्र हैं। आपकी छिपी हुई ताकतोंकी शक्ति अनेक इन्द्रके वज्रोंसे भी अधिक है। विजय, आनन्द, सफलता, उन्नति आपके जन्मजात अधिकार हैं। अपने हथियारोंको सँभालिये और एक बार फिर अपने कार्यकी सफलताके लिये जूझ जाइये।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरका वह गीत दुहराइये, जिसमें उन्होंने थके हुए पक्षीको पुनः अपने पंखोंको फड़फड़ाकर ऊँचा उडने, आगे बढ़नेकी सलाह दी है। उस कविताका भाव इस प्रकार है। इसे मनमें बैठाइये। इन शब्दोंपर विचार कीजिये—

'यदि मन्द-मन्द मन्थर गतिसे चलकर चारों ओरसे संध्या बढ़ती आ रही है, दिनका संगीत रुक गया है, संगी-साथी छूटनेसे जीवन सूना-सा मालूम हो रहा है, तेरे अङ्ग-अङ्गमें थकान उभर

आयी है, तेरे मनमें आशङ्का उभर आयी है, दिग्-दिगन्त अपनी काली चादर ताने सो रहे हैं, तो भी मेरे विहंग ! तू अपने पंख बंद न कर ।

'यदि तेरे सम्मुख अब भी लंबी दूभर रात्रि है, सुदूर अस्ताचलपर सूर्य ऊँघ रहा है, संसार निश्वास रोक एकान्त स्तब्ध आसनसे बैठा हुआ है, दिनका प्रकाश रजनीके धीमे-धीमे पहर गिन रहा है, अन्धकाररूपी सागरमें चन्द्रमाकी क्षीण रेखामात्र दिखायी दे रही है, तो भी मेरे विहंग ! तू निराश न हो । अपने पंख बंद मत कर ।

'समस्त तारागण आकाशमें तेरी ही ओर अनिमेष दृष्टि लगाये हुए है । नीचे सागरमें शत-शत लहरें उछल-उछलकर उल्लासका संदेश लिये उद्वेलित हो तेरी ओर दौड़ रहे है । वे न जाने कौन वहाँ दूर करुण अनुनय करके 'आओ, आओ !' की पुकार कर रहे है ? सभी ओर तेरा स्वागत है । इसलिये मेरे विहग ! तू अपने पंख अभी बंद न कर !'

इसी प्रकार आप भी अपनी निराशा छोड़िये । प्रसन्नतापूर्वक अपने कष्टोंको विदा कीजिये । आपको संसारमें व्यर्थ नहीं भेजा गया है । आपमें बलवान् आत्माका निवास है । उसका बल प्रकट कीजिये । ईश्वरका सारा बल आपमें, आपकी सर्वशक्तिमान् आत्मामें निहित है । उसमें पूर्ण विश्वास कीजिये और इसी विश्वासकी ज्योति सदा जलाये रहिये ।



समय बीतने दीजिये, आपके दुःख स्वयं दूर होंगे

आज आप बेहद दुखी हैं और समझते हैं कि हमारा यह दुःख कभी कम न होगा। हमें सदा-सर्वदाके लिये तोड़-फोड़कर रख देगा।

विषम-से-विषम समस्या शायद आज ही आ गयी है। हम इसके साथ ही नष्ट हो जायँगे। संसार-सागरके थपेड़े हमें सदाके लिये चूर-चूर कर देंगे।

हमारे प्रिय बन्धु-बान्धवोंकी मृत्यु हो गयी है। हम आठ-आठ आँसू रो रहे हैं। हमें कल नहीं पड़ रही है। लोग रोकते हैं, पर हम मरनेको तुले बैठे हैं।

एक महाशयको व्यापारमें बड़ा नुकसान रहा है। वे दुःखसे व्याकुल होकर बड़े ही कारुणिक स्वरमें कह रहे हैं—'हे ईश्वर! मुझे उठा ले। कैसी आत्म-सम्मानको चोट लगी है। मैं पापी हूँ, नीच हूँ, जो मेरी दुर्दशाको भगवान् भी देखकर दया नहीं करता। अब कौन दिन होगा कि प्रभु मेरे नुकसानकी पूर्ति करेंगे।

मुझे थोड़ा-सा चैन तो मिलेगा। अब क्या करूँ? इतना आवेश आ रहा है कि जीवनका अन्त कर दुःखोंसे छुटकारा पा लूँ। कर्जदारीने मुझे खा रक्खा है। हे प्रभु! मुझे अब न रुला। मेरे आँसू न देख प्रभु!'

एक सज्जन अपनी नौकरी छूटनेसे परेशान हैं। उनका न तो कोई निकट सम्बन्धी है, न मकान, जहाँ वे रहकर नौकरी ढूँढ़ सकें। होटलमें नौकर थे और वहीं रहते थे। नौकरीसे अलग हो भूखे चिन्तित हो रहे हैं। कहते है—'हे ईश्वर! अब क्या होगा? मुझे तथा मेरे बच्चोंको भोजन कहाँसे मिलेगा? मैं क्या करूँ? किससे अपने मनकी व्यथा कहूँ?'

सास-बहूकी तनातनी सभीको विदित है, पर दुःखके एक झटके-से भावुक बहू इतनी उद्विग्न हो उठती है कि जीवनका क्षणभरमें अन्त हो जाता है। पति-पत्नीकी, मालिक-नौकरकी और पूँजीपति-मजदूरोंकी खटपट चलती ही रहती है।

इस प्रकारके एक नहीं, सैकड़ों दुःख हैं। हम अपनी वेदनामें डूबे हैं और समझते हैं कि हमारे दुःखोंका अन्त नहीं होगा। हमारा सारा जीवन इसी प्रकार विपत्तियोंमें गुजरेगा।

दुःखसे छूटनेकी अचूक दवा

दुःखके कारणोंको जान लेना चाहिये—

तृष्णार्तिप्रभवं दुःखम्। (शा० प० २५। २२)

तृष्णाकी पीड़ा ही दुःखका भारी कारण है। तृष्णाको तुरंत त्याग दीजिये।

दुःखं चानिष्टसंवासः । (शा० प० १३९ । ६३)

अर्थात् अप्रिय अर्थात् बुरे सङ्गसे दुःख होता है । अतः सत्सङ्ग करना चाहिये । अच्छे व्यक्तियों तथा पवित्र विचारों, आशावादी विचारोंमें रमण करनेसे लाभ होता है ।

अपध्वस्तस्त्ववमतो दुःखं जीवितमृच्छति ।
(शा० प० १२३ । १९)

अर्थात् तिरस्कृत और अपमानित जितने समय जीता है, दुखी ही जीता है । ऐसे बुरे कार्य (चोरी, निन्दा, हिंसा, मद्यपान, व्यभिचार, मांसभक्षण, रिश्वत) नहीं करने चाहिये कि व्यर्थ ही तिरस्कृत होना पड़े ।

दुःखमिष्टवियोजनम् । (शा० प० १३९ । ६३)

अर्थात् प्रियका अलग हो जाना दुःखका कारण होता है । हम सबको एक दूसरेसे कभी-न-कभी बिछुड़ना ही है । कोई देर, कोई सवेर सभी विलग होनेवाले हैं । अतः इसमें कोई दुःख न मानकर मनको संतुलित रखना चाहिये ।

नास्ति रागसमं दुःखम् । (शा० प० १७५ । ३५)

अर्थात् विषयोंमें आसक्ति, सांसारिक भोग-पदार्थोंमें आकर्षण दुःखका प्रधान कारण होता है । त्याग-सरीखा दूसरा कोई सुख नहीं है । अनासक्ति ही कल्याणका मूल कारण है ।

प्रवृत्तैरिन्द्रियैर्दुःखी । (शा० प० २०४ । ९)

अर्थात् इन्द्रियोंके क्षुद्र विषयोंमें फँसे रहनेसे मनुष्य दुखी रहता है। इन्द्रियोंके आकर्षणसे बचना, अपने विकारोंको संयमद्वारा वशमें रखना, अपनी आवश्यकताओंको कम करना दुःखसे बचनेका उपाय है।

सुखं दुःखान्तमालस्यम्। (शा० प० १७४। ३८)

अर्थात् आलस्य करते हुए बाहरसे सुख मिलता हुआ तो दीखता है, पर वह अन्तमें हमेशा दुःखका ही कारण बनता है। इसलिये सदैव कर्मरत रहना चाहिये। अपनी पारिवारिक, सामाजिक और नैतिक जिम्मेदारियोंको आलस्य त्यागकर पूर्ण करते रहना चाहिये।

भैषज्यमेतद् दुःखस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत्।
(शा० प० २०५। २)

अर्थात् दुःखकी यही अचूक दवा है कि मनुष्य दुःखका कदापि चिन्तन न करे अर्थात् दुःखमें व्याकुल-विह्वल न हो। उसे धैर्यपूर्वक दूर करनेका प्रयत्न करे।

दुःखान्तप्रभवं सुखम्। (शा० प० २५। २५)

स्मरण रखिये, दुःखके बाद सुख आया ही करते हैं। ऐसा कभी नहीं हुआ कि कोई आदमी या परिवार सदा दुखी-ही-दुखी रहे। धैर्य धारण कीजिये। सब्र कीजिये। आपके दुःख स्वयं दूर होनेवाले है। इसलिये——

सुखं वा यदि वा दुःखं प्रियं वा यदि चाप्रियम्।
प्राप्तं प्राप्तमुपासीत हृदयेनापराजितः॥
(व्यास)

अर्थात् सुख हो या दुःख हो, प्रिय हो या अप्रिय हो, जब-जब आये, तब-तब अपराजित हृदयसे ही उसका सामना करना चाहिये। समयके बीतनेके साथ खुद ही दुःख कम होते जाते हैं।

समयका ओषधिरूप

आजके युगमें नाना प्रकारकी ओषधियोंका आविष्कार हो रहा है। डाक्टर लोग नित नये-नये इन्जेक्शनों और दवाइयोंके प्रयोगोंसे लोगोंको भला-चंगा स्वस्थ कर रहे हैं। बड़े-बड़े डाक्टर दवाइयोंके निर्माणमें रात-दिन प्रयोगशालाओंमें लगे हुए हैं। शहरमें दवाइयोंके स्टोरोंकी भरमार है। डाक्टर, हकीम और वैद्योंकी आमदमी दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही है।

किंतु एक ओषधि ऐसी है, जो पुराने युगसे आजतक वैसी ही अचूक और चमत्कारिणी बनी हुई है।

हम उस ओषधिको जानते नहीं; किंतु प्रयोग अवश्य करते हैं और लाभ उठाते हैं। यदि ईश्वरकी दी हुई यह दवा न होती, तो मनुष्यका जीवन दूभर हो जाता और वह क्रोध, द्वेष, आवेश या विक्षोभके मानसिक आघातके एक झटकेमें ही मर जाता। उस ओषधिका नाम सुनकर आप आश्चर्य करेंगे।

यह है—'समय'।

समय और सो भी एक ओषधि! आप आश्चर्यमें डूबे हुए हैं। पर बात ठीक है। समय एक प्रवाह है। एक शान्तिदायक विस्मृतिमूलक निर्झर है।

समयकी गति तीव्र है। इसकी गतिसे मनुष्यके बड़े-बड़े दुःख, क्षोभ, चिन्ताएँ स्वतः दूर होती हैं। बड़े-बड़े घाव भरते हैं। ज्यों-ज्यों शोकादि, दुःख, मृत्युके क्लेश अधिक दिन बीतनेपर पुराने होते जाते हैं, त्यों-त्यों मन और शरीरपर उनका प्रभाव कम होता जाता है और कालान्तरमें एक समय ऐसा आता है, जब वे कटु दर्दनाक बातें, वे भयावह घटनाएँ, बड़ी-बड़ी मौतें, मानहानि, घबरा देनेवाली स्मृतियाँ, कुटुम्बोंमें रहनेवाले द्वेष और विरोधियोंमें चलनेवाले संघर्ष बिल्कुल भुला दिये जाते हैं।

समयके चक्रके गुजरनेके साथ बड़ी-बड़ी खाइयाँ पट जाती हैं। वक्त कटनेके साथ कुटुम्बोंमें रहनेवाली कटुताएँ दूर हो जाती हैं। समयका प्रवाह शान्तिदायक है। मृदु-मरहम-जैसा है। झगड़ोंके अन्धकारपर इन्द्रधनुषी रंग छिटक जाते हैं।

समय बीतनेपर मनके स्मृतिपटलपर बने कटुता, द्वेष, तनाव और खण्डित अहंके स्थानपर फिर नयी दूब उग उठती है। आशाकी तितली चमकने लगती है। हम जिस दुर्घटना या मृत्युको असह्य और घातक समझते हैं, वही न जाने विस्मृतिके गर्भके कहाँ, किस कोनेमें विलीन हो जाती है।

समयके प्रवाहसे मनका क्लेश कम होता है, ऊहापोह और चित्तकी चञ्चलता दूर हो जाती है। बड़ी-बड़ी कुण्ठाएँ अदृश्य हो जाती हैं और जीवनके नये-नये अनुभवोंको सँभालनेके योग्य आत्मशक्ति आ जाती है।

आवेश एक प्रकारके तूफ़ान हैं

क्रोध और क्षोभ एक प्रकारके तूफ़ान हैं। ये हमारे जीवनमें बड़े झोंकोंके रूपमें आते हैं। उस समय मानसिक क्षोभका आघात इतना अधिक होता है कि यदि समय न बीते, तो आदमी आत्म-हत्या ही कर डाले, दूसरेका वध कर दे, आँखें फोड़ डाले, नाक काट ले या किसीको पंगु ही कर दे।

लेकिन यदि कोई व्यक्ति तनिक ठहर जाय और कुछ समय गुजर जाने दे, तो उसमें उस संकटको झेलनेकी गुप्त आत्मशक्ति प्रकट हो जाती है। समय बीतनेसे मानसिक संतुलन ठीक होने लगता है। जैसे-जैसे समय आगे बढ़ता है, मानसिक संतुलन ठीक होता जाता है। कुछ दिनों बाद मनमें मानसिक आघात सँभालनेकी पूरी शक्ति आ जाती है।

समय एक स्वच्छ प्रवाह है। बहता हुआ पानी स्वास्थ्यका सूचक है। जैसे नदीकी धारा लगातार बहती रहती है। और आस-पासकी भूमि तथा जलके ऊपरी भागकी गंदगीकी सफाई करती रहती है, इसी प्रकार समयकी धारा मनुष्यके मनको स्वास्थ्य और संतुलन प्रदान देती रहती है। गँदला पानी दूर होकर फिर स्वच्छता आ जाती है, जलमें चाँदी-जैसी धवलता एक बार फिर दिखायी देने लगती है।

समयकी निरन्तर गतिको देखकर ठीक ही कहा है—

सदा न बागां बुलबुल बोले,
सदा न बाग बहारें ।
सदा न राजे राज करिन्दे,
सदा न महफिल यारें ॥

याद रखिये, बागमें सदा बुलबुल नहीं बोलती । दुःख और कष्टोंके दिन भी आते है, पतझड भी आता है । मौसम निरन्तर बदलता है । खुश्कीके बाद हरियाली आती है । वर्षाके साथ चारों ओर हरियाली छा जाती है । बागकी बहार सदा एक-सी नहीं रहती । कभी बहार यौवनपर होती है, तो कभी उतार भी आता है । बड़े-से-बड़े राजाओंके राजतक एक-से नहीं रहते, बदलते रहते हैं । मित्रोंकी महफिलें भी सदा स्थिर नहीं रहतीं । समयकी गति निरन्तर अविच्छिन्न है । सतत परिवर्तन ही इस जगत् और जीवनका नियम है ।

याद रखिये, समय एक ओषधिरूप है । बड़े-बड़े घाव समयकी गतिसे भर जाते हैं ।

आपको याद है जब भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अयोध्याको छोड़ अपनी धर्मपत्नी और भाई श्रीलक्ष्मणके साथ वन जा रहे थे, तब उनकी माताएँ कारुणिक विलाप कर रही थीं । राजा दशरथका बुरा हाल था । वे सोच रहे थे, श्रीरामके बिना जीवन कैसे चलेगा ? सब प्रजाजन श्रीरामसे बहुत प्रेम करते थे ।

धीरे-धीरे उनके वनगमनका समय समीप आया । वल्कल-वस्त्र धारणकर वे वनकी ओर चले । वियोगके मानसिक आघातसे राजा

दशरथ पछाड़ें खाकर गिर पड़े। चारों दिशाएँ विरह-वेदनासे विह्वल चीत्कार कर उठीं।

माताएँ रोने लगीं। अयोध्याके प्रजाजन भी पागल-से प्रभुके साथ-साथ चलने लगे। भक्ति, प्रेम और करुणासे सने वे बहुत दूर-तक इसी प्रकार चलते गये। नगर खाली हो गया। अन्तमें बड़ी कठिनतासे वे लौटकर आये। सबपर वियोगका आघात बड़ा गहरा था।

किंतु समय बड़ी ओषधि है। धीरे-धीरे समय बीता, कार्य फिर चलने लगे। दिन, सप्ताह, महीने और वर्ष बीतने लगे। समयकी गतिने घाव भर दिये। दशरथ तो वियोगमें चल बसे, पर माताएँ मानसिक आघातको सहन कर गयीं। वे चौदह वर्षोंतक जीवित रह रामके आगमनकी प्रतीक्षा करती रहीं। समयकी गतिने सबके घाव भर दिये।

इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण जब गोकुलसे मथुरा गये, तब गोपियाँ विरहमें व्याकुल हो उठीं। उनके मानसिक कष्टोंका क्या ठिकाना था। गोपियोंके विरहका वर्णन करनेमें महाकवि सूरकी स्याही आजतक नहीं सूखी है। वह अश्रुधारा आज भी ज्यों-की-त्यों बह रही है।

लेकिन कालके प्रवाहमें वह दुःख बह गया। समय चला जाता है। यह किसीके लिये नहीं रुकता। रुकना उसका स्वभाव नहीं है। अच्छा हो या बुरा, समयकी सरिता अविराम, अविच्छिन्न चलती ही जाती है। यह लाभदायक भी है। यदि समयके साथ

हम कष्टों, दुःखों, व्यापारिक हानियोंको न भूलें, तो आधी दुनिया मानसिक आघातसे नष्ट हो जाय।

अथर्ववेदकी इस सूक्तिमें मनको शान्त और हृदयको सान्त्वना देनेकी बड़ी शक्ति भरी हुई है—

मा गतानामा दीधीथाः। (८।१।८)

अर्थात् गुजरे हुओंके लिये कदापि दुःख-शोक मत करो। इस संसारकी वस्तुएँ समयके मुखमें हैं। जो अवश्यम्भावी है, जिसे तुम नहीं रोक सकते, उसके लिये भला रोना क्या?

ईश्वरकी दी हुई सबसे मूल्यवान् शक्ति यह है

ईश्वरने मनुष्यको दुःखोंसे छुटकारेके लिये जो शक्तियाँ दी हैं, उनमेंसे कष्टोंको भूलनेकी शक्ति बड़ी मूल्यवान् है। समय बीतनेपर दुःख स्वयं ही दूर हो जाते हैं। मनका क्लेश वक्त बीतनेपर खुद हलका होने लगता है।

एक समय होता है। विशेषतः बचपन और यौवनमें। जब यह जी करता है कि जो कुछ एक बार पढ लिया जाय, या सीख लिया जाय, सुन लिया जाय, वह हमेशा याद रहे। हमारी स्मरण-शक्ति कभी कम न हो।

पर जैसे-जैसे अवस्था बढ़ती है और कटु प्रसंग आते हैं, तो यह अनुभव हो जाता है कि विस्मरणशक्ति अर्थात् भूलनेकी शक्ति स्मरणशक्तिसे अधिक मूल्यवान् है। यदि सभी कटु, दर्दनाक, मृत्यु या हानिकी बातें मनुष्यको याद रह जायँ, तो उसका मस्तिष्क कूड़े-

करकट, काँटों और झाड़-झंखाड़से भर जायगा। मनुष्यके जीवनमें नित्य ही ऐसी बातें गुजरती हैं, जिनसे हृदयको बड़ा आघात पहुँचता है। उनमेंसे थोड़ी-सी भी बातें अगर हमेशा याद आती रहें, तो उसका समस्त भावी जीवन शूलमय, कण्टकपूर्ण और वेदनामय हो जाय।

इसलिये जब निकट सम्पर्कमें रहनेवाले सगे-सम्बन्धी मित्र स्वर्गवासी हो जाते हैं, तो धीरे-धीरे उनकी याद भी भूल जाना जरूरी होता है। उन्हें भूलकर ही मनुष्य सुखी और स्वस्थ जीवन बिता सकता है। ईश्वरकी यह बड़ी भारी देन है।

मनको शीतल होने दीजिये

यदि आप किसी आकस्मिक दुर्घटना, मृत्यु, शोक, हानि, चिन्ता, कलह या और किसी भयंकर कष्टसे पीड़ित हैं, तो जल्दी आवेशमें कोई काम मत कर बैठिये। मनको शान्त, शीतल और सतुलित होने दीजिये। ठंडे मनसे विचार करनेपर बुद्धि निर्विकार हो जाती है। आवेश, चिन्ता और उद्वेग मस्तिष्कको पंगु कर देनेवाले विकार हैं।

कानूनमें फैसला तुरंत ही नहीं हो जाता, वरं सबूत इकट्ठा करनेमें महीनों और वर्षों लग जाते हैं। दोनों पक्ष समयकी रफ्तारसे ठंडे पड़ जाते हैं। समयकी इस गतिसे आवेशमें होनेवाले बहुत-से झगड़े-टंटे स्वतः शान्त हो जाते हैं। लड़ने-झगड़नेवाले दोनों पक्ष अपनी भूलका अनुभव कर लेते हैं और अनेक बार तो समझौता स्वतः हो जाता है। कोई महत्त्वपूर्ण निर्णय करनेसे पूर्व कुछ समय अवश्य

व्यतीत हो जाने दीजिये। ऐसा करनेसे आवेशका तूफ़ान बुद्धि और निर्णय-शक्तिको मन्द नहीं होने देगा।

आप निराश कदापि न हों

आपके जीवनमें ऐसे-ऐसे संकट आयेंगे कि ऐसा प्रतीत होगा मानो अन्त निकट आ गया है, बचनेका कोई मार्ग ही नहीं है। चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार दिखायी देगा। प्रकाशकी एक क्षीण रेखातक नजर न आयेगी।

फिर भी आप निराश न हों। हिम्मत न हारें। समय बीतने दें। बस, कुछ दिन ठहर जायँ। विस्मरण वह मृदु मरहम है, जो आपके जख्मोंपर दवाका काम देगा और आपको पूर्ण स्वस्थ कर देगा। समय बीतनेपर आप अपने कष्टों और विपत्तियोंको खुद ही भूल जायँगे।

समय सर्वोपरि है। वह हमें वे शक्तियाँ देता है, जिनसे हमारे मनका भार हल्का हो जाता है। अंदरके दुर्भाव खुद दूर हो जाते हैं।

फारसके एक राजाने अपनी अँगूठीपर ये शब्द खुदवाये थे—

'यह स्थिति भी नहीं रहेगी।'

अर्थात् अच्छी स्थिति आयेगी। समय सदा एक-सा नहीं रहता। गति ही जीवनका लक्षण है। हम न किसी विषम स्थितिसे चिन्तित हों, न तनिक-से लाभसे फूल उठें। अच्छी या बुरी जैसी भी स्थिति हो, हम धैर्यसे समयको बीतने दें। समय आयेगा जब हमारी विषम-से-विषम स्थिति अच्छाईमें बदलेगी।



मौतके मुँहसे बचा और इस प्रकार नयी जिंदगी मिली !

पानीमें भी मीन पियासी

राकफेलरको कौन नहीं जानता ?

'वह अपने युगका सबसे अमीर व्यक्ति था। उसका धन ही उसकी ख्यातिका कारण था।'

उसका उत्तर ठीक है।

वास्तवमें राकफेलर अमेरिकाका सबसे बड़ा पूँजीपति था। धनकी महिमा दूर-दूरतक स्वयं फैलती है। अपने व्यापारसे राकफेलरने सबसे अधिक धन कमाया था। उसे लक्ष्मीपुत्र कहा जाता था।

कहते हैं उसके पास इतनी असीम धनराशि थी कि पूरे शहरको भोजन देता रहे, तो भी न समाप्त हो। कमाई भी न करे, तो कई पीढ़ियाँ उसी शानसे सुख भोगती रहें !

हमारे यहाँ कुवेरको धनका देवता कहते हैं। इस दृष्टिसे आधुनिक धन-कुबेर राकफेलर था। मंडीमें वह जिस मालको खरीदना प्रारम्भ करता, पूरी मंडीकी वस्तुओंको खरीद डालता। उसके मुकाबलेमें खड़े होनेकी हिम्मत किसीको न थी, कोई उसके साथ प्रतियोगिता करनेकी हिम्मत ही न कर पाता था।

यदि केवल धन-सम्पदा, जमीन-जायदाद इत्यादिको ही मनुष्यकी सुख शान्तिका आधार या ऐश-आरामको ही संसारका चरम लक्ष्य समझा जाय या सफलताकी कसौटी माना जाय तो राकफेलरको संसारका सबसे प्रसन्न और सफल व्यक्ति समझा जाना चाहिये था।

वह रुपयेकी शक्तिसे सभी कुछ खरीद सकता था—उत्तमोत्तम भोजन, बढ़िया वस्त्र, आलीशान गगनचुम्बी महल, कोठियाँ, मोटर-कार, हवाई जहाज, आमोद-प्रमोद तथा भोगविलासकी असंख्य आधुनिकतम वस्तुएँ, हर प्रकारका सुख और सुविधा !

सच मानिये, कुछ भी उसके लिये असम्भव न था। इस समाज और धरतीका कौन आनन्द था, जो उसके रुपये उसे खरीदकर न दे सकते थे।

राकफेलरकी व्यापारिक बुद्धिका चमत्कार इस बातसे जाना जा सकता है कि उसने अपने दस लाख डालर २३ वर्षकी कच्ची उम्रमें ही कमा लिये थे।

वह व्यापारमें कुशल था, साहसी था, बाजारके भावोंके उतार-चढ़ावमें दूरदर्शी था। उसके हाथोंमें व्यापारिक बल था और धी

हृदयमें धनकी अतृप्त आकाङ्क्षा । संसारकी प्रसिद्ध स्टैण्डर्स वैक्यूम आइल कम्पनीका स्वामित्व उसने ४३ वर्षकी आयुमें ही प्राप्त कर लिया था । अपार धनराशि बैंकोंमें उसके नामपर जमा थी । अनेक सूत्रोंसे अनाप-शनाप धन आ रहा था उसके पास ।

असमयमें ही मौतके मुँहमें

पर शोककी बात थी । जीवनका हरा-भरा सुरभित और मधुर रूप वह नहीं देख पाया था । उसका यौवन धनरूपी फूलोंपर फुदक तो रहा था, पर अंदरसे अतृप्त और शुष्क ही था । धन और सांसारिक उन्नतिमें लहरा-लहराकर वह अपना भ्रमर-मन न टटोल पाया था ।

५३ वर्षका धनकुबेर मनसे अशान्त और उद्विग्न था । उसे नाना प्रकारकी छोटी-बड़ी चिन्ताओंने अपना शिकार बना लिया था ।

बात यह थी कि उसे हर समय कोई-न-कोई चिन्ता बनी ही रहती थी । धन अपने साथ अतृप्ति भी लाता है । हर घड़ी विषाद, व्यापारमें हानिकी आशङ्का, हिसाव-कितावमें गड़बड़ी, आयकर-सम्बन्धी मुकदमोंकी परेशानी, कम्पनियोंमें नुकसानका डर, बैंकोंके फेल हो जानेकी कुकल्पना, चलते-फिरते किसी मुकदमेमें फँस जानेकी चिन्ता, रुपया न डूब जाय—चोरी न हो जाय इत्यादि चिन्ताएँ उसे हरदम सताती रहती थीं ।

कभी वह सोचता—कौन कार्यकर्त्ता कैसा काम कर रहा है ? व्यर्थ समय बरबाद तो नहीं कर रहा है ? भ्रष्टाचार करेगा, या नुकसान तो नहीं पहुँचायेगा, धोखा तो नहीं देगा ? एक नहीं सैकड़ों प्रकारकी छोटी-बड़ी तात्कालिक या देरमें आनेवाली चिन्ताओंने उसे बुरी तरह अपने कुटिल पंजोंमें जकड़ लिया था।

बाहरसे रेशमी सिल्कके बहुमूल्य वस्त्र पहननेवाला, गगनचुम्बी अट्टालिकाओंमें निवास करने और प्रतिदिन नवीन सुस्वादु कीमती भोजन करनेवाला, सैकड़ों नौकरोंसे अपनी सेवा कराकर भी बेचारा राकफेलर ५३ वर्षकी आयुमें केवल अतृप्ति और चिन्ताओंके कारण सूखकर हड्डियोंका नर-कंकाल मात्र रह गया था। कैसी दुर्वह विडम्बना थी ?

चिन्ताके कारण उसके शरीरका बुरा हाल था। सिरके बाल उड़ गये। फिर भौहके बाल कम होने लगे। गंज होती जा रही थी। वह सोचता था यह क्या माजरा है।

उसकी भूख कम होते-होते जाती रही। अब हालत यह थी कि बढ़िया भोजन मेजपर शानसे लगा उसकी प्रतीक्षा कर रहा है और वह उसके सामने जानेमें ढिलमिल कर रहा है। घरवाले चाहते हैं कि किसी प्रकार दो कौर भोजन कर ले, पर भोजनकी ओरसे उसे अरुचि है। कभी अग्निमान्द्य तो कभी कब्ज, कभी दस्त तो कभी पेचिस! डाक्टर हैरान कि क्या करें, कैसे प्राण बचायें।

उसके चेहरेके तेज और लावण्यपर वृद्धावस्थाकी कालिमा

मँडराने लगी। मौतकी कुटिल छाया उसपर पड़ रही थी। गाल पिचके और दाँत जवाब देने लगे। रातको नींद न आती, गुदगुदे बिस्तरपर करवटें बदलते-बदलते आँखें खोले-खोले ही सारी रात कट जाती। बुरे स्वप्न दीखते थे।

कमरमें दर्द और झुकाव था, चलते हुए पैर लड़खड़ाते थे। ऐसा लगता था जैसे कोई भारी-भरकम अट्टालिका अब गिरी, अब गिरी।

चारों ओर उसे अपने कामके बिगड़ जानेका गुप्त भय सताया करता था। जीवनसे वह निराश—निरुपाय था। मनमें तनाव था और हृदय बेचैन।

बाहरसे कोई अनुमानतक नहीं कर सकता था कि इस अमीरको भी जीवनमें कोई परेशानी हो सकती थी, पर उसके भीतर तो चिन्ताओंकी आग जल रही थी और अत्यन्त कुटिल संकल्पोंका संघर्ष चल रहा था। प्रतिदिन उनकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी। एक चिन्ता बढ़कर दस नयी-नयी चिन्ताओंको जन्म दे रही थी। वह चिन्ताके वास्तविक विषयसे परेशान न रहकर उसके प्रतीकसे परेशान रहने लगा। उस धनकुबेरके अस्थि-पञ्जरवत् शरीरको देखकर दुःख होता था।

जीवनके प्रभातमें वह ऐसा न था

जीवनके प्रभातमें राकफेलर एक हट्टे-कट्टे स्वस्थ शरीरवाला युवक था। उसमें मानसिक तनाव न था। वह गाँवमें रहता था।

वहाँके निर्द्वन्द्व वातावरण तथा उन्मुक्त वायु और खुले प्रकाशमें बड़ा हुआ था। जिंदगीके प्रति उत्साह था, शरीर मजबूत था। कंधा उठा, सीना तान, मस्त बैलकी तरह चला करता था।

लेकिन मायाके कुचक्रने उन्हें चौपट कर दिया। जैसे-जैसे उसके पास धन आता और इकट्ठा होता गया, वैसे-वैसे ही अधिकाधिक अमीर बननेकी अदम्य अभिलाषा, अमीरियतमें दूसरोंको परास्त करनेकी प्रतियोगिताके भाव उसके मनको दबाने लगे। आर्थिक चिन्ताओंने उसके फूल-जैसे मस्त जीवनपर घातक विषैला तनाव डालना शुरू कर दिया। मानसिक तनावके कारण उसकी तन्दुरुस्ती क्रमशः गिरती गयी। ५३ वर्षकी आयुमें वह सूखकर अस्थियोंका ढाँचामात्र रह गया। पानीमें भी जैसे मछली प्यासी थी। जलमें कमल सूख रहा था। उसका जीवन चलता-फिरता मुर्दा था।

तनिक कल्पना कीजिये, उसकी आय प्रति सप्ताह बीस लाख डालर थी, किंतु वह प्रति सप्ताह दो डालरका भोजन भी नहीं पचा पाता था। थोड़ेसे दूध तथा रोटीके एक टुकड़ेको पचा लेना भी उसके लिये बड़ी बात थी।

थोड़ी-सी हानि या व्यापारमें नुकसानकी आशङ्कासे वह बुरी तरह अस्त-व्यस्त हो जाता था। चिन्ता उसे बुरी तरह दबा देती। एक चिन्ता आते ही रातभर उनींदा रह जाता था वह।

एक बार यह हुआ !

जिंदगीमें थपेड़े आते रहते हैं। समुद्रकी लहरोंकी भाँति उतार-चढ़ाव जीवनका क्रम है।

राकफेलरने चालीस हजार डालर मूल्यके अनाजका एक जहाज व्यापारके लिये विदेश भेजा था। यह ग्रजलेक्ससे होकर गया था। मालकी सुरक्षाके लिये प्रायः बीमा कराया जाता है। इस जहाजका बीमा करानेमें ड़ेढ़ सौ डालर खर्चा आता था। इस पैसेको बचानेके लोभसे बीमा नहीं कराया गया। वैसे ही जहाज यात्रापर रवाना हो गया।

संयोगकी बात, उसी रातको लेक्सपर बड़ा तूफान आया।

इस तूफानका पता चलते ही, राकफेलरको अपने जहाजकी सुरक्षाकी भयानक चिन्ता लग गयी। वह सोचने लगा—'कहीं यह तूफानमें डूब न जाय? भयंकर नुकसान हो जायगा। हाय! कितनी बड़ी गल्ती हो गयी। इस जहाजके मालके नष्ट हो जानेसे व्यापारमें बड़ी हानि हो जायगी। तब क्या होगा? उफ, मेरी मूर्खता, मेरी अदूरदर्शिता•••! अब क्या करूँ?'

हजारों प्रकारकी चिन्ताओंने उसे झँझोड़कर रख दिया। सारी रात करवटें काटते बीती।

सबेरे जब उसका भागीदार जौर्ज गार्डनर आफिस आया, तब उसने राकफेलरको बडा चिन्तातुर देखा। सब आशङ्का सुनी। उसे भी लगा कि थोड़े-से पैसोंके लोभमें आकर भारी मूर्खता कर बैठे हैं। व्यापारमें बड़ी हानिकी आशङ्का थी।

किंतु अब क्या हो सकता था? तीर हाथसे छूट चुका था।

'अरे भाई! जो कुछ भी हो, जल्दी करो। किसी मूल्यपर बीमा हो सके तो तुरंत करा दो। अब देर मत करो। जल्दी दौड़ जाओ। जितनी अधिक देर होती है, नुकसानकी आशङ्का बढ़ती जाती है।'

राकफेलरने अपने भागीदारको किसी शर्तपर अधिक-से-अधिक प्रीमियम देकर तुरंत अनाजसे भरे हुए जहाजका बीमा करवानेको दौड़ाया।

बेचारा गार्डनर दौड़ा-दौड़ा गया। बड़ी मिन्नतें—खुशामदें कीं, जो कुछ अधिक-से-अधिक बीमाकी रकम माँगी गयी, उसे देकर आखिर किसी तरह जहाजका बीमा करवा दिया गया। तब राकफेलरकी चिन्ता कुछ दूर हुई। चाहे खर्च अधिक हो गया, पर बीमा तो हो गयी—यही संतोष था।

फिर एक नया मानसिक आघात !

किंतु चिन्ता भूतकी तरह मनुष्यपर सवार हो जाती है और नित्य नये-नये कारण ढूँढ़ती रहती है। राकफेलरके मनपर फिर हथौड़ेकी चोट लगी। एक नयी परेशानीने उसे फिर व्यग्र कर दिया।

यह सब क्यों हुआ ?

बीमा करवाये ७-८ घंटे हुए थे कि इसी बीच समाचार आया कि उसका माल गन्तव्य स्थानपर सही-सलामत पहुँच गया था। सौभाग्यसे उसे कोई नुकसान नहीं हुआ था।

और कोई शुद्ध प्रवृत्तिका व्यक्ति होता तो ईश्वरकी इस बड़ी कृपाके लिये अनेक धन्यवाद देता, दान देता और खुशियाँ मनाता। प्रेमसे मित्रोंको भोजन कराता। उसकी प्रसन्नताका कोई ठिकाना न होता।

पर राकफेलर नकारात्मक विचारों (Negative thinking) में फँसा रहनेवाला धनकुबेर था। उसने अब इस तरह सोचना प्रारम्भ किया—

तनिक-सा काम था और मैं यों ही इतना डर गया। इस व्यर्थ भयसे आक्रान्त होकर बीमा करानेमें मैंने यों ही अपने डेढ सौ डालर बरबाद कर दिये। हाय! मेरा इतना धन जरा-से फिक्रसे नष्ट हो गया। मैं भी कैसा अदूरदर्शी मूर्ख हूँ। कितना नुकसान हो गया! ऐसे धन बरबाद करता रहा, तो मुझे व्यापारमें लाभ कैसे होगा? कहीं मैं गरीब न हो जाऊँ?

इसी प्रकार कुत्सित चिन्तन करते-करते अपने धनकी चिन्तामें राकफेलर बीमार पड़ गया। उसने अधिक चिन्तित होकर खटिया ही पकड़ ली। दिनभर वह अपनी फजूलखर्चीकी बातपर परेशान रहता। उस हानिके विचारोंने मनमें गुत्थी (Complex) बनकर जीर्ण चिन्ताका रूप धारण कर लिया। धनकी रक्षा और हाथसे यों ही निकले हुए धनके पश्चात्तापने जैसे उसे पागल-जैसा कर दिया। आत्महानिके विचार उसे परेशान करने लगे।

ऐसे जीवनसे क्या लाभ ?

यह झाँकी है दुनियाके एक सबसे अमीर आदमीके जीवनकी। ऐसे रुपये या व्यापारसे क्या लाभ, जो मनुष्यका अन्त ही कर दे ? राकफेलरके पास अनाप-शनाप रुपया था, जिसे शायद वह गिन भी नहीं पाता था ! कोई सांसारिक अभाव न था; पर फिर भी वह अपना सारा दिन अधिकाधिक धन कमाने या उसे बनाये रखने, जोड़ने और उसीके विषयमें सोचने-विचारनेमें व्यय करता था और किसी कार्यके लिये जैसे उसके पास कोई समय ही नहीं था।

अब समस्या यह थी कि राकफेलरको मौतके मुँहसे कैसे बचाया जाय ? कौन-सी चिकित्सा की जाय, जिससे उसके प्राण बचें ? बड़े-बड़े चिकित्सक आये, पर दवाईसे कोई लाभ न हुआ; क्योंकि उसकी बीमारी तो मानसिक थी।

उसके गुप्त मनमें असंतोष, लालच और चिन्ताएँ भावना-ग्रन्थियोंका रूप धारण किये बैठी थीं। मनोवैज्ञानिकोंसे सलाह ली गयी। किसी भी तरकीबसे प्राण बचें।

मनोवैज्ञानिक सलाह, जिससे नया जीवन मिला

मनोवैज्ञानिकोंने कहा, 'जिस व्यक्तिमें लोभका भाव जितना अधिक होता है, वह उतना ही अधिक चिन्ताओंसे भर जाता है। लोभीका मन संसारके उपयोगी रचनात्मक कार्योंको छोड़कर केवल एक छोटेसे केन्द्रमें जम जाता है। धनकी कामनाएँ कभी तृप्त

नहीं होतीं, हजारसे लाख और लाखसे करोड़ होनेपर भी अधिकाधिक पिपासा बढ़ती ही जाती है। अतः संग्रहका भाव त्यागकर संतोषका भाव अपनाना चाहिये।

'जिसके चित्तमें संतोष है; उसके लिये सर्वत्र धन-सम्पत्ति भरी हुई है; जिसके पैरमें जूते हैं, उसके लिये सारी पृथ्वी मानो चमड़ेसे ढकी है।

'संतोषरूपी अमृतसे तृप्त एवं शान्तचित्तवाले पुरुषको जो सुख प्राप्त है, वह धनके लोभसे इधर-उधर दौड़नेवाले बड़े-से-बड़े धनवान् लोगोंको कहाँ प्राप्त हो सकता है?'

राकफेलरके मित्रोंको सलाह दी गयी कि यदि उसे बचाना है तो उसका मन धनकी अतृप्त कामनासे हटाकर अन्य मनोरञ्जक विषयोंकी ओर लगाना चाहिये।

राकफेलरके भागीदार गार्डनर महोदयने उपर्युक्त सलाहको कार्यान्वित करनेकी एक युक्ति सोची। वह इस प्रकार थी—

गार्डनरने दो हजार डालरमें एक पालवाली नाव खरीदी। उसने स्वयं उसे चलाना सीखा। वह मजेमें उसे चलाता, प्रकृतिके उन्मुक्त चिन्तारहित वातावरणमें रहता और धार्मिक भजन गुनगुनाया करता था। इस नुस्खेसे उसे लाभ हुआ।

एक शनिवारको उसने राकफेलरको नौका-विहारका निमन्त्रण देते हुए कहा—'काम छोड़ो; चलो, इस धनके दमघोटू वातावरणसे

बाहर निकलकर दिल बहलायें । नावमें घूम लेने और भजन गानेसे तन और मन ताजा हो जायगा । जिंदगीमें रस और परिवर्तन आ जायगा । इस परिस्थिति और स्थानका परिवर्तन करो ।

राकफेलर उत्तेजित होकर बोला—'ऐसे फालतू कामके लिये मेरे पास वक्त नहीं ।'

गार्डनरने प्रेम-हठ किया—'मेरे मित्र ! तनिक खुले जीवन, उन्मुक्त प्रकृति, निश्चिन्त जीवनका आनन्द लो, परमेश्वरके नाममें स्वास्थ्यकी शक्ति छिपी है । भक्तिके गीत गुनगुनाओ, सांसारिकता छोड़ो ।'

राकफेलरको जबरदस्ती उस वातावरणसे हटाया गया । जैसे-जैसे वह धनके कुचक्रसे निकला और ईश्वरकी ओर बढ़ा, वैसे-वैसे ही उसके स्वास्थ्यमें लाभ दिखायी दिया । उसने अनुभव किया कि माया-मोहमें अति लिप्त रहना आधि-व्याधिका कारण है । अब उसने और भी ध्यानपूर्वक मनोवैज्ञानिक सलाह ली । मनोवैज्ञानिक डाक्टरोंने उसे कुछ और विस्तारसे लाभदायक सूत्र बतलाये, जो इस प्रकार थे—

"चिन्तासे दूर रहे; क्योंकि यह मानसिक तनाव उत्पन्न करती है । रुपये कमाने, ऋण वसूल करने, शेयरोंके भाव ऊँचे-नीचे होने, बैंकोंके फेल होने या अपनी पूँजीके मारे जानेकी किंचित् भी चिन्ता न करे । मनसे इस प्रकारका सारा तनाव (Tension) त्याग दे ।

"शरीरसे होनेवाले मनोरञ्जक रचनात्मक कार्योंमें दिलचस्पी ले। पर्याप्त मनोरञ्जन और आमोद-प्रमोद किया करे। बागवानी, पानीमें तैरना, खूब टहलना, पर्वतीय प्रदेशोंकी पैदल यात्राएँ करना-जैसे काम किया करे। प्रतिदिन हल्का व्यायाम किया करे।

"चिन्ता दूर करनेके ऊपरी तरीके जैसे सिगरेट, शराब, नशा वा नशेबाजीके उपाय सब बिल्कुल ही छोड़ दे।

"कई बार दिनमें हल्का भोजन करे। चाय, कहवा, मिठाई, मांस इत्यादि छोड़कर हल्का और फल तथा दूधयुक्त भोजन किया करे।

"मनको भय और लोभके प्रबल आवेगोंसे बचाता रहे। संतोष और तृप्तिकी शिवभावना और उदारताकी भावनाओंका अभ्यास और प्रयोग करे। हानि-लाभ दोनों ही स्थितियोंमें मनको पूर्ण शान्त, संतुलित और अविचलित रखा करे। मनमें सदा 'ईश्वर मेरे साथ हैं, मेरे सहायक और रक्षक हैं'—यह भाव रक्खे। किसी भी घटनाके विषयमें अधिक चिन्तित न रहे। अन्तिम परिणाम ईश्वरपर छोड़कर हर दशामें अपने मनको संतुलित बनाये रहे। प्रतिदिन भगवत्-पूजनसे दिनका प्रारम्भ करे और सोनेसे पूर्व दिनकी समाप्तिपर ईश्वरको धन्यवाद दे और प्रतिदिन भजन गाया करे।"

इस प्रकार नयी जिंदगी मिली

अब राकफेलर इन नियमोंका दृढ़तासे पालन करने लगा। जिंदगी बचानेके लिये उसने इन नियमोंको जीवनमें ढालना शुरू किया।

कुछ महीनोंमें ही उसे इस नुस्खेसे लाभ होने लगा। उसके जीवनका एक नया अध्याय आरम्भ हुआ। वह संकुचित स्वार्थ और लोभके विचारोंसे मुक्त होकर संतोषरूपी अमृतसे तृप्त होने लगा। खेलने-कूदने, आमोद-प्रमोद करने और नये-नये मनोरञ्जनोंमें समय देने लगा। वह बाग, देहात और खुले स्थानोंमें घूमता, नाचता और गाता था। सबसे बड़ी बात यह हुई कि वह भौतिकवादसे हटकर अध्यात्मवाद, भजन, पूजन, ईश्वर-चिन्तन और कल्याण-भावनामें रमण करने लगा। गिरजाघर जाकर धार्मिक भाषण सुनना, प्रार्थनामें सक्रिय भाग लेना, धार्मिक ग्रन्थ पढ़ना और धार्मिक उत्सवोंमें भाग लेना उसके जीवनका अङ्ग बन गया।

इस प्रकार राकफेलरकी जिंदगीने नयी करवट ली। धनके मायाचक्रसे पिण्ड छूटा। सांसारिकताके संकीर्ण दायरेसे हटकर अब वह संतोषवृत्तिकी ओर लगा। सेवा, कर्तव्य, भगवत्पूजन, निर्द्वन्द्व प्रसन्नतामूलक आशावादी दृष्टिकोण आ गया! धीरे-धीरे उसके शरीर और मनका कायाकल्प हो गया। खोया हुआ स्वास्थ्य और जीवन फिर लौट आया। जो व्यक्ति मौतके मुँहमें जानेकी प्रतिदिन बाट देख रहा था, उसे नयी जिंदगी मिली, नया यौवन मिला और वह तीस वर्ष और अधिक जीवित रहा। राकफेलरने अपनी इस नयी जिंदगीके मनोरञ्जक संस्मरण लिखे हैं। उनके अनुभवोंमेंसे कुछ कामकी बातें यहाँ दी जाती हैं।

'मैं धनकी चिन्तासे छूटा तो मुझे नयी जिंदगी मिली। मैंने अनुभव किया कि धनके असंतोषसे बढ़कर और कोई दुःख नहीं है।

'मैंने गोल्फ खेलना सीखा, खुली हवामें सुबह-शाम दूर-दूर-

तक टहलनेकी आदत डाली। प्रकृतिके वातावरणमें रहनेसे मेरी चिन्ता भागी। मैंने अनुभव किया कि शराफतसे जीवित रहनेके लिये मनुष्यको बहुत थोड़े-से पैसोंकी जरूरत है।

'धन-सञ्चयकी चिन्ता त्यागकर मैंने अपने पास-पड़ोसके साधारण व्यक्तियोंके जीवन तथा व्यक्तिगत समस्याओं, उनके हर्ष-विषाद, दुःख-दर्दमें सहानुभूतिपूर्वक हिस्सा लिया तथा उनके दुःख-दर्द दूर करनेका उपाय किया। नयोंसे मेल-जोल बढ़ाया। इन नये सम्पर्कोंसे मेरी चिन्ताएँ कम हो गयीं।

'मैंने अपनी सम्पत्तिकी चिन्ता छोड़ दी। मुझे अनुभव हो गया कि जीनेके लिये सुरक्षाकी दृष्टिसे मुझे भविष्यमें कपड़ा, भोजन और सम्मान—सदा यों ही मिलता रहेगा। इसलिये मैं प्रतिवर्ष कितना कमाता हूँ और कितना खर्च करता हूँ, इस हानि-लाभके विचारको मैंने त्याग दिया। मैंने अनुभव किया कि धनकी अपेक्षा जीवनमें और भी अधिक मूल्यवान् बहुत-से कार्य करनेके लिये मौजूद हैं।

'कितना धन मैं कमा सकता था, इसकी चिन्ता छोड़कर अब मैं यह सोचने लगा कि मेरा कितना धन गरीबोंके लिये सुख, शान्ति, सेवा, आराम और आनन्द खरीद सकता है। परोपकार और दानमें मैंने करोड़ों रुपया वितरित करना प्रारम्भ किया। अस्पतालों, अनाथालयों और पुस्तकालयोंमें बहुत सहायताएँ कीं। इस प्रकार मेरी नयी जिंदगी शुरू हुई और मुझे शान्त, तृप्त और दीर्घ-जीवन मिला।'

राकफेलरने जीवनका जो नवनीत निकाला था, उसे हमारे ऋषि-मुनि बहुत संक्षेपमें पहले ही इस प्रकार लिख गये हैं—

तृप्त दीर्घ-जीवनके अनमोल उपाय

सर्वस्त्विन्द्रियलोभेन संकटान्यवगाहते ॥
सर्वत्र सम्पदस्तस्य संतुष्टं यस्य मानसम् ।
उपानद्गूढपादस्य ननु चर्मावृतेव भूः ॥
संतोषामृततृप्तानां यत् सुखं शान्तचेतसाम् ।
कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम् ॥
असंतोषः परं दुःखं संतोषः परमं सुखम् ।
सुखार्थी पुरुषस्तस्मात् संतुष्टः सततं भवेत् ॥
(पद्म० सृष्टि० १९ । २५८—२६१)

स्मरण रखिये, मनुष्यकी इन्द्रियोंके लोभग्रस्त होनेसे मनुष्यका मूल्यवान् जीवन संकटमें पड़ जाता है ।

याद रखिये—जिस मनुष्यके हृदयमें संतोष है, उसके लिये सर्वत्र धन-सम्पत्ति भरी हुई है; जिसके पैर जूतेमें हैं, उसके लिये सारी पृथ्वी मानो चमड़ेसे ढकी हुई है ।

अर्थात् संतोषरूपी अमृतसे तृप्त एवं शान्त चित्तवाले पुरुषोंको जो सुख प्राप्त है, वह धनके लोभसे इधर-उधर दौड़नेवाले लोगोंको कहाँ प्राप्त हो सकता है ।

असंतोष ही सबसे बढ़कर दुःख है और संतोष ही सबसे बड़ा सुख है । अतः सुख (और दीर्घ-तृप्तजीवन) चाहनेवाले पुरुषको सदा संतुष्ट रहना चाहिये ।

संतोषो वै स्वर्गतमः संतोषः परमं सुखम् ।
तुष्टेर्न किंचित् परतः सा सम्यक्प्रतितिष्ठति ॥

यदा संहरते कामान् कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
तदाऽऽत्मज्योतिरचिरात् स्वात्मन्येव प्रसीदति ॥
न बिभेति यदा चायं यदा चास्मान्न बिभ्यति ।
कामद्वेषौ च जयति तदाऽऽत्मानं च पश्यति ॥
यदासौ सर्वभूतानां न द्रुह्यति न काङ्क्षति ।
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥

(महाभारत, शान्तिपर्व २१ । २–५)

संतोष ही सबसे बड़ा स्वर्ग है । संतोष ही सबसे बड़ा सुख है । संतोषसे बढ़कर और कुछ भी नहीं है । इस संतोषकी प्रतिष्ठा—स्थिरता निम्नलिखित उपायोंसे होती है—

अर्थात् 'कछुवेकी भाँति जब सब ओरसे अपने अङ्गोंको समेट लेता है, तब यह स्वयंप्रकाश आत्मा शीघ्र ही भेददृष्टिरूप मलको त्यागकर अपने ही स्वरूपमें स्थित हो जाता है ।

जब न तो इसे दूसरेका भय रहता है और न इससे दूसरे भय खाते हैं और जब यह इच्छा और द्वेषको जीत लेता है तब इसे आत्माका साक्षात्कार होता है ।

जब यह मनसा-वाचा-कर्मणा किसी भी जीवके साथ न तो द्रोह करता है और न किसीसे राग ही करता है, तब इसे ब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है ।'

इन महत्त्वपूर्ण तथ्योंका मर्म समझनेसे कोई भी मौतके मुँहसे बचकर नयी जिंदगी पा सकता है ।

चिन्ता छोड़िये और प्रसन्न रहिये ।



आत्महत्या करनेवाले मूर्ख

आप आश्चर्य करेंगे, हमारे देशमें प्रतिवर्ष अठारह लाख अपराध होते हैं। पंद्रह हजारसे सतरह हजार व्यक्ति मानसिक रोगों या उत्तेजनाओंसे ग्रसित होकर आत्महत्याएँ करते हैं। आत्महत्या करनेवालोंमें निराश युवक और कलहसे परेशान युवतियोंकी संख्या सबसे अधिक है।

मनुष्यने द्रुतगतिसे भौतिक और वैज्ञानिक उन्नति की है, आराम और चिकित्साकी बड़ी-से-बड़ी सुविधाएँ हमारे पास हैं, फिर भी १५ से १७ हजार व्यक्ति जान-बूझकर स्वयं अपनी हत्याएँ कर डालते हैं। इससे बड़े दुर्भाग्यकी बात क्या हो सकती है !*

एक उदाहरण लीजिये—

लगभग १७ लाखकी जनसंख्यावाले आगरा नगर एवं जिलेमें हर चौबीस घंटोंमें आत्महत्याकी एक दुःखद घटना हो जाती है।

---

* भौतिक सुख-सुविधाओंकी प्रबल लालसाको लेकर जितना ही मनुष्य असंयमी, असहिष्णु और असंतुष्ट होगा उतनी ही आत्महत्याकारियों और उन्मादके रोगियोंकी संख्या बढ़ेगी। संतोषके विना कदापि इसमें रुकावट नहीं आयेगी। इसीसे सबसे अधिक सुखसुविधासम्पन्न अमेरिकामें आत्महत्यारों और पागलोंकी संख्या सबसे अधिक है !

एक वर्षकी ३६९ घटनाओंकी रिपोर्ट विभिन्न स्थानोंपर की गयी थी।' इनमें १३७ स्त्रियाँ थीं, शेष पुरुष।

१८ से २५ वर्षतककी आयुके कच्चे अविकसित मन तथा आगा-पीछा न सोचनेवाले युवक-युवतियाँ आत्महत्यासे ग्रसित पाये गये। कुछ बड़े व्यक्ति भी मन-ही-मन आत्महत्याकी बातें सोचा करते हैं।

आत्महत्याके विचार एक मानसिक रोग हैं

जिन व्यक्तियोंके मनमें आत्महत्याकी कायरतासे भरे विचार आया करते हैं, वे एक प्रकारके मानसिक रोगी हैं। ये रोगी आधे पागल, उत्तेजक स्वभावके, चिड़चिड़े वा स्नायविक तनाव (न्यूरोसिस) के शिकार होते हैं। कुछ वृद्ध सदा मानसिक तनाव और अधिक दिमागी श्रम करने या आर्थिक हानिसे परेशान होकर आत्महत्या कर बैठते है।

कहीं आपके मनमें भी तो आत्महत्याके घृणित डरपोक विचार नहीं आते हैं? क्या आप भी जीवनसे परेशान हैं, ऊबे हुए हैं और शायद उसमें कुछ रस, सौन्दर्य या आकर्षणका अनुभव नहीं करते हैं?

आप शायद बेरोजगारी और आर्थिक तंगीसे परेशान हैं। नौकरी नहीं लग रही है, व्यापार करना नहीं आता, गरीबीके कारण आपको मानहानि सहनी पड़ती है। आप एक दफ्तरसे दूसरे दफ्तरमें चक्कर काटते रहते हैं, पर कहीं सर्विस नहीं लगती। हाथ तंग है।

घरवाले आपको परेशान किये हैं। हारकर आप जीवनका अन्त कर डालनेकी सोचते रहते हैं!

शायद आपके व्यापारमें घाटा आ गया है। दुबारा व्यापार सँभळनेकी कोई आशा नहीं दीखती। उधार सारा मारा गया है और बाजारमें साख जाती रही है। कर्जके भारसे आप बुरी तरह परेशान हैं। इज्जत बचानेके लिये मरना ही आपको अच्छा दीखता है!

क्या आप किसी लंबी बीमारीसे व्यग्र और चिन्तित है? उस बीमारीसे तिल-तिल कर मरनेकी अपेक्षा एक बार ही जीवनका अन्त कर देनेकी बुरी बात आपके मनमें है?

आप पारस्परिक द्वेष, किसीसे शत्रुता, प्रतिशोध या और किसी पेंचदार मानसिक उलझन, घरेलू या पारिवारिक कलह या मानसिक कष्टमें फँसे हुए है? आपको कोई मानसिक आघात तो नहीं लगा है? आप अपनी कन्याका विवाह नहीं कर पा रहे हैं या लड़कोंकी आवारागर्दीसे परेशान रहते हैं?

शायद आप अनजानेमें कोई गुप्त पाप कर बैठे है। किसी घृणित कार्यमें पकड़े गये है। मुकदमा चल रहा है। उससे घबराकर पेंचीदी बातको न सुलझा सकनेके कारण आत्महत्याकी बात सोचते हैं!

शायद आप कोई विद्यार्थी है। आप किसी परीक्षामें फेल हो गये हैं। कई बार फेल हुए हैं। घरवालोंके व्यंग-बाणोंसे परेशान होकर मरनेकी बात सोचते है।

आप कदाचित् किसीसे प्रेम करते थे। उस प्रेममें निराश हो मानसिक आघात लगनेसे आत्महत्याकी अधार्मिक बातें सोचा करते है।

आपके कष्ट क्षणिक हैं

जीवनमें एक नहीं, कष्ट और मानसिक पीड़ाएँ तरह-तरहके रूप और ढंग रखकर प्रतिदिन-प्रतिपल हमारे मानस-क्षितिजपर उदित हुआ करती हैं। जितने मनुष्योंके रूप, मानसिक संस्थान, गुण, कर्म और स्वरूप हैं, उतने ही प्रकारके कष्ट और झंझटोंका क्रम निरन्तर चलता रहता है। विपत्ति किसपर नहीं आयी? कष्टोंने किसको नहीं पीसा है? मुसीवतके काले-काले भयंकर बादल किस मानवपर नहीं मँड़राये हैं? तनिक आकाशको ही देखिये। अभी यह स्वच्छ है—नीला-नीला, लेकिन क्षणभर पश्चात् न जाने कहाँसे काले बादल आकर छा जाते हैं। चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार फैल जाता है। आँधी, तूफान, वर्षा, वज्रपात सभीका डर हो जाता है।

किंतु फिर आँधी रुकती है। तूफान कम हो जाता है। काले बादल किधरसे आये थे, फिर कहीं गायब हो जाते हैं। आकाश फिर स्वच्छ है।

यही हाल मानव-जीवनका है। विपत्तियाँ आती है। मनुष्य तनिक-सी परेशानीसे मजबूर हो जाता है। यही समझता है कि बस, अब अन्त आ गया। अब बचनेकी कोई भी आशा नहीं है। लेकिन वे कष्ट, वे विषम समस्याएँ, वे विवशताएँ, वे जटिल गुत्थियाँ समय पाकर खुद दूर होने लगती हैं।

ईश्वर नहीं चाहता कि मनुष्य व्यर्थके छोटे-छोटे कष्टोंसे उद्विग्न बना रहे। वह तनिक-सा दुःख डालकर हमारे धैर्य और सहन-

शीलताकी परीक्षा लिया करता है। कमजोर व्यक्ति ही जल्दी निराश होते हैं।

आप हीन नहीं, महान् आत्मा हैं

आप कमजोर नहीं हैं। दीन, हीन और निर्बल संकल्पवाले नहीं है। सांसारिक कठिनाइयाँ आपको कभी पस्त नहीं कर सकेंगी। यह मनमें जो चिन्ताकी धधकती अग्नि लिये बैठे हैं, यह आग जो आपको जलाये डाल रही है, इसे तुरंत बुझा डालिये।

विश्वास कीजिये, कल-परसोंतक आपकी ये विकट समस्याएँ स्वतः ही हल होनेवाली हैं। बस, एक-दो दिनके लिये और रुक जाइये। परिस्थितियोंको खुद सुलझने दीजिये। ईश्वरके हाथ बहुत लंबे है। वे सहायताके लिये, आपकी समस्याओंको सुलझानेके लिये दौड़े आ रहे हैं।

यह जिंदगी जीने योग्य है। इसमें मिठास है। कड़वाहट तो थोड़े ही दिनोंकी है। क्या आपने यह महान् उक्ति सुनी है—

अयं लोकः प्रियतमो देवानामपराजितः।
यस्मै त्वमिह मृत्यवे दिष्टः पुरुष जज्ञिषे॥
स च त्वानु ह्वयामसि मा पुरा जरसो मृथाः।
(अथर्व० ५। ३०। १७)

अर्थात् हे मनुष्यो! यह संसार देवताओंका प्यारा लोक है। यहाँ भला पराजयका क्या काम? तुम समझते हो, तुम मौतके प्रति संकल्पे जा चुके हो, यह बात नहीं है। हम उसे सुनाते हुए तुम्हें वापिस बुलाते है। बुढ़ापेसे पहले मरनेका नाम कभी मत लो।

अपनी समस्त कठिनाइयोंके बावजूद यह मनुष्यका जीवन यश और सौन्दर्यसे भरा है, हर प्रकार जीने योग्य है।

आ त एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे।
ज्योक् च सूर्यं दृशे (ऋ० १०।५७।४)

अर्थात् (कायर मत बनो) उठो, होश सँभालो। फिर सोच-विचारको, कर्म-कौशलको, जीवनको चेतो। अभी तुम्हें चिरकालतक सूर्य भगवान्‌के दर्शन करते रहना है।

वास्तवमें अनेक युगोंके पुण्य-फलोंके कारण तुमको यह देव-दुर्लभ मनुष्य-शरीर प्राप्त हुआ है। मानव-जीवन पाकर उसे भव्य उद्देश्योंमें लगाना चाहिये। इस देहमें ईश्वर बसते हैं। याद रक्खो—

आ मृत्योः श्रियमन्विच्छेत्। (मनु० ४।१३७)

अर्थात् जबतक यह मानव-जीवन है, ऐश्वर्यकी कामना करनी ही उचित है।

दूसरोंके लिये जीवन धारण कीजिये

अपने लिये जिओ। अपने परिवारके लिये शरीर धारण करो। यदि परिवार न हो तो पीड़ित और दुःखित मानवताके दुःखोंके निवारणके लिये जिओ। संसार तुम्हारा सहारा चाहता है।

याद रक्खो—आत्महत्याका विचारतक पाप है। बुद्धिकी दुर्बलता है, बहुत बड़ी कायरता है। तुम्हारे बुद्धि-बलका प्रयोग जीवनको सशक्त और यशस्वी बनानेमें व्यय होना चाहिये। जो अपनी स्वयं हत्याकी बात सोचते हैं, वे अपने साथ बड़ा भारी अन्याय करते हैं।

नीतिका वचन है—

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्।

जिसमें सद्बुद्धि है, उसीमें सच्चा बल है। उसीमें जीवन है। निर्बुद्धिमें बल कहाँसे आया?

अधिकतर आत्महत्याएँ अकस्मात् उत्तेजना और क्रोध-जैसे पाशविक विकारोंके दुष्परिणाम हैं। मनुष्य आवेशमें आकर हतबुद्धि हो जाता है, विवेक काम नहीं करता, तनिक-सी भी कड़वी बात सहन नहीं होती और कलहका विष पचाये नहीं पचता। इसका कुफल आत्महत्या होती है। 'बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।'

हमें क्रोधके समय बहुत सावधान हो जाना चाहिये कि कहीं हम अंधाधुंध बुरा कार्य न कर बैठें। मानसिक आवेगको तुरंत रोकना ही परम पुरुषार्थ है। क्षणिक उत्तेजनामें कोई भी कार्य न करें। कुछ रुकें, जबतक आपका मानसिक संतुलन ठीक न हो जाय। अत्यधिक क्रोध, चिन्ता, ईर्ष्या, शोक, भय-जैसी कोई भी अस्वस्थ मानसिक अवस्था हमेशा आपको खतरनाक मनःस्थितिमें डालती है। इस विषैली स्थितिसे सदैव बचिये।

मङ्गलमय प्रभुके विधानमें आपके लिये सब कुछ है। ठहरिये, अच्छा समय आपको ढूँढ़ता भागा चला आ रहा है। आपका जीवन प्रभुका दिया हुआ दैवी वरदान है। उसे समयसे पूर्व हत्या कर समाप्त करनेका आपको कोई अधिकार नहीं है। जो समयसे पूर्व उसे नष्ट करते हैं, उनके लिये सबसे अधिक कष्टमय रौरव नरकका विधान है।



दुनियामें ऐसे कितने व्यक्ति हैं जिनके सारे मनोरथ पूर्ण हो पाते हैं ?

आप अपने अतीत कालको देखते हैं, यौवनके प्रभातमें बनाये गये उच्च उद्देश्यों और महत्त्वाकाङ्क्षाओंके सुनहरे सपनोंको याद करते हैं और एक हल्की-सी आह लेकर कहते हैं—

'हाय ! हम अमुक कार्य न कर सके। हम अमुक पद प्राप्त न कर सके। हमें सार्वजनिक क्षेत्रमें यश और प्रतिष्ठा प्राप्त न हो सकी। जो कुछ हमने किया, उसके बदलेमें जो कुछ महत्त्व, पद, मान इत्यादि हमें पाना चाहिये था, वह हम न पा सके! हमें अनेक ऐसे व्यक्ति दीखते हैं जिन्होंने हमसे न जाने कितना कम अध्यवसाय और परिश्रम किया है और न जाने हमसे कितना अधिक पाया है ?'

फिर आप मन-ही-मन एक घोर निराशा, एक जलन, सफल व्यक्तियोंके प्रति एक ईर्ष्यासे भरकर जलभुन उठते हैं।

इस वृत्तिको भग्न मनोरथोंसे उत्पन्न नैराश्य कहते हैं। अंग्रेजीमें इसे 'फ्रस्टेशन' कहा गया है। इस वृत्तिसे ग्रसित व्यक्ति सदा दुनिया और समाजको कोसता रहता है। उसे ऐसा प्रतीत होता है मानो सारा समाज ही हाथ धोकर उसके पीछे पड़ गया हो और उसे नीचे धकेलनेपर तुला हुआ हो, उसकी उन्नतिमें बाधक हो।

आजके युगमें दलबंदी है, पक्षपात है, नीच स्वार्थ है, रिश्वत है, चापलूसी है। प्रत्येक व्यक्तिने अपना पृथक् एक गिरोह बना रक्खा है। सम्भव है आप इन दुनियादारीके छल-छद्मोंसे परिचित नहीं हैं और इन्हींके कारण आप समाज या अपने अफसरके कोपभाजन बन रहे हैं।

हो सकता है कि आपने अपने मनोरथोंको पूर्ण करनेके लिये पर्याप्त प्रयत्न ही नहीं किया या आवश्यक योग्यता ही प्राप्त नहीं की। आपके मनोरथोंकी असफलताका कारण पुरुषार्थ और आत्मबलकी कमी हो या अभ्याससे अपनी शक्तियोंको ही आपने पुष्ट न किया हो।

हो सकता है आपकी परिस्थिति कुछ कालके लिये विषम हो गयी हो और आपमें इतना धैर्य न रहा हो कि वह गुजर ले। एक विद्वान्ने तो लिखा है कि अनेक व्यक्ति सफलताकी उस स्थितितक पहुँचकर हतोत्साह हो जाते हैं जब कि वे सफलताके बहुत ही समीप होते हैं। यदि कसकर एक हाथ और मारें तो विजय उनकी हो सकती है, किंतु वे एक अन्तिम मौकेपर प्रयत्न करना छोड़ देते हैं। किसी व्यक्तिके लिये इससे बड़ा दुर्भाग्य क्या होगा कि वह सफलताकी देहलीपर खड़ा-खड़ा फिर वापस पतनके गर्तमें गिर जाय।

यह निश्चय जानिये, संसारमें सब-के-सब मनोरथ कभी पूरे नहीं होते। अनेक अपूर्ण अतृप्त ही रह जाते हैं।

कहते हैं बचपनमें नैपोलियनकी इच्छा थी कि वह एक

लेखक बने। साहित्यके क्षेत्रमें अमरता प्राप्त करे। कैसा हास्यास्पद लगता है! नैपोलियन युद्धप्रिय विश्व-विजेता हुआ है। क्या वह भी ग्रन्थकार हो सकता था? जी हाँ, सत्य मानिये, नैपोलियनकी यही छिपी हुई हार्दिक आकाङ्क्षा थी। उसने साहित्यिक क्षेत्रमें ही प्रसिद्धिका प्रयत्न किया भी था। 'युगान्तर' नामक पत्रमें उसके इस प्रयत्नका उल्लेख यों किया गया है—

'नवयुवक नैपोलियनको लेखनकलाद्वारा कीर्ति-लाभ करनेका अतीव निश्चय था और यही सबसे छोटा मार्ग भी जान पड़ता था। अपने बाल्यकालमें उसे कीर्तिकी, चाहे वह किसी भी प्रकारकी हो, बड़ी तीव्र लालसा रहती थी। लेखक बननेका पहला प्रयत्न उसने सन् १७८६ में किया था।'

उन दिनों सैनिक स्कूलोंका जीवन बड़ा दुःखमय था। दुबले-पतले शरीरके कारण मजबूत विद्यार्थी उसे छेड़ा करते थे। चिढ़ानेके लिये विचित्र नामोंसे पुकारते थे। वह धनाभावके कारण बड़ा तंग रहता था। कारसीकाका होनेके कारण कुछ अमीर विद्यार्थी उसे आर्थिक सहायता भी दिया करते थे।

लेखक बननेके लिये उसने दो पुस्तकोंका अध्ययन करना प्रारम्भ किया। उसमेंसे एकका नाम रूसोकृत 'सोशल कन्ट्रैक्ट' था, दूसरी एब्बे 'रेनाल'की एक रचना थी, जिसमें रूसोके सिद्धान्तोंका विशेष समस्याओंपर प्रयोग किया गया था। उसने सोचा, 'मैं भी उनका प्रयोग अपने देशकी समस्याओंपर क्यों न करूँ?'

बस, इतना विचार आते ही वह बैठ गया और उसने अपने

'कारसीकाका इतिहास' घसीट डाला और एब्बे 'रेनाल'के पास भेज दिया । एब्बेका उत्तर बड़ा संक्षिप्त था—'और गहरी खोजकर दुबारा लिखो ।'

नैपोलियन झुँझलाकर हस्तलेखके संशोधनमें लग गया । दुबारा अगले ढाई वर्षोंमें उसने 'इतिहास'को पूर्ण कर लिया । इसके अतिरिक्त दो असम्बद्ध कहानियाँ भी लिखीं, परंतु फल कुछ न हुआ ।

हर जगहसे किसी-न-किसी बातपर नवयुवक ग्रन्थकारको सख्त डाँट मिली । फिर भी भयभीत न होकर वह एक दूसरे प्रकारके लेखोंमें लग गया । पहले उसने 'प्रेम' पर और फिर 'आनन्द' पर निबन्ध लिखे ।

ल्योन्सकी विद्वान्-परिषद्ने 'आनन्द' विषयपर निबन्धके लिये १५०० लिवरेका एक पारितोषिक रक्खा था । नैपोलियनने भी अपना निबन्ध प्रतियोगितामें भेज दिया ।

नतीजा आनेपर मालूम हुआ कि वह लेख इतना निकम्मा था कि उससे घटिया केवल एक ही और निबन्ध था ।

निबन्ध-परीक्षकोंमेंसे एकने उसपर इस तरह टिप्पणी लिखी थी—'यह लेख इतना अव्यवस्थित है, इतना ऊबड़-खाबड़ है, इतना असम्बद्ध है और इतनी बुरी तरह लिखा हुआ है कि इसपर कुछ भी ध्यान देना ठीक नहीं ।'

इसपर निराश होकर नैपोलियनने अपने भाई जोसेफको लिखा—'अब मुझे ग्रन्थकार बननेकी आकाङ्क्षा नहीं रही ।'

दुनियामें किसके सब मनोरथ पूरे होते हैं ?

यदि आपके मनोरथ पूरे नहीं हुए, तो निराश होनेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है। जितने मनोरथ पूर्ण हो सकें, उत्तम हैं। जो नहीं हो सकें, न सही।

जीवन तो एक विशाल समुद्रकी तरह है। इसमें नाना प्रकारकी अच्छी-बुरी लहरें उठती और गिरती रहती हैं। अपने लाभकी ओर ध्यान रखकर, अपने द्वारा प्राप्त समृद्धियोंको ही देखना लाभप्रद है। हाँ, शुभ-संकल्पोंकी प्राप्तिका सतत प्रयत्न निरन्तर चलते रहना चाहिये। काल्पनिक जगत्में मनुष्य नाना प्रकारके काल्पनिक चित्र बनाता है। इनमेंसे बहुत-से कच्चे दिमागकी उपज होती है। जैसे आमके वृक्षसे कच्ची बौर गिरकर नष्ट हो जाती है और थोड़े-से ही फल पूर्ण परिपक्वताको प्राप्त होते हैं, वैसे ही इन कच्ची आकाङ्क्षाओंमें बहुत-सी व्यर्थ ही नष्ट हो जाती हैं। कुछ कालके लिये इनके पूर्ण न होनेसे चित्त अवश्य अव्यवस्थित और अशान्त हो जाता है और कच्चे असंतुलित दिमागवाले व्यक्ति अपना आपा भी खो देते हैं। इसलिये आवश्यक है कि हम इस संसारकी कठोर वास्तविकतासे जल्दी ही परिचित हो जायँ और यदि हमारी कुछ इच्छाएँ पूर्ण न हों तब भी हम शान्ति, प्रसन्नता और उत्साह बनाये रहें। मनुष्य जितना ही व्यर्थकी कल्पनाओं और अपनी शक्ति तथा सामर्थ्यसे बाहरकी कामनाओंसे भरा रहता है, उतना ही दुःखी रहता है।



महान् पुरुषोंकी यह विशेषता अपने स्वभावमें विकसित करें

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥

(गीता २ । ६५)

अर्थात् चित्त प्रसन्न रहनेसे सब दुःख दूर हो जाते हैं और बुद्धि स्थिर होती है ।

महान् पुरुषोंमें दृढ़ इच्छाशक्ति, अपने कार्य और उद्देश्यके प्रति अटूट लगन तथा अध्यवसाय होता है । पर उनके स्वभावकी एक और विशेषता है । हिंदू-देवी-देवता—हमारे श्रीकृष्ण, राम, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, लक्ष्मी, सरस्वती इत्यादि सबके भव्य मुख-मण्डलपर एक मधुर धीमी-धीमी मुस्कराहट अवश्य रहती है, मधुर मन्द मुस्कराहट ।

एक विद्वान्‌के शब्दोंमें, 'देखिये, भगवान् भास्कर आते हैं तो मुस्कराते हुए और जाते भी हैं मुस्कराते हुए ।' महान् पुरुषोंकी यही विशेषता है । वे सदा जीवनको मुस्कराते हुए व्यतीत करते हैं ।

झुलसाती हुई गरमी हो या हाड़ कँपाती हुई सर्दी, दुःखोंका सागर लहराये या वेदनाओंकी नदी बाढ़पर आये—वे अपने मुखकी मधुर लालिमाको नहीं छोड़ते।'

और आप उदास हैं

यह क्या! आप उदास हैं। पत्थरकी निष्प्राण मूर्तिके समान मौन, स्थिर और अटल खड़े हैं। वृक्षकी तरह निस्पन्द और अडिग गमगीन ठहरे हुए हैं। चेहरेपर मृत्यु-जैसी उदासी छायी है, जैसे चन्द्रमापर काले मेघ!

आपका पुष्प-सा मधुर मुख मुरझाया, शरीर थका-थका और तबियत निढाल है। किसी काममें उत्साह नहीं हो रहा है। अङ्ग शिथिल और मन भारी। किसी काममें तबियत नहीं लग रही है। मनहूसियत बरस रही है और उबासियाँ-जैसे चैन नहीं लेने दे रही हैं।

आप घरसे, परिवारसे और मौजूदा हालतसे परेशान होकर सोचते हैं कि क्या करें? कहीं चले जायँ? सिर भारी है, इन्द्रियाँ गिरी-गिरी-सी हैं; आँखोंमें थकान है; तो हृदयमें जोश और उत्साहका नाम-निशान नहीं। जगत् जंजाल लगता है, तो परिवार भारस्वरूप प्रतीत होता है।

यह उदासी एक मनोवैज्ञानिक रोग है। अंग्रेजीमें इसे 'मेलनकोलिया' कहते हैं। उदासी नामक मानसिक रोगसे पीड़ित रोगी सदा गम्भीर और नैराश्यकी मुद्रा बनाये रहता है। ऐसा मालूम होता है जैसे वह किसी मुर्देका दाहकर्म कर श्मशानसे लौट रहा

हो। 'मेलनकोलिया'का रोगी सदा उदास, निराश, विषादमय रहता है। घर, परिवार, मुहल्ले, नगर, समाज, कलाके किसी कार्यमें दिलचस्पी नहीं लेता। मित्रों और लोगोंसे मिलने-बरतनेमें सकुचाता-शर्माता है; वह मनोरञ्जन-कार्यक्रम, संगीत, नृत्य, प्रातःकालकी सैर, भगवान्की पूजा, कीर्तन, आराधना, खेल-तमाशों, उत्सवोंमें भाग नहीं लेता। वह छोटे शिशुओंसे नहीं खेलता। अपनी पत्नी, माता, बहिन, परिवार आदिसे भी सदा खिंचा—तना-सा ही रहता है। किसी भी रुचिके कार्यमें उसका मन नहीं लगता और वह अपने-आपको एक असफल आदमी समझता है।

उदासीसे सावधान रहें

उदासी भी छूतके रोगके समान भयानक है। यह जीवन-पुष्पको मुरझा देनेवाला भयावह झञ्झावात है। इसे पास न फटकने दें।

कोई सुरम्य वाटिका हो, उसमें रंगीन मदभरे उत्साहसे परिपूर्ण छोटे-छोटे कोमल सौरभयुक्त कमनीय कुसुम विहँस रहे हों; पर कल्पना कीजिये, यदि अचानक इधर-उधर अग्नि लग जाय और धीरे-धीरे आकर इन पुष्पोंसे लदे हुए पौधोंको झुलसा दे, तो कैसी दुरवस्था होगी।'

उदासी आनेपर हम इसी प्रकार अपने हृदयकी लोनी-लोनी कमनीय भावनाओं, विहँसती हुई महत्त्वाकाङ्क्षाओं, सद्भावनाओं और प्रेम-सहानुभूतिको कलिकाओंको असमयमें ही झुलसा देते हैं।

निराशा यदि अग्नि है तो उदासी चितामेंसे उठनेवाला

विषैला धुआँ। जैसे काला-काला धुआँ सफेदीसे पुते हुए श्वेत घरको काला बना देता है, जिसमें फिर बैठने या ठहरनेको मन नहीं करता, उसी प्रकार उदास बने रहनेवाले व्यक्तिकी आत्मा सदा अतृप्त और व्यग्र बनी रहती है। हमारा आत्मा सदा-सर्वदा मुस्कराते, विहँसते, खिले हुए भगवान्का अंश है। भगवान्की मूर्ति सदा मधुर-मधुर मुस्कराहटसे खिली रहती है। उनका अङ्ग-प्रत्यङ्ग चमकता-दमकता रहता है। इसलिये उदास रहकर हम अपने आनन्द-तत्त्वका ह्रास करते हैं, परमात्माका अपमान करते हैं। मुस्कराना और प्रसन्न रहना हमारे आत्माका गुण है।

आप रूखे-सूखे व्यक्ति न रहें

डेल कार्नेगीकी प्रसिद्ध पुस्तक 'मित्र बनाने और जनताको प्रभावित करनेकी विधियाँ' अनुवादक—श्रीसंतरामने मुस्कराहटपर एक स्वतन्त्र लेख लिखा है। उनके अनुसार मुस्कराहट लोगोंमें प्यारा बननेकी रामबाण विधि है। यह मनुष्यके व्यक्तित्वकी मोहिनी शक्ति है। कार्नेगीके शब्दोंपर ध्यान दीजिये—

"कर्मोकी ध्वनि शब्दोंसे ऊँची होती है। मुस्कानका अर्थ होता है, 'मैं तुम्हें पसंद करता हूँ। तुम मुझे सुखी बनाते हो। तुमसे मिलकर मुझे प्रसन्नता हुई है।' यही कारण है कि हमें कुत्ते इतने अच्छे लगते हैं। वे हमें देखकर इतने प्रसन्न होते हैं कि उछल पड़ते हैं। इसलिये स्वभावतः हम उनसे मिलकर प्रसन्न होते हैं।"

मनमें कपट रखकर बाहरकी मुस्कराहटसे आप किसीको मूर्ख

नहीं बना सकते । हम जानते हैं कि यह दिखावेकी मुस्कान है, इसलिये हम उसे बुरा मानते हैं । मै सच्ची मुस्कानकी, उत्साह और स्नेहपूर्ण मुस्कानकी, अन्तस्तलसे निकलनेवाली मुस्कानकी—हाँ, उस प्रकारकी मुस्कानकी बात कर रहा हूँ, जिसका बाजारमें अच्छा मोल मिल सकता है । यदि आप चाहते हैं कि लोग आपसे प्रसन्नतापूर्वक मिलें, तो आपको उनसे मधुर मुस्कराहटके साथ मिलना चाहिये ।

दूकानोंके विषयमें चर्चा करते हुए फ्रेंक इर्विंग फ्लेचरने ओपनहीम, कॉलिन्स एंड कम्पनीके लिये 'क्रिसमसमें मुस्कराहटका मूल्य' शीर्षक एक विज्ञापन दिया है, जिसमें उन्होंने साधारण तत्त्व-ज्ञानका उपदेश दिया है । उसे कार्नेगीकी पुस्तकसे यहाँ उद्धृत किया जाता है, देखिये—

'मुस्कराहटपर खर्च कुछ नहीं आता, परंतु यह पैदा बहुत करती है । इसे पानेवाले मालामाल हो जाते हैं, परंतु देनेवाले भी दरिद्र नहीं हो जाते ।

'मुस्कराहट एक क्षणमें उत्पन्न होती है, पर इसकी मधुर स्मृति कभी-कभी सदाके लिये बनी रहती है ।

'कोई मनुष्य इतना धनी नहीं कि जिसका इसके बिना निर्वाह हो सके और न कोई इतना दरिद्र है, जो मुस्कराहटके लाभोंसे धनी न हो ।

'मुस्कराहट हर परिवारमें सुख उत्पन्न करती है, आपके व्यापारमें ख्याति बढ़ाती है और समर्थनके लिये किया हुआ मित्रोंका हस्ताक्षर है ।

'मुस्कराहट थके हुएके लिये विश्राम है, हतोत्साहके लिये दिनका प्रकाश है, ठिठुरेके लिये धूप है और कष्टके लिये प्रकृतिका सर्वोत्तम प्रतीकार है।

'तो भी मुस्कराहट मोल नहीं ली जा सकती, माँगी नहीं जा सकती, उधार नहीं ली जा सकती या चुरायी नहीं जा सकती, क्योंकि जबतक यह दी न जाय, तबतक संसारमें यह किसीके कुछ कामकी नहीं। अतः यदि आप लोगोंका प्यारा बनना चाहते हैं तो मुस्कराइये।'

ऊपरकी पंक्तियोंमें जीवनको मधुर बनानेके लिये बड़े उपयोगी संकेत भरे पड़े हैं। वास्तवमें उदासी बड़ी बुरी मानसिक आदत है। यह सुन्दर चेहरेको भी कुरूप बना देती है। उदासी व्यक्तिके प्रति घृणा पैदा करती है, तो मुस्कराहट आकर्षण!

उदासीसे मानसिक और शारीरिक शक्तियाँ निर्बल हो जाती हैं, मुस्कराहटसे शरीर तथा मनकी सोयी हुई शक्तियाँ भी जैसे जाग उठती है, प्रायः उदासीके कारण शारीरिक अथवा मानसिक थकावट पैदा होती हैं। एक ही परिस्थिति अथवा एक ही कार्य करते-करते हम थक जाते हैं। इसलिये उदासी दूर करनेके लिये हमें कोई नया कार्य, कोई नयी परिस्थिति—नये लोगोंसे सम्पर्क स्थापित करना चाहिये। जिस कामसे हम थक गये हैं, उसे छोड़कर कोई नया काम प्रारम्भ करना चाहिये।

सुखद वातावरण बनाइये

उदासीका सम्बन्ध सम्पर्कसे है। यदि आप उदास, गम्भीर

और चिन्तनशील प्रकृतिके व्यक्तियोंके साथ रहें तो निश्चय ही उनका स्वभाव आपमें भी विकसित हो जायगा । आप भी रोते रहेंगे ।

ऐसे व्यक्तियोंके साथ रहिये, जो फूलकी तरह 'तरो-ताजा और खिले हुए हैं और जो चिन्ताओंसे अधीर नहीं होते ।

अपने चारों ओर हिंदू देवी-देवताओंके मुस्कराते हुए चित्र रखिये । भगवान् बालकृष्णका मधुर बालरूप और भगवान् श्रीरामचन्द्रकी बालक्रीड़ाएँ देखा कीजिये । आपको मुस्कराते हुए अनेक भव्य सुन्दर चित्र बाजारमें मिलेंगे । ऐसे चित्र एकत्रित कीजिये, जिनमें मनुष्य खेल रहे हों । स्वयं अपना ऐसा चित्र खिंचवाइये, जिसमें आप पूर्ण प्रसन्न और अपनी सबसे आकर्षक मुद्रामें हैं । बच्चोंके ऐसे चित्र सजाइये, जिनमें प्रसन्नता ही सर्वत्र बिखर रही हो । ऐसे मधुर वातावरणमें रहनेसे आप भी प्रसन्न रहनेका स्वभाव बना सकेंगे ।

मेरा एक निजी अनुभव कदाचित् आपकी सहायता कर सकेगा । मुझे जब उदासी आती है, तब मैं अपने बच्चोंके साथ बच्चा बनकर ही खेलता हूँ । मैं थोड़ी देरके लिये अपना दुःख-दर्द भूलकर बालक ही बन जाता हूँ—सरलचित्त और आह्लादमय, कपट और चिन्तासे मुक्त, उदासीसे दूर । मित्रसमाजमें या मेरे मातहतोंमें अनेक व्यक्ति मेरे मित्र हैं, तो कुछ शत्रु भी हो सकते हैं, आदर-अनादर कर सकते हैं, किंतु ये सरल आनन्दस्वरूप शिशु तो सदैव ही मेरे मित्र हैं, मेरे दुःखोंको दूर करने तथा मुझमें

नया उत्साह भरनेवाले है। इन बच्चोंके लिये काले, गोरे, अमीर-गरीब, हरिजन, सवर्ण——किसीके प्रति कुछ भी भेदभाव नहीं, शिष्ट बननेका कृत्रिम दम्भ नहीं, परछिद्रान्वेषण या टीका-टिप्पणी करनेकी कमजोरी नहीं। बालक तो शुद्ध ब्रह्मरूप हैं। उनमें भगवान्‌का आनन्दमय स्वरूप खूब विकसित है। वे इस स्वार्थ और छल-छद्ममय संसारकी सांसारिकतासे दब नहीं गये हैं। प्रसन्न बनाये रखनेमें ये बालक ही मेरे गुरु है——पथप्रदर्शक हैं, शान्ति एवं जीवनके प्रति उत्साह दिलानेवाले सच्चे मित्र हैं। इनके सत्सङ्गमें रहकर, इनसे खेल-कूद-कर, इनकी हृदयतन्त्रीसे झंकृत होकर मैं ईश्वरके आनन्दमय स्वरूप-का अनुभव करता हूँ।

विकारमय काल्पनिक भयोंसे मुक्त रहें

आपकी उदासी आपके मनमें छिपे काल्पनिक भयोंका कुफल है। आप चुपचाप कुछ चिन्ताओंमें डूबे रहते हैं। आपने मनमें सांसारिक भार इकट्ठा कर रक्खा है। शायद कोई ऐसा कटु अनुभव आपके गुप्त मनमें छिपा हुआ है, जो आपको उदास किये हुए है।

हमारी सलाह मानिये और इन काल्पनिक भयोंको आज ही दूर कर दीजिये। अपने जीवनके कटु रूपपर, विफलताओं और परेशानियोंपर विचार मत कीजिये।

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥

(गीता २। ११)

अर्थात् मनुष्यको चाहिये कि वह न शोक करनेयोग्य क्षणिक वस्तुओंके लिये कदापि देरतक शोक न करे। पण्डित वे हैं, जो मरे हुओं तथा जिनके प्राण नहीं गये हैं, उनके लिये शोक नहीं करते; क्योंकि आत्मा नित्य है। इसलिये शोक करना और सदा उदास बने रहना उचित नहीं।

और यदि आप कहें कि हम तो अपने प्रिय, स्वर्गवासी, परिजनोंसे वियोगपर शोक करते हैं, तो यह भी उचित नहीं है; क्योंकि—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥
(गीता २। २२)

अर्थात् 'भगवान् कहते हैं कि जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागकर दूसरे नये वस्त्रोंको पहन लेता है, वसी तरह हमारा जीवात्मा भी पुराने जीर्ण शरीरोंको छोड़कर दूसरे नये शरीर धारण कर लेता है।' इस आत्माको कोई नहीं काट सकता, इसको आग नहीं जला सकती, इसको जल नहीं गीला कर सकता और वायु सुखा नहीं सकती। अतः मरे हुए शरीरोंके लिये परेशान न रहें। भविष्यकी उज्ज्वलतापर दृष्टि रक्खें। कष्टदायक स्मृतियोंको सँजोना मानसिक हत्या करनेके बराबर है।

भजन-पूजन तथा भगवान्‌के आनन्दस्वरूपका चिन्तन, कीर्तन आनन्दमय बननेका एक उत्तम उपाय है। अतः कभी-कभी 'ॐ आनन्द, ॐ आनन्द' का जाप किया कीजिये। इसी प्रकार गायत्री-जैसे गुणकारी मन्त्रका जाप या 'रघुपति राघव राजाराम, पतितपावन सीताराम' के कीर्तन अथवा भजन-भक्ति-संगीतका रस लीजिये।

संगीतमें कुछ ऐसी आनन्ददायिनी शक्ति है, जिसमें तन और मनकी उदासी दूर होकर ताजगी आती है। कोई हर्ज नहीं, यदि आप अच्छे गायक नहीं हैं। भक्तिरससे भरे कुछ भजन (जैसे गीताप्रेससे प्रकाशित भजन-संग्रह)—सूर, तुलसी या मीराँबाईके भक्तिरसपूर्ण भजन धीरे-धीरे प्रेमसे गुनगुनाइये। लीजिये, आपकी उदासी दूर हो गयी।

प्रकृतिका सौन्दर्य लूटिये

जब आप परेशान हों, तो कुछ देरके लिये बाहरके स्वास्थ्यप्रद स्वच्छन्द वातावरणमें घूमने निकल जाइये। आजकलका जीवन सभ्यताके बनावटी वातावरणमें बुरी तरह बँध गया है। हम मशीन-जैसे पुर्जे बन गये हैं।

आवश्यकता है कि हम प्रकृतिके मनोरम दृश्यों, सरिता-तटों, लहलहाते खेतों, हरे-भरे वृक्ष और घाससे बिछे उद्यानोंकी शीतल विमल वायुका आनन्द लें। उज्ज्वल कल्पनाकी सहायतासे अपने मधुर भविष्यके चित्र बनायें और आनन्दमय बने रहें। अच्छे प्राकृतिक वातावरणमें निवास करनेसे हमारी मानसिक यातनाएँ दूर होती हैं। चिन्ताके बड़े-बड़े पर्वत चूर-चूर हो उड़ जाते हैं।

मेरे एक मित्र चित्रकार हैं। उनका अधिकांश समय चित्र-कलाके अभ्यासमें व्यतीत होता है। जब कभी वे उदास होते हैं, चित्रकारीका सामान लेकर प्रसन्न मुद्रामें चित्रोंकी सृष्टि करने बैठ जाते हैं। आनन्दमय विचारोंसे अपने मन और हृदयको पूरी तरह भर लेते हैं। वे प्रायः अपने अनुभव सुनाते हुए कहा करते हैं कि चित्रकलाके अभ्याससे भव्य कल्पनाएँ मनमें भरी रहती हैं और उनसे उदासी दूर हो जाती है। आप भी इस नुस्खेका उपयोग कर देखिये।

मित्रो! प्रसन्न रहो। उदासी आपके लिये अप्राकृतिक तथा हानिकर है। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं कहा है कि—'चित्तको प्रसन्न रखनेसे मनुष्यके सब दुःख दूर हो जाते हैं, प्रसन्न- चित्तवालेकी बुद्धि सदा स्थिर रहती है।'

हममेंसे प्रत्येक व्यक्तिको श्रीयोन नागोचीकी निम्न प्रार्थना ईश्वरकी प्रतिमाके सामने करनी चाहिये—

'हे प्रभु! जब जिंदगीके कगारोंकी हरियाली सूख गयी हो, पक्षियोंका कलरव बंद हो गया हो, सूर्यपर ग्रहणकी छाया गहरी होती जा रही हो, परखे हुए मित्र और आत्मीयजन काँटोंके रास्तेपर मुझे अकेला छोड़कर चले गये हों और आसमानकी सारी नाराजी मेरी तकदीरपर बरसनेवाली हो, तब हे प्रभु! तुम मुझपर इतनी कृपा करना कि मेरे ओठोंपर हँसीकी एक उजली रेखा चमकती रहे।'

मित्रो! प्रसन्न रहो। जीवनभर मुस्कराते रहो।



एक रहस्यकी बात

संसारके कुटिल प्रहारोंसे जब आप उद्विग्न, अशान्त और व्याकुल हो उठें, कर्ममार्गपर अग्रसर होते हुए जब आपके पग थरथरा रहे हों; हृदय नैराश्यकी लपटोंसे झुलसकर मुरझा रहा हो तथा नेत्र घबराहटके धुएँसे धुँधले हो उठे हो तो शान्ति और तृप्तिके लिये अपनेसे नीचेवालोंकी ओर देखिये और उनसे अपनी बेहतर दशाका मिलान कर अपने अच्छे भाग्यपर संतोष कीजिये।

सच मानिये, संसारमें आप अनेकोंसे अच्छे हैं। हमारे समाजमें कितने ही ऐसे दुखी, बीमार, अभावग्रस्त और गरीब व्यक्ति है, जो आपसे भी गयो-बीती घृणित दशामें पड़े-पड़े दिनोको धक्के दे रहे हैं।

आपके मुहल्लेमें, आपके शहरमें, आपके प्रान्त और आपके देशमें अनेक ऐसे आदमी हैं, जो निकृष्ट और गिरी हुई अवस्थामें पड़े हुए हैं; आपसे भी अधिक दुखी और कातर है; भाग्यकी कुटिलताके प्रहार सह रहे हैं। प्रतिकूलता उन्हें उठने नहीं देती; पर आप उनकी अपेक्षा श्रेष्ठतर स्थितिमें हैं।

न जाने कितने फुटपाथ या झोपड़ियोंमें रहकर जीवन काट देते हैं। उन्हें छतके नीचे सोनेका सुख नहीं मिलता। आपके पास मकान तथा जीवनकी अनेक सुविधाएँ है—साधन हैं। ऐसी वस्तुएँ हैं जो आपसे नीचेवालोके पास नहीं हैं। फिर आप निराश क्यों होते हैं? व्यर्थ ही हिम्मत क्यो तोड़ रहे है?

हमारे यहाँ कहा गया है—

प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय।

(अथर्ववेद १२ । २ । २२)

अर्थात् यह जिंदगी हँसते-खेलते हुए जीनेके लिये है। चिन्ता, भय, शोक, क्रोध, निराशा, ईर्ष्या, तृष्णा एवं वासनामें बिलखते रहना मूर्खता है।

मनुष्य इसलिये नहीं जन्मा कि इस आनन्दमय जीवनको भारस्वरूप समझकर व्यर्थकी काल्पनिक चिन्ताओंके बोझमें दबा रहे। प्रारम्भसे ही आपको यह विश्वास कर लेना चाहिये कि भाग्य आपके अधीन है और पुरुषार्थसे आप श्रेष्ठ जीवन व्यतीत कर सकते है।

आपको कोई रोग हो गया है। हाथ कट गया, पाँवमें लँगड़ाहट आ गयी, कोई चर्मरोग हो गया, मोटापा या ब्लड-प्रेसर सता रहा है, पीड़ासे आप कातर रहते है। कोई घरवाला पति-पत्नी, भाई, पुत्र या सम्बन्धी रोगी हो रहा है। आप उद्विग्न रहते हैं।

हम थोड़ी देरके लिये यह मान लेते है कि आप या आपका परिवार रोगी ही सही; पर क्या आप जानते हैं कि संसारमें सैकड़ों-हजारों व्यक्ति प्रतिदिन अस्पतालो और देशी चिकित्सालयोंमें झूमते रहते हैं। आपसे भी बदतर रोगी जीवन बिताते हैं। आपके पास इन शारीरिक कष्टोंके होते हुए भी बहुत कुछ है। आप हजारोंसे श्रेष्ठ हैं, अब भी आनन्दकी अनेक वस्तुएँ आपके पास है। आपसे भी अधिक अनेक दुखी और रोगी हैं। फिर मनको छोटा क्यों करते हैं!

यदि आपके पास धन नहीं है, तो कोई हर्ज नहीं। उस दीन-हीन, गरीब-भिखारी या मजदूरको देखिये, जो रूखा-सूखा खाकर केवल स्वास्थ्यका आनन्द भोगता है। अनेक ऐसे हैं, जो एक ही समय भोजन कर अपनी निरोगताका सुख भोगते हैं। कहा भी है—

नास्त्यरोगसमं सुखम्।

(शि० पु० उ० स० ११। २३)

नीरोगताके तुल्य दूसरा सुख नहीं है।

मनुष्यकी कामनाएँ और इच्छाएँ आगकी तरह बढ़ती ही जाती हैं। एक आवश्यकता पूर्ण होते ही, चार नयी आवश्यकताएँ सामने आ खड़ी होती हैं।

सब कुछ होनेपर भी हमारे मनमें किसी नयी चीजकी इच्छा पैदा होती है। यह इच्छा काँटेके समान खटककर हमें परेशान करती है। यदि विश्वका समस्त सुख, ऐश्वर्य, आनन्द और कुबेरकी समस्त सम्पत्ति भी मिल जाय, तो भी असंतोषीको सैकड़ों नयी और अपूर्ण आवश्यकताएँ सदैव दुःखी बनाये रक्खेंगी।

अतृप्तिकी भावना हमारे दुःखोंका मूल कारण है।

संतोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत्।
संतोषमूलं हि सुखं दुःखं मूलविपर्ययः॥

जो परम सुखका चाहनेवाला हो उसे अत्यन्त संतोषी होना चाहिये, क्योंकि संतोष ही समस्त सुखोंका मूल है।



यह जादू भी अच्छा काम करता है

औरंगजेब मुगलवंशका अन्तिम प्रभावशाली सम्राट् हुआ। वह सबसे छोटा भाई था अपने भाइयोंमें, उम्रमें सबसे कम, पर बुद्धिमें सबसे चतुर, चींटी-जैसा काममें चिपटा हुआ। उसने अपने पिताको छल-बलसे जेलखानेमें डाला और एक-एक करके सब भाइयों-की हत्या कर डाली। धोखा, झूठ, कपट, छल, फरेब, हत्या, खूँरेजी—जो कुछ भी सम्भव था, वह उसने काममें लिया। इस प्रकार जो छोटा भाई कभी शाहंशाह न बनता, वह भारतका सम्राट् हुआ।

उसने भारतपर अस्सी वर्ष राज्य किया। हिंदू उसके नामसे काँपते थे, मुसलमानोंका भी वह प्यारा न बन सका। उसका घरेलू और पारिवारिक जीवन भी सुखी और शान्त न रह सका।

इस भारत-सम्राट्की मानसिक अशान्तिका क्या कारण था?

क्या उसके पास रुपये-पैसे, शान-शौकत, नौकर-चाकरोंकी कमी थी? क्या शरीरकी सेवा करने या चिकित्सा करनेवाले डाक्टर उसके पास न थे? या सांसारिक वैभवकी कमी थी? नहीं, इनमेंसे किसीकी कमी उसके पास न थी। उसे संसारके समस्त वैभव, सुख-सुविधाएँ प्राप्त थीं।

पर उसके मनमें सबके प्रति घोर अविश्वास था। वह अनेकोंको मारकर या सताकर भारतका शाहंशाह बना था। इसलिये सभीको अपने शत्रुरूपमें देखता था। किसीपर किसी तरहका भी विश्वास नहीं करता था।

खाने-पीनेमें उसे अपने रसोइयोंपर विश्वास न था। उसे सदा डर था कि कोई उसे जहर न दे दे। उसे अपने सैनिकों, फौजके अफसरों, कार्यकर्ताओं, पुत्र-पुत्रियों, मातहतों—किसीपर भी विश्वास न था। वह सभीको धोखेबाज, मक्कार, बेईमान, झूठा, फरेबी समझता था। उसके शासनकालमें अविश्वासका यह विषैला और दूषित वातावरण समग्र भारतमें विस्तृत होकर फैल गया। जनताको भी उसमें विश्वास न रहा। वे उससे घृणा करते रहे। औरंगजेब दमनसे काम लेता रहा। उसे यही डर रहता था कि न जाने किस ओरसे उसके प्रति विद्वेष, क्रान्ति और कटुताका ज्वालामुखी फूट पड़े। यह अविश्वास ही अन्ततः विशाल मुगल-साम्राज्यके क्षयका कारण बना।

यह है अविश्वासका कुप्रभाव!

विश्वाससे विश्वास पैदा होता है, किंतु अविश्वाससे अविश्वासका ही वातावरण फैलता है।

जब पिता पुत्रपर, माता पुत्रीपर, पति पत्नीपर, भाई भाईपर, ग्राहक दूकानदारपर, अफसर मातहतपर अविश्वासकी काली छाया डालता है तो उससे घर, परिवार, दफ्तर, महकमे या समाजका सौख्य, प्रेम, पारस्परिक सद्भाव सब नष्ट हो जाता है। घृणाका जन्म होता है। हर व्यक्ति दूसरेसे डरता है।

अविश्वाससे घरमें स्थान-स्थानपर ताले पड़े रहते हैं। हर एक संदूक तथा आलमारीका अलग ताला होता है। घरका स्वामी तालोंकी कुंजियोंको मजबूतीसे पकड़े रहता है। कोई उसके संदूकके पास भी जाता है, तो उसे संदेहकी नजरसे देखता है। रात्रिमें जरा-सा खटका होते ही उसकी नींद टूट जाती है।

अविश्वासके कारण प्रत्येक पारिवारिक सदस्य एक-दूसरेसे अनेक बातोंको छिपाता है, एक दूसरेसे पैसे-पैसेका हिसाब पूछता है। यदि संयोगवश कोई वस्तु यथास्थान न मिले तो चोरीका भ्रम उत्पन्न होता है। संदेहयुक्त व्यवहारसे कटुता उत्पन्न होती है।

अविश्वासके उत्तरमें दूसरा भी अविश्वाससे जवाब देता है। सम्पूर्ण वातावरण अस्वस्थ विचारोंसे बोझिल हो जाता है।

विश्वास एक आध्यात्मिक शक्ति है

इंग्लैंडका एक पादरी विश्वासकी आध्यात्मिक शक्तिमें प्रगाढ़ विश्वास करता था। वह प्रायः कहा करता था कि विश्वासके सही प्रयोगद्वारा बुरे आदमीमें भी सद्‌गुणों, सत्-प्रवृत्तियों और शुभ संकल्पोंको विकसित किया जा सकता है।

उसका द्वार सदा-सर्वदा यात्रियों, कष्टपीड़ितों, दीनहीन गरीबों अर्थात् हर किसीके लिये खुला रहता था। दिन तो क्या, राततकमें वह आतिथ्य करनेसे न चूकता था। जो कोई उसके घरमें एक बार आतिथ्य पा लेता था, उसके प्रेमभाव, सेवा-सहयोग और भलमनसाहतसे प्रभावित हुए बिना न रहता था।

एक बार कैदसे छूटा हुआ एक भयंकर अपराधी रातको शरण लेनेके लिये उसी नगरमें इधर-उधर फिर रहा था। उसे पादरीका द्वार खुला हुआ दीखा। अंदर रोशनी चमक रही थी। उसने उसमें प्रवेश किया।

पादरी प्रेमकी साक्षात् प्रतिमा था। उसने बड़े प्यारसे उसका स्वागत किया। भोजन कराया, विश्रामके लिये चारपाई दी। रात्रिमें

जब अपराधी सो रहा था, तब उसके मनमें फिर चोरीकी बात आयी। जब सब सो रहे थे, तब उसने पादरीके दो चाँदीके दीपदान चुरा लिये, किंतु जब वह चुराकर जा रहा था, पुलिसके द्वारा पकड़ा गया। जब वह पादरीके सम्मुख लाया गया, तब उसने कहा—'ये मेरे प्रिय मित्र हैं। मैंने ये दीपदान इन्हें उपहारके रूपमें-दिये हैं। आप इन्हें छोड़ दीजिये।'

वह अपराधी छोड़ दिया गया, पर उसके मनमें धक्का लगा। उसके ज्ञानके नेत्र खुल गये। अपने पापपर उसे पश्चात्ताप हुआ। उसे चोरी, डकैती, अन्याय, झूठ, कपटसे घृणा हो गयी। उसके जगे हुए आत्माने उसे न्याय, सत्य और विवेकके पथपर अग्रसर किया। उसने अच्छा नागरिक बननेका प्रयत्न किया और एक दिन आया जब वह बदलकर एक श्रेष्ठ भला नागरिक बन गया। यह था पादरीके भले व्यवहारोंका शुभ चमत्कार!

जब आप किसीको शुभ संकेत देते हैं, उसके साथ सद्व्यवहार करते हैं तो उसकी भलाईको जाग्रत् करते हैं। शुभ संकेतोंसे मनमें सोया हुआ देवत्व जाग उठता है। मनुष्यका नया जन्म होता है।

दूसरोंके भले और उत्तम गुणोंको सक्रिय कीजिये। यदि आपको किसीमें कोई भली बात, कोई दैवी गुण, कोई श्रेष्ठता दिखायी देती है, तो उसकी जी खोलकर प्रशंसा कीजिये। आपके इस प्रोत्साहनसे उस व्यक्तिका दैवी पक्ष जाग उठेगा।

संसारमें कोई व्यक्ति बुरा नहीं है। सबमें श्रेष्ठताएँ भरी हुई

हैं। आवश्यकता एक ऐसे व्यक्तिकी है, जो अच्छाईको लगातार प्रोत्साहन देकर बढ़ाता रहे। कैसे दुःखकी बात है कि हम मनुष्यको उसकी त्रुटियोंके लिये तो सजा देते हैं, पर उसकी अच्छाईके लिये प्रशंसामें कंजूसी करते हैं।

यदि आप विश्वासके साथ दूसरेको अच्छा कहें, तो निश्चय ही वह श्रेष्ठ बनेगा। मनको अच्छाईपर जमाइये, सर्वत्र अच्छाई ही बढ़ेगी। आपके तथा दूसरेके मनमें बैठे हुए देव जाग्रत् और चैतन्य होकर देवत्वको बढ़ायेंगे।

स्मरण रखिये, दोषोंके चिन्तनसे हानि-ही-हानि है। अपने या दूसरोंके दोषोंका चिन्तन करने, बार-बार कहने या विचार करनेसे वे ही उत्तरोत्तर बढ़ते जाते हैं। जो मनुष्य नित्य अपने-आपको गलत या कुवाक्य कहता है, वे चाहे झूठ ही क्यों न हों, मनमें सत्य जँचने लगते हैं। बार बार कही हुई बात सत्य प्रतीत होने लगती है। इसलिये सदा सबके लिये शुभ ही उच्चारण कीजिये। जो निराश, दुखी और अपने विषयमें दीन-हीन विचार रखते है, उन्हें भी सदा शुभ संकेत दीजिये। जो आपके लिये अशुभ वचन बोलते है, उनके विषयमें भी शुभ विचार और शुभ विश्वास ही प्रकट कीजिये। जिसपर विश्वास करेंगे, वह विश्वास ही लौटायेगा।

अपकारिषु यः साधुः पुण्यभाक् स उदाहृतः।

(ब्रह्मपुराण ८०।५५)

जो अपकार करनेवालेकी भलाई करता है, उसे पुण्यात्मा कहा है।



आगे यों बढ़ें

ऋग्वेदकी एक प्रेरक सूक्ति है—

ज्यैष्ठ्याय वृद्धो अजायथाः । (१।२।५)

अर्थात् मनुष्य-जीवन श्रेष्ठ और बड़ा बननेके लिये है। यह मनुष्यका जीवन दिनोंको व्यर्थ नष्ट करनेके लिये नहीं, वरं कुछ महान् कार्य करनेके लिये दिया गया है। हमें चाहिये कि सदा उन्नति और प्रगतिकी ओर कदम रक्खें, ऊँचे उठते रहें। कहा गया है कि—

उद्य तिष्ठ महते सौभगाय। (अथर्व० २।६।२)

श्रेष्ठ बनना (किसी दिशामें बड़प्पन प्राप्त करना) ही महान् सौभाग्य है। जो महापुरुष बननेके लिये प्रयत्नशील हैं, वे धन्य हैं।

आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम । (अथर्ववेद २ । ११ । १)

हे मनुष्यो ! जो तुम्हारे बराबरवाले है, उनसे आगे बढ़ो । श्रेष्ठोंतक पहुँचो । मूर्खोंसे अपनी तुलना न करो, बुद्धिमानोंका आदर्श ग्रहण करो ।

रुहो रुरोह रोहितः । (अथर्व० १३ । ३ । २६)

उन्नति उसकी होती है, जो प्रयत्नशील है । भाग्यके भरोसे बैठे रहनेवाले आलसी सदा दीन-हीन ही रहेंगे । संसारमें अनेक ऐसे महापुरुष हुए है जो विषम स्थितियोंमें भी निरन्तर आगे बढ़ते और ऊँचे उठते रहे हैं । संकटोंसे जो कभी हतोत्साह नहीं हुए । आपको भी ऐसा ही उन्नतिशील बनना है ।

'यदि'के लिये कोई स्थान नहीं—

आपने शायद नेल्सन नामक महान् अंग्रेज वीरका नाम सुना है । उन्होने युद्धके क्षेत्रमें प्रसिद्धि प्राप्त की थी । उनका जीवन निरन्तर मिलनेवाली अनेक सफलताओंकी एक लम्बी शृङ्खला था । उनकी नीति थी कि प्रत्येक कार्यको इस विश्वासके साथ करें कि उसका असफल होना असम्भव हो जाय ।

कहा जाता है कि एक युद्धमें उन्होंने अपने नायकके सामने युद्धकी एक योजना प्रस्तुत की थी । योजनापर खूब सोचा और विचारा गया था । वह इतनी सर्वाङ्गपूर्ण थी कि उससे जीतकर वे संसारके सम्मुख एक नया रेकार्ड कायम कर रहे थे ।

कप्तान बेरी इस योजनासे इतना प्रभावित हुआ कि हर्षोन्मत्त होकर बोला, 'यदि हमारी जीत हो तो दुनिया क्या कहेगी ?'

सुनकर नेल्सनका आत्मविश्वास खौल उठा। उन्हें इन शब्दोंमें संदेह झलकता हुआ प्रतीत हुआ।

वे जोरसे बोले, 'यदिके लिये मेरे जीवनमें कोई स्थान नहीं है। जीत तो निश्चय ही हमारी होगी। हाँ, विजयकी कहानी कहनेवाला कोई बचेगा या नहीं, यह पता नहीं।'

थोड़ी देरमें जब कप्तान जाने लगा, तब निश्चयपूर्वक नेल्सनने कहा, 'कल इस समयसे पहले या तो मुझे विजय प्राप्त हो जायगी, या वेस्ट मिनिस्टर ऐबीमें मेरी कब्र तैयार हो जायगी।'

जिसके पास इस तरहका दृढ़ निश्चय है, अडिग आत्मविश्वास और साहस है, उसे आगे बढ़नेसे भला कौन रोकेगा !

आगे बढ़नेभरकी देर है, भाग्योदयका अवसर हाथसे न निकलने दीजिये

करडिनल लिखते है—'हर व्यक्तिके हाथमें, जीवनमें कभी-न-कभी, किसी-न-किसी शक्लमें उन्नति और भाग्य चमकानेका मौका आता है। जो दूरदर्शी उस मौकेको पहचान लेता है और उसे पकड़कर फायदा उठाता है, उसका भाग्य सदाके लिये चमक उठता है।'



अपने परिश्रमसे शिक्षित बनिये

ज्ञानका मार्ग किसीकी बपौती नहीं है; वरं वह गरीब-अमीर, नीचा-ऊँचा, नारी-पुरुष, बालक-जवान और वृद्ध सबके लिये समान रूपसे खुला हुआ है।

ज्ञानप्राप्तिके क्षेत्रमें केवल एक ही शर्त है, प्रभुका एक ही आदेश है—सच्चे लगन और परिश्रमसे अध्ययन करो। "स्वाध्यायान्मा प्रमदः" (श्रुति) हे ज्ञानके इच्छुको! स्वाध्यायमें कभी आलस्य न करो। अपने परिश्रमसे शिक्षित बनो। शतपथमें लिखा है—'ब्राह्मण जिस दिन स्वाध्याय नहीं करता, उसी दिन वह ब्राह्मणसे अब्राह्मण हो जाता है। अर्थात् ब्राह्मणकी पवित्रता इसीमें है कि वह सदा-सर्वदा, दिन-प्रतिदिन नया ज्ञान, उपयोगी ज्ञान, ब्रह्म-ज्ञान अर्जित करता चले। अपने ज्ञानरूपी कोषको उत्तरोत्तर बढ़ाता चले।

गीतामें कहा गया है—

स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।

(१७।१५)

याद रखिये, स्वाध्याय करना मनुष्यकी वाणीका तप है।

स्वाध्यायाद् योगमासीद् योगात् स्वाध्यायमामनेत्।
स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते॥
(योग० १। २८ व्यासभाष्य)

अर्थात्—स्वाध्यायसे मनुष्यको योगकी उपासना करनी चाहिये। योगसे स्वाध्यायका अभ्यास होना चाहिये। स्वाध्यायकी सम्पत्तिसे परमात्माका साक्षात्कार होता है।

पढ़ना-लिखना हमारे यहाँ धर्मका एक दृढ़ अङ्ग माना गया है। पढ़-लिखकर ही संसारमें एकत्रित ज्ञान अपने अंदर धारण किया जा सकता है। उस ज्ञानको मनमें धारण करनेसे ही मनुष्य सच्चे अर्थोंमें 'मनुष्य' बनता है। कहा है—

'त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति'
(छान्दोग्य० २। २३। १)

अर्थात् याद रखिये मनुष्यके धर्मके तीन स्कन्ध हैं—१ यज्ञ, २ स्वाध्याय और ३ दान। इनमें स्वाध्याय सर्वश्रेष्ठ है; क्योंकि इसीसे हम वस्तुतः मनुष्य कहलानेके अधिकारी बनते हैं।

ज्ञान-प्राप्ति हममेंसे प्रत्येकका जन्मसिद्ध अधिकार है। माता सरस्वतीका दरबार खुला है और कोई भी व्यक्ति तीव्र इच्छा और स्वाध्यायसे विद्वान् बन सकता है। अनेक व्यक्ति बिना सुविधाओं और शिक्षकोंके बहुत विद्वान् हुए हैं। ज्ञानके क्षेत्रमें अमर हो गये हैं।

हमारे यहाँ यह समझा जाता है कि ज्ञान-प्राप्तिके लिये स्कूल-कालिजोंमें जाना आवश्यक है, पर यह नितान्त भ्रान्तिमूलक धारणा है।'

दिनके २४ घंटोंमेंसे यदि हम एक घंटा बचाकर स्वाध्याय किया करें, अपनी विद्या बढ़ानेमें लगायें तो बहुत लाभ हो सकता है। समय ही मनुष्यका जीवन है। एक-एक क्षणका व्यर्थ नष्ट होना ही जीवनका नष्ट होना है।

स्वाध्यायमें भी एक आत्मिक सुख है। ज्यों-ज्यों हम ज्ञान प्राप्त करते है, अंदरसे एक प्रकारके विवेकयुक्त ज्ञानका प्रकाश प्राप्त करते हैं। गुप्त सुखका अनुभव करते हैं।

सर जान हर्शल स्वाध्यायके बड़े प्रेमी थे। ज्ञान-प्राप्तिके सुख-के सम्बन्धमें उन्होंने जो कहा था, वह आज भी प्रेरक और उद्बोधक है। वे लिखते हैं—

'भाँति-भाँतिके सयोगोमें मेरे साथ दृढ़तापूर्वक रहे, मेरे जीवनमें मेरे लिये सुख और आनन्दका झरना बना रहे, जीवनके दुःखमें मेरी ढाल बन जाय और जिस समय मेरे खिलाफ हवा चले तथा लोग मुझे धिक्कार देते रहें, उस समय मुझे उनसे बेपरवाह बना दे, इस प्रकारकी रुचि दीजिये।'

विद्याभ्यासके धार्मिक महत्त्वको बिना बटाये मैंने यहाँपर उसके सांसारिक लाभके विषयमें कहा है।

अहह! विद्याभ्यासकी ऊँची सांस्कृतिक रुचि कैसी आनन्द-मयी है और आत्मसतोषका कैसा प्रबल साधन है।

वास्तवमें ज्ञान-अर्जन ही सच्चा मनुष्यत्व है, बिना विद्याके मनुष्य पशु-जैसा ही है।

जान स्टुअर्ट मिल प्रसिद्ध विद्वान् हो गये हैं। वे कहा करते थे —

'यदि हम अपना समस्त जीवन भोगविलासमें या भोग-विलासकी सामग्री एकत्रित करनेमें ही व्यय कर दें, सामाजिक सीढ़ीके चढ़नेमें ही व्यतीत कर दें तो यह मानना पड़ेगा कि हमारा यह उद्देश्य तुच्छ और निकम्मा है।'

शिक्षा उन्नतिका ही अवसर देती है

जीवन उन्नतिके अवसरोंसे भरा पड़ा है, पर ये मौके उसे ही मिलते हैं, जो सुशिक्षित, समुन्नत और हर प्रकारसे चौकन्ना है—मिले हुए मौकेका ठीक तरह सदुपयोग करता है

हममेंसे कोई भी ऐसा नहीं है जो मौकेका सदुपयोग कर ऊँचा न उठ सके। जो व्यक्ति पाये हुए मौकेका सदुपयोग करता है उसे भविष्यमें नित नये मौके मिलते जाते हैं। हम जो सफलता और उन्नति पाते हैं, उसका आधार इस बातपर नहीं है कि हमें मौका मिलता है, बल्कि इस बातपर है कि हम मिले हुए मौकेका ठीक उपयोग करते हैं।

आप गरीबी, अभाव और मुसीबतसे न घबरायें

आप कहते हैं, मैं गरीब हूँ कैसे पढ़ूँ? मैं अधिक उम्रका हो गया हूँ, मेरे लिये ज्ञान-प्राप्तिका अवकाश कहाँ है? मैं

सारे दिन अपनी नौकरी और व्यापारमें व्यस्त रहता हूँ, ज्ञान-अर्जन कब करूँ, फुरसत नहीं मिलती।'

लेकिन सच जानिये, ये व्यर्थकी शंकाएँ हैं। यदि आपकी इच्छाशक्ति हो तो आप हर अभाव और व्यस्ततामें ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

गुलामसे विद्वान् एक उदाहरण

ईसपकी कहानियाँ प्रसिद्ध हैं, सबके लिये मार्गदर्शक हैं। सैकड़ों वर्ष बीत गये, पर आज भी उनसे नयी प्रेरणा मिलती है, लेकिन बेचारे ईसपको जीवनभर पढ़ने-लिखनेकी सुविधाएँ प्राप्त नहीं हुई। वे बेचारे गुलाम थे। पूरे जीवनभर उन्हें निकृष्ट नौकर-की तरह दूसरेकी सेवा-चाकरी करनी पड़ी थी। पर ईसपको पढ़ने-का बड़ा शौक था। एक-एक क्षण बचाकर वे परम विद्वान् बन गये थे। उन्होंने कभी समय सुविधा या अवसर न मिलनेकी शिकायत नहीं की थी।

ईसप कहा करते थे, 'शिक्षित बनना प्रत्येक मनुष्यके अपने हाथकी बात है। केवल सच्ची लगन तथा इच्छाशक्तिकी दृढ़ताकी ही आवश्यकता है। ईश्वरने मनुष्यकी बौद्धिक उन्नतिके साधन सर्वसुलभ बनाये हैं। वास्तवमें वे ही अशिक्षित हैं, जो शिक्षित बननेकी आवश्यकताका अनुभव ही नहीं करते।'

ईसप ही नहीं, पब्लीयस, साइरस और टेरन्स इत्यादि विद्वान् भी गुलाम ही थे, जिन्हें हर प्रकारकी मुसीबत रहती थी। फिर भी

मनकी सच्ची लगनके कारण उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया और वे परम विद्वान् बने। प्रोटेगोरस नामक एक ग्रीक तत्त्वज्ञ हुए हैं। वे अपना अभ्यासका जीवन व्यतीत करनेसे पहले मजदूरी किया करते थे। क्लीन्थियस एक ब्रह्मज्ञानी हो गये हैं। वे विद्वान् बननेसे पूर्व पहलवानीमें इनाम पानेका धंधा करते थे।

प्रसिद्ध इटालियन लेखक जेली दरजीका काम करता था। इसने अपना फालतू समय बचा-बचाकर ज्ञान-वृद्धि की और ऐसी प्रसिद्धि पायी कि वह फ्लोरण्टाइन ऐकेडमीकी कौंसिलका उच्चतम अधिकारी नियुक्त किया गया था। इसका कथन था कि आजकल ज्ञान-प्राप्तिके साधन बहुत सुलभ हैं तथा प्रत्येक व्यक्तिको समय बचाकर अपनी ज्ञानवृद्धि अवश्य करते रहना चाहिये। खराब आर्थिक स्थिति बाधक नहीं है, केवल मनुष्यकी इच्छाशक्तिकी दृढ़तासे ही ज्ञानकी कमाई सम्भव हो सकती है।

सुप्रसिद्ध इटालियन कवि मेटास्टालियो एक मामूली कारीगरका पुत्र था। जब वह बालक था, तब गाँवकी गलियोंमें कविता सुनाता फिरता था। धीरे-धीरे उसमें काव्य-शक्तियोंका विकास हुआ और वह एक दिन कवि बन गया। उसके जीवनका सार था कि गरीबी ज्ञानके क्षेत्रमें उन्नति करनेमें कोई विघ्न नहीं है।

प्रोफेसर हीन अपने समयके जर्मन विद्वानोंमें बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। उसके प्रारम्भिक साल बड़ी गरीबीमें व्यतीत हुए थे। उसके पिता बड़े ही गरीब थे। उसने बादमें लिखा है,

'आर्थिक तंगी मेरी बाल-सखी है। प्रारम्भिक जिंदगी घोर अभावमें गुजरी है। जब मेरी माँके पास अपने बच्चोंको खिलानेके लिये कोई खुराक नहीं होती थी तो उसे बड़ी आत्मग्लानि होती थी। गरीब माता-के दुखी मुखको देखकर मुझे जो विषाद होता था, वह मेरे मनपर सदाके लिये अंकित है। मेरे पिता दिन-रात सख्त मेहनत करके जो माल बनाते, उसकी ठीक-ठीक बिक्री न होनेपर मेरी माँ रोती-झींकती शनिवारकी शामको घर आती। ऐसा दृश्य मैंने कई बार देखा है। मैने निरन्तर स्वाध्याय और लगनसे ही विद्वत्ता प्राप्त की है।'

अब्राहम लिंकन अमेरिकाके राष्ट्रपति हो गये हैं। उनकी शिक्षाका कोई प्रबन्ध न हो सका था। कठिनतासे १२ महीने उन्होंने स्कूलकी शिक्षा प्राप्त की होगी। उन्हें स्वाध्यायकी शक्तिका ज्ञान हुआ। बस, उनके घरमें जो थोड़ी-सी पुस्तकें थीं, उन्हींका अध्ययन पूरी लगनसे शुरू कर दिया। इन पुस्तकोंने उनके बादके जीवन तथा चरित्रपर गहरा प्रभाव डाला। उन्होंने इन पुस्तकोंको ऐसी तल्लीनतासे पढ़ा था कि उनकी भाषा उन्हें कण्ठस्थ हो गयी थी।

इसी प्रकारके एक नहीं, सैकड़ों उदाहरण हैं जिनसे सिद्ध होता है कि स्वयं अपने-आप तीव्र इच्छाद्वारा ज्ञान और विद्वत्ता प्राप्त की जा सकती है। स्वाध्याय एक तप है। इस तपमें तपकर मनुष्यके दुर्गुण भस्म हो जाते हैं और खरा सोना निखर आता है।

आप अच्छी जीवनोपयोगी पुस्तकें चुनिये और मनोयोगपूर्वक उनका अध्ययन किया कीजिये।



व्यवहारका उपहार

दो अशिष्ट प्रभाव

बढ़िया पोशाक पहिने एक चटकीले व्यक्तिने रेलके डिब्बेमें प्रवेश किया। एक वृद्ध यात्री एक सीटपर बैठे थे और पास ही उनका हैट रखा हुआ था। यह शायद उन्होंने अपने किसी मित्र-की सीट सुरक्षित रखनेके लिये जो पेशाब-घरमें गये थे, रख दिया था। आगन्तुक महोदयने न केवल उस सीटपर ही कब्जा कर लिया, वरं धम्मसे उस हैटपर ही बैठ गये और उसे कुचल डाला।

फिर बजाय माफी माँगनेके वे उस शिष्ट व्यक्तिपर बरस पड़े और वहाँ इस प्रकार हैट रखनेकी असावधानीके लिये अभद्र कटु शब्दोंका प्रयोग करने लगे। इस गँवारपनपर सभीको आश्चर्य हो रहा था। मन-ही-मन सब नाराज थे।

पर वृद्ध सज्जन कुछ न बोले।

दूसरे स्टेशनपर गाड़ी रुकी और वह अशिष्ट यात्री गाड़ीसे नीचे उतरा।

तब वृद्ध सज्जनने खिड़कीके बाहर मुँह निकाला और एक कुलीको पुकारकर कहा—'देखना भाई! उस यात्रीतक भागकर जाओ, उससे कहो कि उसने अपनी कुछ चीजें यहाँ डिब्बेमें छोड़ दी हैं।'

थोड़ी देर बाद वही यात्री भागा-भागा आया और दरवाजेमें मुँह डालकर सकपकाया-सा बोला, 'मैं यहाँ क्या छोड़ गया था?'

'दो अशिष्ट प्रभाव'—शान्तिपूर्वक वृद्ध यात्री बोले।

वास्तवमें व्यवहारसे ही मनुष्यका अच्छा या बुरा होना जाना जाता है। बाहरी कपड़े, वेष-भूषा फैशनेबल हो सकती है, पर जबतक मनुष्य सज्जनों-जैसा व्यवहार नहीं सीखता, तबतक शिष्ट नहीं कहला सकता। शास्त्रोंमें ठीक ही कहा है—

मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम्।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः॥
(अथर्व० १।३४।३)

अर्थात् याद रखिये, जिनके व्यवहार, क्रिया और सम्भाषणमें मधुरता होती है, उन्हें सभी प्यार करते हैं। संसारमें शुभ कर्म एवं उपकार वही करते हैं जिनका स्वभाव मधुर होता है। अतः शिष्टता धारण करो। अपने कार्योंको सज्जनों-जैसा बनाओ।

अशिष्ट शब्दोंका दूषित प्रभाव

उस दिन एक दूकानदारके पास एक युवक नौकरीके लिये आया।

'क्या तुम स्वच्छतासे सुवाच्य अक्षर लिख सकते हो?'

'हाँ' उत्तर मिला।

'क्या तुम हिसाब-किताब रखना, जोड़-मिजान लगाना जानते हो?'

'हाँ' फिर वही उत्तर था।

'ठीक, बस मुझे कुछ नहीं पूछना है।' दूकानदार बोला, "बादमें तुम्हें जवाब दूँगा।'

लड़का चला गया। उसे नौकरी नहीं मिली।

किसीने पूछा—'आपने इस युवकको क्यों नौकर नहीं रक्खा?'

वह बोला—'यह युवक ईमानदार और मेहनती है, लेकिन इसने 'महोदय', 'श्रीमान्', 'जनाब' (yes sir, no sir) जैसे शिष्टतासूचक शब्दोंका प्रयोग नहीं सीखा है। व्यापार और दूकानदारीमें सर्वत्र शिष्ट शब्दोंकी अतीव आवश्यकता है। यदि वह मुझसे ही 'जी हाँ, श्रीमान्' नहीं कहता है, तो भला मेरे ग्राहकोंसे क्योंकर शिष्टताका व्यवहार करेगा। अशिष्ट व्यवहारसे तो मेरा व्यापार नष्ट हो जायगा। ऐसे अशिष्ट व्यक्तिको नौकरी देना व्यर्थ है।'

बात ठीक भी है। वार्तालापसे ही मनुष्यकी उच्चता या नीचता प्रकट होती है। कठोर, कटु, गँवारू या अप्रिय शब्द बोलनेवालेके पास कोई ठहरना या बातें करना नहीं चाहता। जो शुभ, शिष्ट और मङ्गलकारी शब्दोंका प्रयोग करता है, लोग उसीसे व्यवहार स्थिर रखना चाहते हैं—

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत ।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि ॥
(ऋग्वेद १० । ७१ । २)

अर्थात् वार्तालाप करते समय सदैव मधुर और संयमित शब्दोंका ही प्रयोग कीजिये । आपके शब्द सरल हों और उनसे किसी प्रकारकी कटुता उत्पन्न न होती हो ।

शिष्टता सबसे बड़ी सिफारिश है

एक व्यक्तिने एक नौकरीके लिये विज्ञापन छपाया । वे अपने दफ्तरमें एक सहायक चाहते थे । विज्ञापनके उत्तरमें लगभग पचास व्यक्तियोंने अर्जियाँ दीं । बहुत-से लोग उनसे मिलने आये । सबसे बातचीत हुई । इन्टरव्यू होनेके बाद उनके एक मित्रने पूछा—

'आपने एक ऐसे व्यक्तिको क्यों चुना है, जिसके पास कोई भी सिफारिशी खत नहीं है ? किसीने उसके पक्षमें कुछ भी नहीं कहा है ?'

वे बोले—'आप गलत सोच रहे हैं । कई बातोंने उस युवककी सिफारिश की है । जब वह इन्टरव्यूके लिये आया तो उसने पावदानपर पाँव पोंछे । अंदर प्रवेश करनेपर उसने दरवाजा बंद कर दिया । इससे यह मालूम हुआ कि इसे कायदे-कानूनका ज्ञान है । उस लँगड़े आदमीको खड़ा देखकर उसने फौरन अपनी सीट छोड़ दी । इससे साफ जाहिर है कि वह शिष्ट और दूसरोंका ध्यान रखनेवाला है । फर्शपर पड़ी हुई उस पुस्तकको उसने सावधानीसे उठाया और मेरी मेजपर रख दिया, जब कि अन्य व्यक्ति उस पुस्तकके प्रति लापरवाह रहे । जब मैंने उससे बातें कीं तो मैंने ध्यानपूर्वक देखा

कि उसके वस्त्र स्वच्छतापूर्वक इस्तरी किये हुए थे, उसके बाल सफाईसे सँवारे हुए थे और उसके दाँत दूधकी तरह स्वच्छ चमकदार थे। शराब, पान, सिगरेटके निशान न थे। जब उसने अपना नाम लिखा तो मैंने देखा कि उसके नाखून स्वच्छ थे। शरीरकी सफाईका उसे पूरा-पूरा ध्यान था। उसने अंदर आनेके लिये धक्का-मुक्की या गड़बड़ी नहीं की, बल्कि शान्तिपूर्वक अपनी बारीकी प्रतीक्षा करता रहा। सद्व्यवहारके ये शिष्ट कार्य और आकर्षक आदतें हजारों सिफारिशी पत्रोंसे अधिक मूल्यवान् हैं। मैं किसी लड़केको दस मिनिट सावधानीसे देखकर उसके चरित्रको पहचान सकता हूँ, जितना कोई भी सिफारिशी पत्र उसके विषयमें स्पष्ट नहीं कर सकता।'

मनुष्यकी उच्चता और शिष्टता उसके व्यवहारसे अपने आप प्रकट होती रहती है। हमारी आदतें ही हमारी आन्तरिक श्रेष्ठता स्पष्ट करती हैं।

पशुओंके प्रति भी सद्व्यवहार करें

एक दिन बादशाह सुबुक्तगीन शिकारके लिये गये। उन्हें शिकारका बड़ा शौक था। बहुत देरतक तलाश करनेपर भी कहीं मारनेयोग्य कोई जानवर न मिला, मन भारी था और आँखें चारों ओर शिकारकी तलाशमें लगी हुई थीं।

थोड़ी देर बाद क्या देखा कि एक हिरनी अपने बच्चेके साथ बेखटके चर रही है। हिंसा दयामें बदल गयी। उन्होने सोचा कि मारनेसे यह अच्छा होगा कि हिरनीके सुन्दर बच्चेको पकड़ लिया जाय।

वे दूर उतरे, धीरे-धीरे समीप गये और दाँव ताककर बच्चेको पकड़ लिया। वे बेहद प्रसन्न थे। बच्चेके पाँव बाँधकर घोड़ेपर आगे काठीपर रख लिया और अपनी राजधानीकी ओर चले।

बेचारी हिरनीमें आखिर माँका भावुक हृदय था। अपनी संतानके लिये वह विह्वल थी। अपने प्राणोंकी परवाह न कर वह भी उसके पीछे-पीछे चली। अपने प्यारे बच्चेके वियोगमें हिरनीके नेत्रोंसे आँसू बह रहे थे।

सुबुक्तगीन आखिर मनुष्य ही तो था। हिरनीकी कातर अवस्था देखकर उसे भी दया आ गयी। उसने घोड़ा रोका और बच्चेकी टाँगें खोलकर उसे छोड़ दिया। बच्चा छलाँग मारकर माँके पास आ गया।

हिरनीको तो मानो नया संसार ही मिला। बच्चेको प्यारसे चाटने लगी। वह बहुत प्रसन्न हुई और उछलती-कूदती अपने बच्चेके साथ वनको लौट गयी। पर लौटते समय जबतक सुबुक्तगीन आँखोंसे ओझल नहीं हुआ, तबतक वह उसकी ओर कृतज्ञता और प्रेमसे देखती रही। यह था उसके सद्व्यवहारका प्रताप।

उसी दिन रातको सुबुक्तगीनने एक स्वप्न देखा। स्वप्नमें पैगम्बर साहबने उससे कहा, 'सुबुक्तगीन! आज तुमने जो सद्व्यवहार एक पशुसे किया है, ईश्वर उससे बहुत प्रसन्न हुए हैं। तुम जीवनमें बहुत उन्नति करोगे।'

सच है, सद्व्यवहार चाहे मनुष्यके प्रति किया जाय अथवा पशु-पक्षीके साथ, वह कभी व्यर्थ नहीं जाता। सदा फलवान् होता है।

सद्व्यवहारसे प्रत्यक्ष लाभ

एक रात जब बड़े जोरका तूफ़ान आ रहा था, एक बौना एक गाँवमें आया। बारिसके कारण उसके वस्त्र भींग रहे थे और वह परीशान, थका हुआ, ठण्डके कारण काँप रहा था।

इस करुणाजनक दशामें वह गाँवके दर-दर शरण माँगता फिरा, परंतु किसीने उसपर दया नहीं की। इसके विपरीत गाँववाले उसके विचित्र वेशपर हँसते थे।

उसी गाँवमें एक दयावान् गडरियेका मकान था। वह सद्-व्यवहारके तत्त्वको बड़ा महत्त्व देता था और सदा सबसे सज्जनताका ही व्यवहार करता था। जब उसने उस बेचारे थके हुए बौनेकी खटखटाहट सुनी, वह तुरंत दयार्द्र होकर उठा और दरवाजे खोल-कर प्रसन्नतापूर्वक बोला —

'मेरे मित्र! भीतर आओ, बाहिर बारिस है। आगके सामने अपने कपड़े सुखा लो और कुछ खा लो।'

बौनेको इस घरमें देवताओंका निवास मिला। उसके मनमें शान्ति हुई। वह वस्त्रोंको निचोड़ने लगा। फिर उन्हें जलती हुई अग्निपर सुखाया। जब कपड़े सूख गये तो रोटी खायी, कुछ विश्राम करनेके बाद चलनेकी तैयारी की। इसपर निर्धन गडरियेने प्रेमपूर्वक कहा—

'यह क्या? इस अँधेरी रात और तूफ़ानमें तुमको बाहर जानेका विचार न करना चाहिये। तुम अभी यहीं ठहरो और विश्राम करो। इस घरको अपना ही समझो।'

इस सद्व्यवहारसे बौनेको आन्तरिक शान्ति मिली। गडरियेकी सज्जनता और प्रेमने उसे प्रसन्न और तृप्त कर दिया था।

बौनेने उत्तर दिया—'नहीं भाई! मुझे जरूरी काम है। जाना आवश्यक है; किंतु मैं तुम्हारे प्रेमपूर्ण सद्व्यवहारको आजन्म नहीं भूल सकूँगा। प्रेममय व्यवहार ही सबसे अच्छा धर्म है। व्यवहार ही ब्रह्मविद्या है। व्यवहार ही योग-शास्त्र है। व्यवहार जानना और करना मानवका सर्वश्रेष्ठ धर्म है। जो धर्म दैनिक जीवनमें व्यवहारमें आता है और जिससे हमारे समाजको लाभ होता है, वही मानव-धर्म है। आज तो मैं जाता हूँ, किंतु कल तुम देख लेना कि मैं तुम्हारी कृपाको भूला नहीं हूँ।'

इतना कहकर वह रात्रिके अन्धकारमें विलीन हो गया। गडरियेको बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि आखिर यह क्या रहस्य था ! वह बौना कौन हो सकता है ? मानव या देवता। वह उसी रहस्यमय तत्त्वपर सोचता-विचारता सो गया।

दूसरे दिन जब दिन निकला तो गाँवमें भगदड़ मची हुई थी। वह तूफान अब और उग्र हो उठा था। पासकी नदीमें पानी वेगसे बढ़ रहा था। वारिस रुकती ही नहीं थी। बढ़ते-बढ़ते पानी इतना बढ़ा कि उस गडरियेके घरको छोड़कर गाँवके अन्य सब घर बह गये।

उत यो द्यामतिसर्पात् परस्तान्न
स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः।
दिव स्पशः प्र चरन्तीदमस्य
सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम्॥
(अथर्व० ४। १६। ४)

अर्थात् याद रखिये, चाहे कोई आकाशको भी पार करके पार निकल जाय, पर यह कब सम्भव है कि वह ईश्वरीय शासनके बाहर हो सके ?

यहाँ तो ऐसा है मानो उस प्रभुके दिव्य सिपाही सर्वत्र ही सजगतासे अच्छे और बुरे व्यवहारको, पाप और पुण्यको हजार नेत्रोंसे देख रहे हैं। हममेंसे कोई भी ईश्वरकी दृष्टिसे बच नहीं सकता।

परस्पर प्रेम, सद्भाव, नेह, नाता और सम्बन्धका सूत्र एक दूसरे-से अच्छा व्यवहार ही है। मनुष्यकी उपयोगिता उसके व्यवहारसे ही है।

मनुष्य, राक्षस अथवा पशु हम कौन हैं ?

सुकरात विश्वके महान् विचारक थे। एक दिन वे सभामें भाषण दे रहे थे। बहुत-से लोग उनके उपदेश सुन रहे थे।

इतनेमें क्या हुआ कि एक उजड्ड ईर्ष्यालु युवक श्रोताओंमेंसे उठा।

लोग सोचने लगे कि आखिर यह क्या करने चला है ? दुष्ट तो दुष्ट ही होता है। उसका व्यवहार भी राक्षसों-जैसा ही होता है। इस व्यक्तिने सुकरातकी पीठपर लात मारी। अजीब दृश्य था। जनता क्रोधसे उन्मत्त थी। उसे जानसे मार डालनेपर तुली थी।

सुकरातने सबको शान्त किया। जब लोग बैठ गये तो उन्होंने अपना उपदेश जहाँसे छूटा था, फिर वहींसे प्रारम्भ कर दिया।

लोग बार-बार पूछने लगे—'इस दुष्टको सजा क्यों न दी जाय ?'

सुकरातको अब उस विषयपर बोलना ही पड़ गया।

वे शान्तिपूर्वक बोले—'कोई गधा हमें लात मारता है तो क्या हमारे लिये यह शोभाकी बात होगी कि हम भी उसे लात ही मारें ?'

सच है कितने ही पशुओंमें मनुष्यत्व और देवत्व होता है। दूसरी ओर कितने ही आदमियोंमें पशुत्व और दानवत्व छिपा रहता है। व्यवहारसे ही जाना जाता है कि हम मनुष्य, राक्षस अथवा पशु हैं।

व्यवहार जानना और करना ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है

मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम्।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम"

(ऋग्वेद ४ । ५७ । ३)

अर्थात् दूसरोंके साथ हम वैसा ही उत्तम व्यवहार करें जैसी हम स्वयं औरोंसे अपेक्षा करते है। उत्तम पदार्थोंका विनिमय ही सची नीति है।

बाहरसे देखनेमें सभी आदमी एक-से है। मनुष्यकी बौद्धिक और सांस्कृतिक उच्चता नापनेकी कसौटी उसका व्यवहार ही है। सभ्य-असभ्य, शिष्ट-अशिष्ट, संस्कृत-असंस्कृत व्यक्तिमें व्यवहारका ही अन्तर है। व्यवहारकुशळ व्यक्ति ही आकर्षणका केन्द्र होता है। उसके आते ही समाजमें सर्वत्र आनन्द और उत्साह फैळ जाता है। उसके मुँहसे बातें क्या निकळती है, मानो फूळ झरते हैं। सर्वत्र उसका आदर होता है। अपने इष्ट-मित्रों, समाज, दफ्तर, अफसर, परिवार सभीमें वह प्रतिष्ठाका पात्र होता है।

इसके विपरीत असभ्य व्यक्ति दुर्व्यवहारके कारण अनादर पाता है। उसके मुँहसे उपयोगी बातें भी अच्छी नहीं लगतीं। उसके आतङ्कके कारण सम्भव है उसके मुँहपर कोई कुछ न बोले, किंतु पीठ-पीछे सभी उसकी गँवारू आदतों, अशिष्ट व्यवहार, उजड्ड भाषा, बेढंगी पोशाक, असंस्कृत चलने-फिरनेके ढंगकी आलोचना करते हैं।

सद्व्यवहार आकर्षणका केन्द्र है, तो दुर्व्यवहार विकर्षणका

कारण है। शिष्टता हमारे सामाजिक जीवनका मधुर रस है तो अशिष्टता सार्वजनिक जीवनका सबसे बड़ा कलंक है।

व्यक्तिगत हो या सार्वजनिक स्थान—सभी स्थानोंपर शिष्टता, सभ्य व्यवहार और अच्छी आदतोंकी प्रशंसा की जाती है। प्रायः छोटी-छोटी आदतोंके द्वारा हमारे चरित्रकी अशिष्टता प्रकट हो जाती है। जिन मामूली-सी बातोंकी हम यों ही उपेक्षा कर देते हैं, उन्हींके द्वारा दूसरे हमें गँवार कहकर उपहास करते हैं।

शिष्टता हमारी प्राथमिक आवश्यकता है। कर्म, वाणी, व्यवहार, पोशाक और सामाजिक जीवनमें दूसरोंकी सुख-सुविधाका ध्यान हमारी शिष्टताकी कसौटियाँ हैं। शिष्टाचार ही सामाजिक जीवनमें सफलताकी कुंजी है।

परस्पर प्रेम, सद्भाव, नेह, नाता और उत्तम सम्बन्धोंका मूल सद्व्यवहार ही है। मनुष्य जैसा व्यवहार करता है, वैसी ही उन्नति करता है और दूसरोंसे भी वैसा ही उपहार पाता है। मानवता-की प्रतिष्ठाके लिये प्रेममय व्यवहार करना चाहिये। भक्ति प्रेममय व्यवहारका ही दूसरा नाम है। कर्मयोग समाजमें सबसे आनन्दमय व्यवहारको ही कहते है। श्रेष्ठ व्यवहारके बिना पूजा, भक्ति, ध्यान, उच्च पद किसीमें भी सार नहीं है। ज्ञान, बल, धन, सम्पत्तिकी सार्थकता मानवोचित सभ्य व्यवहारपर निर्भर है। धर्मकी श्रेष्ठता तभी है जब वह हमारे दैनिक व्यवहारसे प्रकट हो। हम दैनिक व्यवहारको 'सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम्' बनायें।



भगवान्‌से बातचीत करनेका समय व्यर्थ बरबाद न करें

क्या मनुष्य ईश्वरसे बातचीत कर सकता है? क्या परमपितातक हमें अपना संदेश, मनकी व्यथा, प्रार्थना या विनय पहुँचानेका कोई विशेष समय नियत है? क्या दुनियावालोंकी फरियाद सुननेका कोई खास वक्त है?

—ये प्रश्न आपके मनमें उठते रहते हैं।

आप किसी बड़े अफसर या उच्च अधिकारीसे मिलने जाते हैं तो पहले यह मालूम करते हैं कि उनके मिलने या बाहरवालोंसे बातचीत करनेका क्या समय है? उनको खाली समय कब मिलता है? वे आपकी व्यक्तिगत समस्याओंको सुननेके लिये कितना और कब समय दे सकते हैं?

जब आपको वे उच्च अधिकारी निश्चित समय दे देते हैं, तब आप उनसे मुलाकात करने जाते हैं। आपको सदा यह डर रहता है कि कहीं समयसे पहले या पीछे न पहुँचें। कहीं ऐसा न हो कि हमारी इन्टरव्यूका समय ही निकल जाय। किसी अन्य व्यक्तिको हमारे बाँटेका समय दे दिया जाय अथवा एक बार ठीक समयपर न जानेसे अफसर महोदय रुष्ट होकर फिर कभी मिलनेका समय ही न दें।

अतः आप मिलनेके लिये दो-चार मिनट पहले ही गन्तव्य स्थानपर पहुँच जाते हैं। सदा समयकी पाबंदीका ध्यान रखते हैं और जब आपका निर्धारित समय आता है, तब उनसे मिलकर अधिक-से-अधिक लाभ उठाना चाहते हैं।

अधिकारी महोदयसे आप अपने मनकी सब बातें जल्दी-जल्दी कहते जाते हैं। कोई भी गुप्त बात नहीं छिपाना चाहते। कम-से-कम चुने हुए शब्दोंमें अपनी समस्याएँ समझाकर मनको हल्का कर लेना चाहते हैं। आपकी हार्दिक इच्छा यही रहती है कि अपने समयका पूरा-पूरा लाभ उठावें। कुछ भी बात अवशेष रह न जाय।

यही तथ्य ईश्वरसे मिलने और बातें करनेके समयके विषयमें भी सत्य है। भगवान्‌के पास अपनी फरियाद, समस्याएँ और विनती सुनानेवाले व्यक्ति हजारों है, प्रति क्षण भरा हुआ है। किंतु उनकी असीम करुणा देखिये, वे सबकी बातें सुनते हैं, सबको वक्त देते हैं। किसीको कभी निराश नहीं करते, किसीसे भी उनका पक्षपात नहीं है। हम भी उनसे सीधा सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं और अपनी करुण वेदना तथा हार्दिक प्रार्थना उनतक पहुँचा सकते हैं। यों तो ईश्वरसे किसी भी समय सम्पर्क किया जा सकता है; क्योंकि वे सदा-सर्वत्र है और उनसे हमारा नित्य-निरन्तर सम्बन्ध है, तथापि उनके मिलने और बातें करनेका एक बड़ा सुन्दर समय नियत है।

बस, उस समय हम उनसे मिलकर अपनी व्यथा कह सकते हैं। वह समय हमारे लिये है।

हमारा आत्मा परमात्माका ही एक अंश है। जब वह परम शुद्ध और सांसारिकतासे ऊँचा उठता जाता है, तब उसका सीधा सम्बन्ध ईश्वरसे हो जाता है। सृष्टिमें अलक्षित ईश्वरतत्त्व (ईथर) भरा हुआ है। इसी तत्त्वके माध्यम (medium) से हमारे दृढ़ विचारोंकी सूक्ष्म तरङ्गें दूर-दूरतक फैलती हैं और बेतारके तारकी

तरह करोड़ों मील दूरतक हमारा संदेश पहुँचाती हैं । हम जितने आत्मविश्वास और दृढ़ संकल्पसे अपने विचार ईश्वरतत्त्वमें फेंकते हैं, वे उतनी जल्दी सीधे ईश्वरतक पहुँचते हैं और हमारा आत्मा उनका उत्तर भी सुनता है ।

तेजोमय ईश्वर (ईश्वरका वातावरण)

प्रसिद्ध लेखिका ओ हष्णुहाराने अपनी पुस्तक 'एकाग्रता और व्यक्तिगत चुम्बककी प्राप्ति' में वातावरणमें भरे हुए ईश्वररूपी तत्त्वका विश्लेषण किया है । वे लिखती हैं—

'ईश्वरत्व (जिसे विज्ञानकी भाषामें ईथर कहते हैं) आकाश या नभसे सारे अन्तरिक्षमें भरा हुआ है । यह आकाश हमारे शरीरमें भी व्याप्त है । इसमें हमारे मस्तिष्कका आत्माके माध्यमसे सृष्टिके आदिसंचालक ईश्वरसे सम्बन्ध स्थापित होता है । सशक्त विचारोंको एकाग्रतापूर्वक हम ईश्वरतक अवश्य भेज सकते हैं और उनका दिव्य संदेश भी प्राप्त कर सकते हैं । यदि विचारोंमें संदेह हो या वे कमजोर हों, तो वे नीचे ही वायुमण्डलमें दबकर रह जाते हैं । पर यदि वे मजबूत मस्तिष्कसे फेंके जायँ, तो दूर-दूर पहुँच जाते है । जितने घंटे दूसरे लोग सोये रहते हैं, वायुमण्डलमें कम विचार रहते है, वह साफ रहता है । उस समय फेंके हुए पुष्ट विचार ईथर (आकाश) में बड़ी तीव्र गतिसे दूरस्थ स्थानोंतक पहुँचते हैं ।

कहा जाता है कि प्रातःकालमें देखा हुआ स्वप्न प्रायः सच हो जाता है । इसका कारण आधुनिक मनोवैज्ञानिकोंने खोजकर निकाला है ।

वे कहते है कि सुबहका आकाशरूपी पदार्थ परम स्वच्छ

और निर्मल होता है। उसमें हमारे सशक्त विचारोंकी लहरें तेजीसे चलती हैं। दूसरे व्यक्तिका मस्तिष्क जो एक सशक्त और सचेतन रिसीवर (Receiver) है, वह उन विचारोंकी लहरोंको आसानीसे ग्रहण कर लेता है और वह बात ज्यों-की-त्यो सच हो जाती है। अन्तरिक्षका स्वच्छ और ग्रहणशील होना तथा विचारोंकी पुष्टता ही सुबहके स्वप्नोंको सत्य बनाती है। सुबहको हमारा मस्तिष्करूपी वायनमो तेजीसे कार्य करता रहता है। उस समय दिमागमें सारी रातकी शक्ति इकट्ठी हो जाती है। उस समय उससे जो विचाररूपी तरङ्गें निकलती है, वे प्रचण्ड शक्तिसे दूर-दूरतक जाती हैं। इसी प्रकार हमारे मस्तिष्क और आत्मासे निकलनेवाले विचार इस प्रकार तेजीसे फैलते हैं, जैसे शक्तिके केन्द्र-स्थान सूर्यसे प्रकाशकी तीखी किरणें फैला करती है।

परमात्मासे बातचीत करनेका यह समय है

हिंदू-तत्त्ववेत्ताओंने भगवान्‌से बातचीत करनेका समय ब्राह्ममुहूर्त बताया है। प्रातःकालके समयको ईश्वरकी पूजा, पाठ, प्रार्थना, आराधना, ब्रह्म-चिन्तन, यज्ञ, अध्ययन और शुभ कार्योंके लिये सर्वोत्तम समय बताया गया है। इसे ब्राह्ममुहूर्त कहा गया है— **'ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत'** (मनु०)।

हमारे ऋषियोंने इसे 'मधुमय समय' कहकर इसकी मधुरताका संकेत किया है। यह वह बढ़िया समय है जब प्रकृतिमें सर्वत्र मधु-ही-मधु बिखरा रहता है। प्रकृति माता अमृत-ही-अमृत बरसाती रहती है। शास्त्रोंमें इसे 'ब्रह्मवेला' कहा है।

हम इस कालमें क्या करें ?

मनु कहते हैं—'ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् ।'

अर्थात् 'हे भद्रपुरुषो ! ब्राह्ममुहूर्तमें बिस्तर छोड़ पवित्र और स्वच्छ हो धर्म, अर्थ, मोक्ष इत्यादिके उच्च विचार किया करो ।'

इस कालमें धर्मकार्य करनेसे बहुत शीघ्र लाभ होता है । धार्मिक अनुष्ठानोंके लिये यह सर्वश्रेष्ठ समय है ।

ब्राह्ममुहूर्त (प्रातः चारसे साढ़े पाँच बजेतकका समय) के सुखद, शीतल, परम आनन्ददायक, स्वास्थ्य-यौवनवर्द्धक शीतल समीरमें कुछ ऐसे रासायनिक तत्त्व भरे पड़े हैं, जिनसे मनुष्यके शरीरपर स्वास्थ्यवर्द्धक प्रभाव पड़ता है । इस दिव्य कालमें पूजन, चिन्तन, सद्ग्रन्थवाचन, एकाग्रता, जप, आराधना करनेसे सारे दिन मनुष्यका आत्मा प्रसन्न रहता है । आध्यात्मिक शक्ति साथ रहती है । सिद्धियाँ-ही-सिद्धियाँ मिलती जाती हैं ।

इस ब्रह्मवेलामें प्रकृति अपने सौन्दर्यका थाल सजाती है । वृक्ष-पौधे, पुष्प—नवयौवन, नव-प्राण पा थिरकते हैं । नयी प्राण-वायु फेंकते हैं, जो जीवमात्रकी आयुका वर्द्धन करनेवाली है । स्फूर्तिदायक, शीतल, मन्द समीर चलता है । चिड़ियाँ चहकती हैं । मुर्गेकी ध्वनि ईश्वरकी ओरसे आनेवाला संकेत है, जो यह कहता है दिन-भरमें दिनका यौवन, बस, यही कल्याणकारी श्रेष्ठ फलदायक समय है ।

तनिक बाहर प्रकृतिकी फुलवारीमें आइये ।

देखिये—सब पुष्प, वृक्ष, पत्तियाँ, लताएँ और नव-विकसित कलिकाएँ मधुरतासे मुस्करा रही हैं । प्रकृति अपने मादकरूपमें स्थित

है । प्रकृतिके सहचर बड़े तड़के उठनेके अभ्यस्त है । चिड़ियाँ थिरक-थिरककर अपनी मधुर तान छेड़ रही है, वृक्षोकी पत्तियाँ यौवन-विभोर हो हिल रही हैं । गोएँ रँभा रही है । प्रभातकालीन आकाशके सितारे जैसे मधुरतासे मुस्करा रहे हैं । नया जीवन पाकर समस्त वातावरण शुभ्र हो उठा है । प्रकृतिकी विशाल गोदमें खेत लहलहा रहे हैं । एक मीठी सुगन्ध सबको मदमस्त कर रही है । प्रातःकी प्राण-वायु (आक्सीजन) फेफड़ों और सारे शरीरमें नवजीवन भर रही है ।

ब्राह्ममुहूर्तका लक्षण

सबसे पवित्र समय, ईश्वरसे बातचीत करनेका समय जिसे ऋषियोंने ब्राह्ममुहूर्त कहा है, प्रातःकाल चार बजेसे साढ़े पाँच बजेतक आता है । ब्रह्मवेलामें ईश्वर खुले हाथ समस्त प्रकृति तथा जीवोंको स्वास्थ्य, सुख, सौन्दर्य, यौवन, धर्म, बुद्धि, विवेक और स्फूर्ति बाँटते हैं ।

ब्रह्मवेलामें जो जागते हैं, वे इन दिव्य दैवी सम्पदाओंको आसानीसे पा लेते हैं, पर जो मूर्ख आलस्य या प्रमादवश शय्यापर सोते-ऊँघते रह जाते हैं, वे राक्षस-जैसे दीन-हीन आलसी बने रहते हैं । सारा दिन आलस्यमें ही काटते हैं ।

ब्राह्ममुहूर्तके लक्षण हमारे धर्मशास्त्रोंमें इस प्रकार वर्णित हैं—

रात्रेः पश्चिमयामस्य मुहूर्तो यस्तृतीयकः ।
स ब्राह्म इति विज्ञेयो विहितः स प्रबोधने ॥

अर्थात् रात्रिके अन्तिम प्रहरका जो तीसरा भाग है, उसको ब्राह्ममूहूर्त कहते हैं । यह अमृतवेला है । सोकर उठ जाने और भजन-पूजन इत्यादि सत्कर्मोंके लिये यही समय शास्त्रानुकूल है ।

'भावप्रकाश' नामक ग्रन्थमें मनुष्यके स्वास्थ्य और दीर्घजीवनके अनुभूत उपाय बताये गये हैं। इसमें एक स्थानपर लिखा गया है—

उत्तम स्वास्थ्य और मानसिक शान्तिके लिये, शुभ विचारोंकी प्राप्तिके लिये मनुष्य चार घड़ी तड़के अर्थात् ब्राह्ममुहूर्तमें शय्या त्याग दे। उस समय दुःखकी निवृत्ति और शान्तिकी प्राप्तिके लिये श्रद्धा-पूर्वक ईश्वरका स्मरण करे।

फिर दही, घी, दर्पण, सफेद सरसों, बैल, गोरोचन और फूलमाला आदिके दर्शन करे। उनका स्पर्श करे। ये शुभ मङ्गलदायी कार्य हैं।

भगवान् मनुने लिखा है—'प्रातःकाल देरतक सोना पुण्यों और संचित सत्कर्मोंका नाश करनेवाला है, इसलिये आलस्यवश जो द्विज प्रातः जल्दी न उठे, उसे पादकृच्छ्र नामक व्रत करके उसका प्रायश्चित्त करना चाहिये।

श्रीवाल्मीकि-रामायणमें ब्राह्ममुहूर्तका हृदयस्पर्शी वर्णन किया गया है। भगवती सीताजीकी खोज करते-करते महावीर हनुमान्जी अशोकवाटिकामें पहुँचते हैं। कवि-शिरोमणि वाल्मीकि ब्राह्ममुहूर्तका वर्णन करते हुए लिखते है—

विचिन्वतश्च वैदेहीं किंचिच्छेषा निशाभवत्॥
षडङ्गवेदविदुषां क्रतुप्रवरयाजिनाम्।
शुश्राव ब्रह्मघोषान् स विरात्रे ब्रह्मरक्षसाम्॥

(सुन्दरकाण्ड १८। १-२)

अर्थात्—इस प्रकार श्रीमाता सीताजीकी खोज करते-करते रात्रि थोड़ी-सी अवशेष रह गयी। तब महावीर हनुमान्जीने ब्राह्ममुहूर्तमें

वेदज्ञ और याज्ञिक विद्वानों तथा ऋषियोंद्वारा किये जानेवाले भव्य पाठका श्रवण किया।

सुबह सोनेवाले दरिद्री होते हैं

चाणक्यनीतिमें ब्राह्ममुहूर्तके समयके सदुपयोगके विषयमें इस प्रकार कहा गया है—

'सूर्योदयके समयको सोकर व्यर्थ बरबाद करनेवालेको, चाहे वह चक्रधारी विष्णु ही क्यों न हो; लक्ष्मी, विद्या, बुद्धि सब छोड़ जाते है। वह व्यक्ति एक-न-एक दिन दरिद्री हो जाता है।'

संसारके प्रायः सभी उच्च कोटिके साधक, बड़े-बड़े विद्वान् और दीर्घजीवी मनुष्य सूर्योदयसे पूर्व ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर शुभ चिन्तनके अभ्यस्त रहे हैं।

बालसूर्यकी परम स्वास्थ्यकारी किरणोंको शरीरपर लेनेसे प्रतिदिन सूर्यनारायणको अर्घ्य देनेसे, दर्शन करनेसे बड़ा पुण्य-लाभ होता है। स्वास्थ्य और वीर्य बढ़ता है। नेत्र-ज्योति उद्दीप्त होती है। मन प्रसन्न रहता है।

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत स्वास्थ्यरक्षार्थं मानुषः।
तत्र दुःखस्य शान्त्यर्थं स्मरेद्धि मधुसूदनम् ॥

अर्थात स्वास्थ्य बढ़ानेके लिये केवल ब्राह्ममुहूर्त ही मनुष्यके लिये अति उपकारी है। स्वस्थ मनुष्यको चाहिये कि वह अपने स्वास्थ्य, यौवन, वीर्य, बुद्धि आदिकी रक्षाके लिये ब्राह्ममुहूर्तमें सोकर उठ जाय और दुःख-नाश तथा (प्रसन्नतालाभ-शान्ति) के लिये भगवान्का भजन, पूजन, कीर्तन, पूजापाठसे दिन प्रारम्भ करे।

शय्यापर दिन निकले पड़े रहनेसे मनमें अनेक प्रकारके कुविचार तूफान मचाने लगते हैं और आलसी बना देते हैं। क्षुद्र कामवासनाएँ प्रायः उन व्यक्तियोंको सताती हैं, जो रात्रिमें बारह-एक बजे सोनेकी बुरी आदत बना लेते हैं। आलस्यमें हम ज्यों-ज्यों फँसते हैं, यह दुष्ट त्यों-त्यों हमें अधिकाधिक सताता है।

लोगोंका कहना है कि 'हम बड़े तड़के उठना चाहते हैं, बड़ी इच्छा होती है, पर हमारी तामसिक वृत्तियाँ हमें बिस्तरपर पड़े रहनेको दबाती हैं। तबीयत करती है कि कुछ देर और नींदका मजा लें। हम क्या उपाय करें?'

हमारा सुझाव है कि आप तुरंत उठ जाइये। तनिक भी न सोचिये, न कुछ देर पड़े रहनेका मोह कीजिये। एक बार संकल्प कर उठ गये। निद्राको तोड़ना ही सबसे महत्त्वपूर्ण काम है। फिर तो एक नयी आदतका निर्माण हो जायगा।

ब्राह्ममुहूर्तमें हमारा आत्मा बलवान् रहता है। हम ईश्वरतक अपना जो भी संदेश हो, पहुँचा सकते हैं। उनका संकेत भी पा सकते हैं। इसी ब्रह्मवेलामें भगवान्‌से सीधे बातचीत हो सकती है।

'भैषज्यसार' नामक पुस्तक (पृष्ठ ९३) में लिखा है—

'ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर शुभ कार्य करनेवाला पुरुष सौन्दर्य, लक्ष्मी, स्वास्थ्य, आयु आदि वस्तुओंको सरलतासे प्राप्त कर लेता है। उसका आत्मा पवित्र और शरीर कमलके समान सुन्दर हो जाता है।'

ब्राह्ममुहूर्त साधनाका सबसे अच्छा समय है। स्वामी शिवानन्दजी महाराज लिखते हैं—

'ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर ध्यानका अभ्यास कीजिये।

किसी हालतमें इसको मत त्यागिये। यह समय ध्यान और चिन्तनके लिये बड़ा ही अनुकूल है।'

नींदके बाद मन ताजा रहता है। वह शान्त और सजग रहता है। इस समय मनमें सत्त्वगुणोंकी प्रधानता रहती है। आसके वातावरणमें भी सत्त्वगुणकी प्रधानता रहती है।

ब्रह्मवेलामें मन सापेक्षतः कोरे कागजकी तरह स्वच्छ रहता है। उसपर दुष्ट सांसारिक कुसंस्कार नहीं रहते। राग-द्वेषकी धाराएँ मनमें नहीं घुसी होतीं।

इस समय आप मनको इच्छानुसार जैसा चाहें, सुगमतापूर्वक बना सकते हैं। मनमें स्वाध्याय और ब्रह्मचिन्तनद्वारा नये और उत्तम संस्कार उत्पन्न करनेका यही श्रेष्ठ समय है। आप इस समय सुगमतापूर्वक मनको दिव्य विचारोंसे परिपूर्ण कर उन्नतिशील जीवन व्यतीत कर सकते हैं। सारे योगी, परमहंस, संन्यासी, साधक और हिमालयके ऋषिगण इसी समय अपना ध्यान आरम्भ करते हैं तथा ईश्वरसे सीधे बातचीत करते है।

सांसारिक व्यक्तियोंको शौचादिसे निवृत्त होकर पूजा करनी चाहिये। फिर घूमने जाना चाहिये। स्वाध्याय और लेखनके कार्य होने चाहिये। पवित्र श्लोकोंका पाठ, गायत्री-जप, ॐ नाम-कीर्तन, भजन गानेसे सारे दिन आपका आत्मा सशक्त बना रहेगा। हर कार्यमें ईश्वरकी शक्ति साथ रहेगी और सफलता मिलती चलेगी।

न च सूर्योदये स्वपेत् (म० भा० शा० प० १९३। ५)

सूर्य उदय हो जानेपर सोये नहीं रहना चाहिये।



वातावरणका भी विचित्र प्रभाव होता है

बालक श्रवणकुमार अतुलनीय मातृ-पितृभक्त आदर्श पुत्र था। जगत्के इतिहासमें उसके समान सर्वगुणसम्पन्न आज्ञाकारी अन्य किसी युवकके उदाहरण शायद ही होंगे। वह जीवनभर अपने माता-पिताकी प्रत्येक इच्छाकी पूर्तिमें ही चरम सुख, संतोष एवं आत्मतृप्ति मानता रहा। मातृदेवो भव, पितृदेवो भव—उसका सिद्धान्त था।

जीवनकी संध्यामें उसके अंधे वृद्ध माता-पिताने तीर्थ-यात्राकी इच्छा प्रकट की। उन दिनों यात्राकी आधुनिक सुविधाएँ नहीं थीं। आज्ञाकारी श्रवणने उन्हें काँवरमें बैठाया और पैदल ही तीर्थयात्राके लिये ले चला।

उजड़ वन, मैदान, मंजुल सरिताएँ, नये-नये अजनवी प्रदेश मार्गमें पड़े। पत्थर-कंकड़की पहाड़ियाँ पार कीं; श्रवणने अनेक ऊबड़-खाबड़ मार्ग पार किये। माता-पिताकी एक इच्छाकी पूर्तिके लिये श्रम, थकावट, भूख-प्यास, बेआरामी के नाना कष्ट सहे, पर वह कर्तव्यपथपर निरन्तर अग्रसर होता रहा। कर्तव्यभावना मार्गके

विकट भयावह दृश्योंसे न रुकी। श्रद्धा, कर्तव्य और प्रेममें पगा अनुरागके प्रवाहमें श्रवण उत्तरोत्तर तीर्थयात्रापर आगे बढ़ रहा था। शरीरसे थक-हारकर भी वह अपने आत्मा और मनसे पूर्ण तृप्त और संतुष्ट था। वह माता-पिताकी सेवा कर रहा था। यही आत्मिक सुख उसे बढ़ा रहा था।

मार्गमें एक प्रदेश आया जिसे जहाजपुर कहते हैं। इस प्रदेशमें पग रखते ही आज्ञाकारी श्रवणके मनमें एक अजीब परिवर्तन हुआ। वह समझ न सका कि विचारोंका यह नया प्रवाह किस मार्गसे उसके मनमें प्रवेश कर गया।

स्वार्थ और संकुचितताके विषैले विचार चारों ओरसे आकर उसके मस्तिष्कमें उपद्रव मचाने लगे।

अब वह सोच रहा था, 'मैं इन हाड़-मांसके पिंजरोंके लिये व्यर्थ ही क्यों वन-वन खाक छानता फिरूँ? ये अब हैं ही कितने दिनोंके मेहमान! ये तो थोड़े दिन बाद मरकर समाप्त हो जायँगे, मैं इन्हें कंधेपर लादे-लादे थक-हार या हिंस्र पशुओंका भोजन बनकर क्यों प्राण गवाऊँ? तीर्थयात्रा हो या न हो, मुझे इससे क्या लाभ? मरते हैं तो मरें। मैं तो इन्हें यहीं छोड़कर वापस लौटता हूँ। कहाँके झगड़ेमें पड़ गया। लादे-लादे कहाँ चला आया। पाँवोंमें छाले पड़ गये।

इन विचारोंमें डूबकर उसने वृद्ध, अशक्त, अंधे, निःसहाय, निरुपाय माता-पिताको मार्गमें आगे ले चलनेसे स्पष्ट इन्कार कर दिया।

चित्रका दूसरा पहलू देखिये—

दूसरी ओर वृद्ध माता-पिता चकित-विस्मित थे। यकायक यात्रा रुक जानेसे उनका मन संकल्प-विकल्पोंसे भर गया। वे श्रवणमें अचानक परिवर्तन पाकर कुछ भी समझ नहीं पा रहे थे।

वे मन-ही-मन कह रहे थे, 'अरे, यह अकस्मात् कैसा असर है। इतने शिष्ट और सुशील आदर्श पुत्रमें ये स्वार्थ और अहंकारके विचार कैसे आये? यह आधी यात्रामें ही क्योंकर रुक गया? कहाँ तो एक पल भी हमारी सेवासे विमुख नहीं होता था और कहाँ इस अनजान वनप्रदेशमें ही हमें छोड़ देनेको तैयार हो गया! क्या इसके संस्कारोंमें दोष आ गया है? हाय, हमारा दुर्भाग्य! यह विनाश-कारी प्रभाव आखिर कहाँसे आ गया?'

श्रवणके पिता समझदार थे। उन्होंने बहुत विचारकर कहा, "हो-न-हो यह इस भूमि या वातावरणका ही असर दिखायी देता है। यह जमीन पापपूर्ण विचारोंसे भरी हुई है।'

फिर वे श्रवणसे बोले—

'श्रवण! यह ठीक है कि तुम हमें कंधोंपर लिये-लिये इतनी लम्बी तीर्थयात्रा कराते-कराते थक गये हो। आगे तुम हमारा दुर्वह भार लेकर नहीं चल सकते। ठीक है, हमें कहीं-न-कहीं छोड़ दो। बस, जरा-सी एक बात मान लो। फिर आगे कुछ न कहेंगे।'

श्रवणकुमारने पूछा—'कहिये, क्या चाहते हैं?'

वे बोले—'इस प्रदेश (जहाजपुर) की सीमासे हमें बाहर निकाल दो। फिर हम स्वयं कहीं चले जायँगे। यह फासला छोटा

ही है। जहाँ तुमने हमारे लिये इतना श्रम किया है, तनिक-सा और कष्ट करो। बस, हमें इस प्रदेशकी सीमासे बाहर कर दो!

बेमनसे श्रवणने फिर काँवर उठा ली।

जो काँवर उसे हलकी-फुलकी लगती थी और जिसे वह मीलों बिना थकानके उठा लाया था, वही उसे अब भारी मालूम पड़ रही थी।

जिस काँवरमें रक्खे हुए वृद्ध मांसपिण्डोंका बोझ वह आह्लादित मनसे मधुर गीत गाता हुआ श्रद्धामें तन्मय हो अविरामगतिसे ले जा रहा था, वही अब उसे भारी बोझसे कंधा तोड़ती लग रही थी।

श्रवण मन-ही-मन सोच रहा था, 'थोड़ा-सा इलाका है। बस, अब पार किया। फिर इस भारसे छुटकारा मिल जायगा। यह सामनेकी पहाड़ी पार की और इस प्रदेशकी सीमासे बाहर हुए। फिर व्यर्थकी इस यात्रासे पीछा छूटेगा। लाओ, जल्दीसे इस सीमाको पार कर लो।'

आध घंटे चलनेके उपरान्त वह प्रदेश पार हुआ! अब वह एक नये इलाकेमें प्रवेश कर चुका था।

पर यह क्या? उसके मनमें फिर परिवर्तन शुरू हुआ। उसे आश्चर्य हो रहा था कि उसके मनमें नया परिवर्तन क्यों हो रहा है?

सद्बुद्धि लौटी, विवेक फिर लौट आया। नये प्रदेशके वातावरणमें उसमें कर्तव्यबुद्धिका शुभ्र प्रकाश फिर जगमगाने लगा।

उस दिव्य प्रकाशमें उसे माता-पिताके प्रति की गयी अवज्ञा और भूलका ज्ञान हुआ। इस प्रदेशके प्रकाशमें उसे अपनी कुबुद्धि और कुतर्कपर भारी पछतावा होने लगा।

वह पश्चात्तापके स्वरमें बोला—'उफ् ! मैंने अपने देव-स्वरूप माता-पिताको कटुवचन कहकर कितना पाप किया है। कर्तव्यकी कितनी अवहेलना की है ! मेरे वचन कितने अनुचित थे ! हाय ! यह कृतघ्नता यह संकुचितता और कुबुद्धि मेरे मनमें किस प्रदेशसे आ गयी ?'

श्रवणको दुखी देखकर उसके पिताने समझाया—

'श्रवण ! इसमें तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं है। यह सब इस भूमिका बुरा प्रभाव था। इस जमीनके बुरे वातावरणमें अनेकों वर्षोंके कुसंस्कार फैले हुए हैं। इसमें बहुत दिनोंतक कपटी, धोखेबाज तथा बड़े स्वार्थियोंका निवास रहा है।

'इस प्रदेशकी विषैली वायु और दूषित वातावरणमें रहकर कोई भी दुर्भावोंसे परिपूर्ण हो सकता है। इस बुरे वातावरणमें रहकर जो क्षणभरमें तुम्हारी बुद्धि कुसंस्कारोंसे बोझिल हो उठी, इसमें तुम्हारा दोष जरा भी नहीं है। यह सब कसूर यहाँके विषैले वातावरणका ही है। तुम्हारी पितृ-मातृभक्तिमें कोई कमी नहीं है।'

यह सुनकर श्रवणको कुछ संतोष मिला। उसे मालूम हुआ कि वातावरण अच्छे आदमियोंको भी बुरा बना देता है।

विचार स्थायी होकर वातावरण बनाते हैं

आधुनिक मनोविज्ञान स्पष्ट कहता है कि हमारे विचार वायुके माध्यमसे चारों ओर फैलकर अच्छा या बुरा वातावरण बनाया करते हैं। हमारे विचार मरते नहीं। दिनों तथा वर्षोंतक आसपासकी भूमिमें गड़ जाते हैं। वातावरणमें चक्कर लगाते रहते हैं।

हम जैसे शुभ अथवा अशुभ वातावरणमें रहते है, उसका गुप्त प्रभाव चुपचाप हमारे मन और शरीरपर पड़ता रहता है। मन्दिरके शुभ वातावरणमें शुभ वृत्तियाँ बिखरती है। मदिरालय, वेश्यालय, सिनेमा या चाय-पानकी दूकानके आगे गंदी वासनाएँ बुरी तरह भड़क उठती हैं।

गङ्गाजी, यमुनाजी, त्रिवेणी इत्यादिमें स्नान कर मन क्यों प्रसन्न होता है? आत्मा क्यों तृप्तिका अनुभव करता है? मथुरा, बदरीनाथ, केदारनाथ, हरिद्वार इत्यादि पुण्य तीर्थोंमें क्यों हम आनन्दित रहते है? यहाँका वातावरण ऋषि-मुनियोंके पुण्यकार्यों, पवित्र विचारों और तपश्चर्या, शुभ संकल्पोंसे भरा है। आज भी वे वायुमण्डलमें मौजूद हैं।

कुछ प्रत्यक्ष अनुभव

राजस्थानके शिक्षामन्त्री माननीय श्रीहरिभाऊ उपाध्यायसे वातावरणके गुप्त प्रभावके सम्बन्धमें चर्चा चली, तो उन्होंने अपने अनुभवकी कई महत्त्वपूर्ण बातें बतायी थीं।

वे बोले—'बात उन दिनोंकी है, जब हमलोग दक्षिणकी तीर्थयात्रा कर रहे थे। हमने अनेक हिंदू-तीर्थ-स्थानोंके दर्शन किये। अनेक भव्य मन्दिरोंमें घूमे। अनेक महात्माओंके दर्शन किये। हमारा मन उस शुभ वातावरणमें पवित्र विचारोंसे भरा रहा।

'एक बार एक मन्दिरमें हमलोग पहुँचे, तो क्या देखते हैं कि एक पुजारी एक यजमानसे दक्षिणाका मोल-भाव कर रहा है। पुजारी धर्मके नामपर अधिक-से-अधिक पैसा वसूल करना चाहता है, जब कि यजमान कम देना चाहता है।

'धर्मके नामपर, पवित्र क्षेत्रोंमें यह मोलभावकी वणिक्-वृत्ति देखकर आधुनिक टकाधर्मके प्रति मेरे मनमें ग्लानि भर गयी।

'मैं सोचता रहा, कैसा युग आ गया कि धर्म-जैसी पवित्र भावना भी आज मोल बिकने लगी। श्रद्धा-जैसी कोई चीज नहीं रह गयी। पैसा देकर आशीर्वाद और शुभ कामनाएँ खरीदी जाती हैं। ऐसे दिखावटी और ऊपरी धर्मके प्रति मेरे मनमें बड़ी अश्रद्धा उत्पन्न हुई।

'वहाँसे हटकर घूमते हुए हम उस स्थानपर पहुँचे जहाँ यह कहा जाता है कि संत ज्ञानेश्वरजीने स्वयं अपने हाथोंसे वृक्ष लगाया था। हमने उस पवित्र वृक्षके दर्शन भी किये।

'पर मनमें आश्चर्य हुआ!

'उस स्थानपर थोड़ी देर ही विश्राम करनेपर शुभ विचारोंका दिव्य प्रवाह मेरे मनमें वहने लगा और मुझे वहाँ जिस मनःशान्तिका अनुभव हुआ, वह बड़े-बड़े मन्दिरोंमें नहीं मिली थी। मुझे अनुभव हुआ कि इसका एकमात्र कारण उस वातावरणमें गुप्तरूपसे बसनेवाला विद्युत्-प्रवाह था। वातावरणमें पवित्रता-ही-पवित्रताकी अनुभूति हुई।

'इसी प्रकारका एक उलटा अनुभव भी हुआ था।

'एक बार हम एक बड़े अमीर सेठजीके यहाँ ठहरे थे। वहाँ हमारा हर प्रकार बड़ा आदर-सत्कार हुआ। हमें स्वादिष्ट राजसी भोजन कराया गया और फिर हमें आलीशान सुसज्जित कमरेमें विश्राम कराया गया।

'पलंग भी आरामदायक था। बिजलीका पंखा चल रहा था।

हम थके हुए थे और यह आशा की कि पड़ते ही ऐसी गहरी निद्रा आयेगी कि कहाँ पड़े हैं, यह भी पता नहीं रहेगा।

'पर पलंगपर नेत्र मूँदे पड़े रहे। सोनेका लाख प्रयत्न किया। पर आश्चर्य हुआ कि नींद ही न आयी। बार-बार प्रयत्न करनेपर भी हम न सो सके। न जाने यह नींद कहाँ गायब हो चुकी थी! हम सारी रात करवटें बदलते रहे, पर नींद न आयी।

'आखिर हमें क्या हो गया था?

'सोचते-सोचते ख्याल आया कि हो-न-हो यह दूषित और विषैले वातावरणका ही प्रभाव हो सकता है।

सुबह पूछ-ताछ की तो हमारा अनुमान ठीक निकला। मालूम हुआ कि वे सेठजी कामुक और विलासी वृत्तिके आदमी थे। धन जब गंदे कामोंमें लगता है, तो सड़ने लगता है। दुर्गुण भी संक्रामक होते हैं। इन महाशयका जीवन और विशेषतः यह कमरा, जिसमें हमें ठहराया गया था, आमोद-प्रमोद, भोग-विलास, नृत्य-गानके गंदे कार्योंसे, गंदे कामुक विचारोंसे भरा हुआ था। उस धनीके दुश्चरित्र आदमी तथा कुसंगतिके विषैले विचार समस्त वातावरणमें खटमल, जूँ, मच्छर और मक्खियोंकी तरह भरे हुए थे।

'ये विचार, गंदी वासनाएँ, कुत्सित भावनाएँ वहाँके वायुमण्डलमें आजतक चिपकी हुई थीं। उन्हींसे उस कमरेका वातावरण इतने दिनों बाद भी गंदा था। वायुमण्डलमें व्याप्त आँखोंसे न दीखनेवाले कुसंस्कारोंने हमें रातभर परेशान कर रक्खा था। हमारा मन भी कामुक और अशान्त बना रहा था।'

सम्भव है आपका भी कोई इस प्रकारका अनुभव हो ! वातावरणके गुप्त असरके प्रसङ्ग हमारे जीवनमें आते रहते हैं। इन प्रसङ्गोंसे मनुष्यके दुर्गुणोंकी संक्रामकता प्रकट होती है।

दुराचार आसपासके वातावरणमें गंदगी उत्पन्न करता है। यह वातावरण एक-दो-दिन नहीं, सप्ताह और वर्षोंतक बना रहता है। दुर्गुण आसानीसे अपना स्थान नहीं छोड़ते। कण-कणमें बस जाते हैं। व्यभिचारके अड्डोंमें अच्छा व्यक्ति भी वासनाओंसे भर जाता है।

दूसरी ओर सज्जनता, प्रेम, भक्ति, सदाचार, धर्मभावना, शान्तिभावना, यज्ञादि, पवित्र कार्य, पूजन, भजन, कीर्तन इत्यादि शुभ धार्मिक कार्योंसे शुभ सात्त्विक वातावरण पैदा होता है।

हमारे घर, परिवार, मुहल्ला या शहरके वातावरणका अच्छा या बुरा होना स्वयं हमारे विचारों और कार्योंके ऊपर निर्भर है।

उत्तम वातावरण बनाइये

याद रखिये, आपके मनमें जैसे छिपे हुए विचार होंगे, जैसा चरित्र होगा, वैसी ही विचारोंकी किरणें आपके आस-पास गुप्तरूपसे वायुमण्डलमें फैलेंगी। विचार छिपते नहीं, प्रकट होकर रहते हैं। विचार संक्रामक हैं।

सद्गुण और दुर्गुण संक्रामक हैं अर्थात् छूतसे फैलते हैं। जैसे काला रंग जल्दी और सफेद देरमें असर करता है, वैसे ही साधारणतः दुर्गुणोंका प्रसार जल्दी और सद्गुणोंका प्रसार देरमें होता

है। आपके घरवाले जैसे विचारोंका वायुमण्डल बनाते हैं, बच्चे भी वैसे ही संस्कार एकत्रित करते जाते हैं।

आपके द्वारा बोले हुए वचन ध्वनिकी क़िरणें छोड़ते हैं। अतः शुभ वचन ही उच्चारण करें। बच्चोंके नाम आप दिनमें ५०-६० बार पुकारते हैं। इसलिये ऐसे नाम रखिये जिनमें 'राम' अथवा 'कृष्ण' या 'ॐ' इत्यादिका प्रयोग हो। किसी देवी-देवताका या महापुरुषका पवित्र चरित्र उनसे जुड़ा हुआ हो। बार-बार उसे पुकारनेसे शुभ संस्कार बनते है।

आपकी दीवारोंपर लगे हुए चित्र देवी-देवताओं, रामायण या महाभारत, गीता या धार्मिक प्रसंगोंके होने चाहिये। पवित्र श्लोक, दोहे, शुभ वाक्य, उपयोगी सूत्र, गायत्री या और ऐसे पवित्र वचन रहें जिनपर बार-बार आपकी दृष्टि पड़ती रहे। ये चित्र और सिद्धान्त-वाक्य, उत्तमोत्तम पुस्तकें, धार्मिक पत्र-पत्रिकाएँ, धार्मिक कार्य—पवित्र वातावरण बनाते हैं। घरमें एक छोटा-सा पूजाघर या किसी खिड़कीमें भगवान्का निवासस्थान अवश्य रखिये और दिनका प्रारम्भ भजन-पूजन, आरती, शुभ दर्शनसे किया कीजिये।

कुछ समय उत्तम धर्मग्रन्थोंके स्वाध्यायके लिये अवश्य रखिये। साधु पुरुषोंका सङ्ग, मन्दिरका निवास, श्रीगङ्गाजी, यमुना, त्रिवेणी आदिका स्नान—पवित्र चिन्तन पैदा करते हैं।

बच्चोंसे उत्तमोत्तम भजन उच्चारण कराइये। स्वयं भी उनके साथ गाया कीजिये। भूलकर भी बच्चोंके सामने गाली मत दीजिये या कोई गंदी हरकत न कीजिये। आजकल सिनेमामें अश्लील

कामोत्तेजक गीतोंकी भरमार है। सारे दिन अश्लील गीत गूँजते रहते हैं। अपने बच्चोंको इनसे बचाइये। सिनेमा मत देखने दीजिये और किसी अभिनेत्रीका चित्र घरमें, कैलेंडर या और किसी भी रूपमें मत रखिये। आज सिनेमासम्बन्धी गंदी पत्रिकाओंकी भरमार है। ऐसी कोई पत्रिका या पुस्तक घरमें मत रहने दीजिये।

पान, बीड़ी तथा अश्लीलताके विचार, कामुकता बढ़ानेवाले पदार्थ, ऐश-विलासकी वस्तुएँ, मानसिक ऐय्याशीकी चीजें इकट्ठी मत कीजिये। वासनाएँ बहुत बलवान् हैं। ये कभी-कभी तो समझदार और विद्वान्‌को भी अपनी ओर बलात् खींच लेती है—

बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति।

(मनु० २। १५)

अर्थात् सावधान, इन्द्रियाँ अति शक्तिमती हैं। ये विद्वान्‌को भी नाच नचाती हैं। इसलिये इन्द्रियोंके ऊपर कठोर नियन्त्रण रखिये।

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥

(गीता २। ६०)

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—'अर्जुन! प्रमथनस्वभाववाली इन्द्रियाँ यत्नशील बुद्धिमान् पुरुषके मनको भी बलपूर्वक हर लेती हैं।'

सदा सात्त्विक वातावरण ही बनाइये। शुभ सोचिये, शुभ दर्शन कीजिये और शुभ वचन ही उच्चारण कीजिये।



वाल्मीकिने सब परिवारवालोंसे पूछा—'मैं तुम सबको भोजन देनेके लिये हत्याएँ करता हूँ। क्या तुम मेरे पापमें भागी बनोगे ?'

वे बोले—'नहीं, हमारा काम तो भोजन-वस्त्रादि लेना है। तुम जीविका कैसे उपार्जन करते हो, इससे हमें कोई सरोकार नहीं। तुम्हारा कर्तव्य हमें पालना है। पाप-पुण्यकी बात तुम जानो। पाप होगा तो उसके तुम भागी बनोगे, पुण्य होगा तो उसके भी तुम ही भागी बनोगे।'

उत्तर सुनकर वाल्मीकि स्तम्भित रह गये।

'तो क्या मेरे पापमें दूसरा कोई शामिल नहीं है ? उफ् ! यह कैसा स्वार्थी संसार है ?'

उन्हें अपना प्रारम्भिक जीवन रह-रहकर याद आने लगा। उन्होंने न जाने कितनोंको लूटा था, कितने घर बिगाड़े थे। अब पापमें उनके साथ कोई शामिल नहीं था।

उन्होंने अपने पिछले पापों, गलतियों और दुष्टताओंको भुलाकर अध्ययन, पठन-पाठन, काव्यरचना प्रारम्भ की और आत्मसुधारका कार्य इस तल्लीनता और भक्तिसे किया कि पुराने डाकूसे नये विद्वान् बन गये। जिंदगी बिल्कुल बदल गयी। इतनी बदल गयी कि यह पहचानना कठिन हो गया कि महाकवि वाल्मीकि कभी डाकू भी थे।

वास्तवमें नयी जिंदगी—उन्नतिशील जिंदगी शुरू करनेमें देर-सबेर कुछ नहीं होती। इन्सान जब जाग जाय और जिस क्षणसे उन्नतिशील भावनाएँ और आकाङ्क्षाएँ अपना ले, तबसे और उसी क्षणसे

नयी जिंदगी प्रारम्भ हो जाती है। पुरानी गलतियोंपर पछताते रहना व्यर्थ है।

× × ×

तुलसीदास वासनामें लिप्त रहते थे। यौवनके उन्मादमें नारीके अतिरिक्त उन्हें कुछ दीखता ही न था। उन्होंने स्वयं कहा है—

'माधवजू, मो सम मंद न कोउ।'

उन्होंने आगे लिखा है—'रे मन! तू कुटिल है। तू यह बुरा मार्ग, बुरी चाल, दुर्बुद्धि, बुरी कामनाएँ और छल-कपट कब छोड़ेगा? तू भारी अज्ञानके वश होकर वासनाओंरूपी विषको अमृत मान रहा है। तू अपनी विषयोंकी प्रीतिको कब छोड़ेगा?'

मैं पापकर्मोंके कारण माता-पिताद्वारा ऐसे ही त्याग दिया गया जैसे कुटिल कीड़ा अर्थात् सर्पिणी अपने शरीरसे जने हुए बच्चेको त्याग देती है। मै स्वयं ही नीच और पापी हूँ। वासनामें सना हुआ हूँ। पशु-पक्षियोंसे भी गिरा हुआ हूँ। मैं क्या करूँ?'

भगवान्‌की कृपासे उन्हें ज्ञान हुआ। अन्तरके नेत्र खुल गये। उन्हें अपने वासनामय जीवनके प्रति पछतावा हुआ। प्रायश्चित्त-रूपमें उन्होंने ज्ञानप्राप्तिका प्रयत्न किया। वर्षों अध्ययन करते रहे। काव्यरचनामें सब कुछ लगा दिया। भगवद्भक्ति और शुभ चिन्तन-द्वारा उनका पुराना जीवन बिल्कुल बदल गया। उनके समस्त पहले किये हुए दोष धुल गये। वे परम भक्त कविशिरोमणि तुलसीदास-महाराज बन गये। घर-घर उनके 'रामचरितमानस'-तथा

'विनयपत्रिका' का प्रचार है। हिंदू-संस्कृतिके वे अनन्य पुजारी हैं। उन्होंने अपने जीवनको नये सिरेसे प्रारम्भ किया था।

तुलसी केवल पछताते ही नहीं रहे थे। अपने पिछले पापों, गलतियों और कष्टोको भुलाकर कविके रूपमें उन्होंने नयी जिंदगी शुरू की थी। अपने पूर्वजीवनके दुःखोंसे वे परीशान रहे थे। उनका मन परीशानीसे भरा रहता था। अपने मनकी उछल-कूद और संघर्षको स्पष्ट करते हुए उन्होंने स्वयं लिखा है—

मोहि मूढ मन बहुत बिगोयो।
याके लिए सुनहु करुनामय
मैं जग जनमि-जनमि दुख रोयो॥ १ ॥
सीतल मधुर पियूष सहज सुख
निकटहि रहत दूरि जनु खोयो।
बहु भाँतिन स्रम करत मोहबस
वृथहि मंदमति बारि बिलोयो॥ २ ॥
करम-कीच जिय जानि, सानि चित,
चाहत कुटिल मलहि मल धोयो।
तृषावंत सुरसरि बिहाय सठ
फिरि-फिरि बिकल अकास निचोयो॥ ३ ॥
तुलसिदास प्रभु ! कृपा करहु अब,
मैं निज दोष कछु नहिं गोयो।
डासत ही गइ बीति निसा सब,
कबहुँ न नाथ ! नींद भरि सोयो॥ ४ ॥

'इस मूर्ख मनने मुझको खूब ही छकाया है। मेरी परीशानियोंका

अन्त न था। हे करुणामय! सुनिये, इसीके कारण मैं बारंबार जगत्‌में जनम-जनमकर दुःख रोता फिरा।

'मैंने शीतल और मधुर अमृतरूप सहजसुख ब्रह्मानन्दको, जो अत्यन्त निकट ही रहता है, अज्ञान और मूर्खतावश यों भुला दिया, मानो वह बहुत दूर हो। मैंने मोहवश अनेक प्रकारसे परिश्रम कर व्यर्थ ही पानीको बिलोया। कामवासना, मोह, विषयरूपी जलको मथकर उसमेंसे परमानन्दरूपी घी निकालना चाहा।

'मैं जानता था कि ये सब दुष्कर्म, पापवासनाएँ कीचड़ हैं और इसमें पड़नेसे मेरा सर्वनाश हो जायगा, फिर भी चित्तको उसीमें सानकर विषय-वासनाओंकी प्यास बुझानेके लिये कुटिल मलसे मलको धोना चाहा था। मुझे विषयोंकी प्यास लग रही थी। पर मै ऐसा दुष्ट था कि श्रीगङ्गाजीको छोड़कर बार-बार व्याकुल हो आकाशको निचोड़ता फिरा। दुःखरूपी विषयोंमें व्यर्थ ही भटकता रहा हूँ।

'हे नाथ! मैंने अपना एक भी दोष आपसे नहीं छिपाया है। अतः इस तुलसीदासपर कृपा कीजिये। मुझे बिछौना बिछाते-बिछाते ही सारी रात बीत गयी, पर हे नाथ! कभी नींदभर नहीं सोया। (सुख-प्राप्तिके उपाय करते-करते ही जीवन बीत गया, आपको प्राप्त कर पूर्णकाम हो बोधरूप सुखकी नींदमें कभी नहीं सो पाया। अब तो कृपा कीजिये।)'

ऐसे दुःखोंको तुलसीदासजीने अपने भक्ति-भाव, भक्ति-काव्य और सत्-चिन्तनसे दूर किया था। उन्होंने ऐसा काव्य रचा जिसमें अवगाहन कर आज भी असंख्य व्यक्ति शान्ति और संतोष पाते हैं।

आप भी अपने पुराने पापोंपर मत पछताइये। उन्नतिके लिये देर क्या ? कभी भी कायर वीर बन सकता है। कपूत सपूतमें बदल सकता है। पापी भी पुण्यात्मा हो सकता है; विषयी भी विरक्त बन सकता है। क्रूर भी दयालु-स्वभाव उत्पन्न कर सकता है। पतित भी धर्मात्मा और साधु बन सकता है। हर बिगड़ी हुई बातको पुण्य और सत्-चिन्तनद्वारा सुधारा जा सकता है। जीवनमें एक लहर-सी आती है। सन्मति और सद्बुद्धि आते ही नयी जिंदगी सर्वथा नयी दिशामें बहने लगती है।

एक बारकी बात है।

महाराज परीक्षित् शिकार खेलते-खेलते निर्जन वनमें निकल गये। आसपास कोई न था। चारों ओर वन-ही-वन था। उनके साथवाले पीछे रह गये थे। अब वे निपट अकेले रह गये।

अचानक उन्होंने देखा कि एक काला पुरुष मूसल हाथमें लिये एक गाय और एक लँगडे बैलको खदेड़ रहा है। महाराजने आवाज लगायी, 'कौन है तू जो इस गाय और लँगड़े बैलको यों परीशान कर रहा है ?'

उत्तर मिला, 'मै कलियुग हूँ। मेरे भयसे पृथ्वी गाय और धर्म बैलका रूप धारण करके भाग रहे हैं।'

महाराजने क्रोधित होकर तलवार निकाल ली और कलियुगको मारनेके लिये दौड़े। निर्बलकी रक्षा उनका धर्म था। महाराजके शौर्य और सत्साहसको देखकर कलियुग बहुत डर गया। पुण्यात्माके सामने पापात्मा भला कबतक ठहर सकता है ? वह काला पुरुष भयभीत होकर महाराजके चरणोंपर गिर पड़ा। बहुत

माफी माँगी। महाराजने उसे शरणागत जानकर छोड़ दिया। वे समझे कि इसे सुधरनेका औसर देना चाहिये।

वह बोला—'मुझे कहीं रहने दीजिये। बिल्कुल मत मारिये। मुझे एक मौका और दीजिये।'

'अच्छा, तुम्हें चौदह स्थानोंमें रहने दिया जायगा। तुम व्यभिचार, शराब, मांसभक्षण, चुगली, विश्वासघात, क्रोध, वासना, दुर्बुद्धि, छल-कपट, अज्ञान, विषयोंमें प्रीति, स्वार्थ, स्वर्ण और वेश्याके यहाँ रह सकते हो। ये सब स्थान घृणित माने जायँगे; क्योंकि इनमें तुम्हारा निवास रहेगा।'

'अच्छा, मैं इन्हीं घृणित स्थानोंमें रहूँगा। आपने मुझे इन स्थानोपर रहनेको अभय कर दिया है। इसके लिये मैं आपका कृतज्ञ हूँ। मैं जीवित तो बचा। यह आपकी कृपाका फल है कि मुझे निवासस्थान भी दे दिये हैं।'

कलियुगके रहनेके स्थानोंमें एक स्वर्ण अर्थात् सोना भी था।

महाराजके सिरपर सोनेका मुकुट था। कलियुगको क्या सूझी! उसने स्वयं महाराजपर ही अपना मायाजाल चलानेकी युक्ति सोची। कलिने महाराजके सोनेके मुकुटपर ही अपना आसन जमाया। महाराज उधरसे लौटे, तो भूख-प्याससे व्याकुल हो एक ध्यानावस्थित ऋषिके आश्रममें पहुँचे और ऋषिको पुकारने लगे।

कुछ उत्तर न मिला। उधर कलियुगने अपना मायाजाल फैलाना प्रारम्भ किया। कलियुगप्रेरित दुर्बुद्धिने महाराजको ग्रस लिया। वे ऋषिके गलेमें एक मरा हुआ दुर्गन्धिपूर्ण सर्प डालकर वहाँसे चले गये। जब उस ऋषिके पुत्रको पिताकी मानहानिका यह दुःखद समाचार

विदित हुआ, तो उसने शाप दिया कि ध्यानावस्थित मेरे पिताके गलेमें मृत सर्प डालकर तिरस्कार करनेकी चेष्टा करनेवाला मदान्ध राजा आजसे सातवें दिन तक्षक सर्पके काटनेसे मर जायगा।

महाराज परीक्षित्को जब यह शाप मालूम हुआ तो उन्हें अपनी भूलपर बड़ा पश्चात्ताप और दुःख हुआ। पर भूल और गलती तो हो चुकी थी। अब पछतानेसे तो कुछ भी हाथ आनेवाला न था।

उन्होंने पिछली भूल और पापको भुलाकर पवित्र जीवन व्यतीत करनेका सत्-चिन्तन किया। जीवन-क्रम बदल गया। ईश्वरचिन्तन और श्रीमद्भागवतका सप्ताह भर पाठ सुना। मनमें पवित्र भाव रक्खे और वैराग्य-भावना दृढ़ की। सात दिन कितना छोटा-सा समय होता है। किंतु इन सात दिनोंके पुण्यसे ही सातवें दिन तक्षक सर्पके काटे जानेपर वे स्वर्ग गये।

पवित्र जीवन कभी भी प्रारम्भ किया जा सकता है। निरन्तर अपने-आपको कोसते या पश्चात्ताप करते रहनेसे कोई लाभ नहीं।

अज्ञानवश प्रायः गलतियाँ हर एकसे हो जाती हैं; लेकिन उनसे भविष्यमें बचनेका सत्-प्रयत्न होना चाहिये। यदि हम केवल अपने आपको कोसते रहें, तो हमारे गुप्त मनमें हीनत्वकी ग्रन्थि बन जाती है। इससे मन सदैव गिरा-गिरा और निराश-सा रहता है। स्वास्थ्य गिर जाता है और भूख मारी जाती है। अतः पिछले दुष्कर्मोंको भूलकर नये शुभ कार्य करना पश्चात्ताप करनेका उपयोगी उपाय है। अपने विगत पापोंका विस्मरण कीजिये। आगेकी

बची हुई जिंदगीको ही प्यार कीजिये। पुरानी भूलोंकी वजहसे इस सुरदुर्लभ जीवनसे घृणा मत कीजिये।

अपनी तुलना इतने बड़े व्यक्तियोंसे मत कीजिये, जिसमें आप बहुत छोटे जँचें और आपके मनमें हीनताके विचार आयें। हजारों ऐसे व्यक्ति हैं जो मनमें गुपचुप पीड़ा उत्पन्न करके अपने प्रति असंतोषकी कमजोर भावनाएँ रखते है। आप वास्तवमें आत्मा हैं। महान् आत्मा हैं। हमें अपने आपको परम पवित्र आत्मा ही मानना चाहिये। अहंकार करना बुरा है, पर अपने प्रति दुर्व्यवहार करना या आत्महत्याकी बात सोचना एक भारी पाप है। अपने गुणोंको मालूम कीजिये और दृढ़तासे उनका विकास कीजिये।

सैकड़ों मनुष्योने अपने पापों और गलतियोंको सदाके लिये तिलाञ्जलि देकर नये सिरेसे पवित्र और उपयोगी जीवन प्रारम्भ किया है। आप भी नयी जिंदगी शुरू करें।

जीवनसे घृणा नहीं, प्यार कीजिये। अपनी शक्तियोके प्रति आत्म-विश्वास धारण करने और उन्नति तथा आत्म-विकासके नये क्षेत्र खोलनेसे मनुष्य पुरानेसे नया हो जाता है। वैज्ञानिक, साहित्यिक, सामाजिक, सार्वजनिक और राजनीतिक किसी भी नये क्षेत्रमें कार्य कीजिये, ऊँचे उठिये। बस, अशुभ विचार और दीन-हीन मानसिक भावना छोड़ दीजिये।

तुम महान् पिताकी संतान हो, तुम्हारे शरीर, मन और आत्मामें दिव्य शक्तियोंका निवास है, तुम महान् ही जन्मे हो, महान् रहो।

शान्ताकारं भुजगशयनम् !

भगवान् शान्तिस्वरूप हैं। वे भुजंग अर्थात् सर्पकी विकट शय्यापर शयन करते हैं। सर्प कितना भयानक ! कितना विषैला ! कितना चञ्चल ! सर्पकी कितनी तीव्र गति है। जितना तेज विष, उतनी ही तेज गति। यदि कोई सर्पको देख लेता है तो अनायास ही भयसे काँप उठता है। डरके कारण उसके समीप नहीं जा पाता।

उधर भगवान् हैं, जो भुजंगकी भयानक शय्यापर सदा ही शयन करते हैं। किंतु भगवान्‌के इस शयनमें हम सबके लिये गहन संदेश भरा पड़ा है।

वह क्या है ? सर्पकी शय्यापर शान्ति, यह क्योंकर सम्भव है ?

जिस व्यक्तिके नीचे सदा खतरा-ही-खतरा हो क्या वह कभी शान्त और अविचलित रह सकता है ? पर भगवान्‌ने उसी खतरेकी शय्या बनायी है। अपने नीचे असंख्य सांसारिक खतरोंकी परवा न करते हुए भगवान् सदा-सर्वदा लीलारत (स्वकर्मपरायण) रहते हैं।

'शान्ताकारं भुजगशयनम्' यह प्रतीक जीवनका एक मर्म प्रकट करता है। आप उसका सही और गुप्त तात्पर्य समझिये और जीवनमें उतारिये।

भगवान् इस सूत्रके द्वारा यह स्पष्ट करते हैं कि मनुष्यका यह सांसारिक जीवन शत-शत समस्याओं, जिम्मेदारियों, कर्तव्यों, कष्टों, मुसीबतों, परीशानियो और खतरोंसे घिरा हुआ भयंकर काले विषधर सर्पकी तरह है। यहाँ पग-पगपर अड़चनें और परीशानियाँ हैं। आपका एक कष्ट बीतता नहीं कि दूसरा मुँह बाये आपके समक्ष आ खड़ा होता है। आप सोचते हैं कि इस कष्टके बाद हमारे समस्त कष्ट दूर हो जायँगे, किंतु उसके समाप्त होते ही नयी परीशानियाँ आपको क्षत-विक्षत कर देती हैं।

यह सांसारिक जीवन मुसीबतोंसे भरा है—कभी निकट सम्बन्धियोंकी जिम्मेदारियाँ हैं तो कभी आर्थिक, व्यवसाय-सम्बन्धी, जीविका-उपार्जन-सम्बन्धी परीशानियाँ !

पर भगवान्की तरह सच्चा कर्मयोगी वही है, जो सर्पपर भी शासन करता है—परीशानियोपर काबू पाता है और एक-एक करके उन्हें दूर करता है।

परीशानियोंको देखकर सहम जाने या डर जानेवाला व्यक्ति भगवान्को बिल्कुल नापसंद है। भगवान्ने कहा है—

न विषादे मनः कार्यं विषादो दोषवत्तरः।
विषादो हन्ति पुरुषं बालं क्रुद्ध इवोरगः॥
(वा० किष्किन्धाकाण्ड ६४। ९)

(संसारके पुरुषो ! परीशानियोसे) मनको दुखी नहीं रखना चाहिये। दुःखित होना मनुष्यका बड़ा भारी दोष है। (इस कमजोरीको परास्त करो।) दुःख पुरुषका पुरुषत्व नष्ट कर देता

है, जैसे क्रुद्ध सर्प बालकका नाश कर देता है। अतः मुसीबतोंको दबाकर कष्टोंकी परवा न करते हुए समझदार आदमीको सदा-सर्वदा प्रसन्न रहना चाहिये।

ऐसा कौन है, जिसके जीवनमें केवल हास हो, रुदनकी कटुता हो ही नहीं; आनन्द-ही-आनन्द हो और दुःखकी काली छाया हो ही नहीं; प्रकाश-ही-प्रकाश हो और अन्धकारकी कालिमा हो ही नहीं; मिठास ही हो, परीशानीकी कड़ुवाहट हो ही नहीं!

संसारमें कोई भी ऐसा नहीं, जिसके जीवनमें मुसीबतें न आयी हों। सभी महान् व्यक्तियोंको कठोर संघर्षोंमेंसे होकर गुजरना पड़ा है। कष्टोंकी अग्नि-परीक्षामें तपकर ही वे कुन्दन बने थे।

आप कहते हैं कि हमारे शत्रु बहुत हैं, वे हमारा अहित करनेपर तुले हुए हैं।

भगवान् कहते हैं—

विश्वा उत त्वया वयं धारा उदन्या इव। अति गाहेमहि द्विषः॥ (ऋग्वेद २। ७। ३)

अर्थात् माना कि आपके मार्गमें परीशान करनेवाले शत्रु बहुत हैं; पर भगवान्‌की सहायता और विश्वासद्वारा आप इन्हें वैसे ही लाँघ सकेंगे, जैसे (नौकाद्वारा) जलकी नदियोंको लोग पार कर जाते हैं।

भगवान्‌की कृपापर विश्वास कीजिये, आप सारे विघ्नोंको लाँघ जायँगे भगवत्कृपाके बलसे। भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।

(गीता १८। ५८)

'अर्जुन! मुझपर निर्भर करनेपर तुम मेरी कृपासे सारे कठिनाइयोंके किलोंको अनायास लाँघ जाओगे।'

लोग छोटी-छोटी बातोंसे साहस खो देते है, आत्महत्याएँ कर बैठते हैं, मामूली-सी असफलतासे निराश हो जाते हैं। यह मनुष्यके पौरुषका अपमान है। परीशानियाँ क्षणिक होती है और समयपर स्वयं दूर होने लगती है। यदि हम धैर्यपूर्वक अपने कर्तव्यपर ईमानदारीसे डटे रहें, तो ये परीशानियाँ समयके साथ स्वयं नष्ट हो जाती है। आत्महत्या महापाप है, दुर्लभ मानव-जीवनका अपमान है—

आयुर्न सुलभं लब्ध्वा नावकर्षेद् विशाम्पते।
उत्कर्षार्थं प्रयतेत नरः पुण्येन कर्मणा॥

अर्थात् दुर्लभ आयुको पाकर मनुष्यको कभी अधोगतिके कार्य (जैसे निराश होना, आत्महत्या, पर-अहित, पाप-कर्म, शोकातुरता, बेरोजगारीसे उद्विग्नता, रोगसे आतुरता) नहीं करने चाहिये। धैर्य धारणकर मनुष्यको सदा ही पुण्य-कर्मोंसे अपनी उन्नतिके लिये प्रयत्न करना चाहिये।

मानवसे दानव नहीं, देवता बनिये। अपने देवत्वके शुभ कर्मोंद्वारा ही परीशानियोंको दूर कीजिये। जो दृढ़निश्चयी होते हैं, वे कठिन-से-कठिन परीक्षामें भी पूर्ण सफल हो जाते हैं। वीरताका गुण हमारी सबसे बड़ी सम्पत्ति है।

जब परीशानी आती है, तब प्रायः हम घबरा उठते हैं। घबराहटसे मन अशान्त हो उठता है। हमारी समस्त शक्तियाँ

इधर-उधर बिखर जाती है । हमारी गुप्त आध्यात्मिक शक्तियोंका क्षय होने लगता है । अतः संकट आनेपर अपने मनकी घबराहटको दूर रखिये । बिल्कुल शान्त हो जाइये । शान्त होनेसे मनका संतुलन ठीक हो जायगा, आप परीशानीको दूर कर सकेंगे ।

शान्त कौन है ?

यः समः सर्वभूतेषु भावि काङ्क्षति नोज्झति ।
जित्वेन्द्रियाणि यत्नेन स शान्त इति कथ्यते ॥
अमृतस्पन्दसुभगा यस्य सर्वजनं प्रति ।
दृष्टिः प्रसरति प्रीता स शान्त इति कथ्यते ॥
योऽन्तःशीतलतां यातो यो भावेषु न मज्जति ।
व्यवहारी न सम्मूढः स शान्त इति कथ्यते ॥
अप्यापत्सु दुरन्तासु कल्पान्तेषु महत्स्वपि ।
तुच्छेऽहं न मनो यस्य स शान्त इति कथ्यते ॥
आकाशसदृशी यस्य पुंसः संव्यवहारिणः ।
कलङ्कमेति न मतिः स शान्त इति कथ्यते ॥

अर्थात् जिसने साधनाके द्वारा अपनी इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त कर ली है, जो समस्त प्राणियो और वस्तुओंके प्रति समदृष्टि रखता है, भविष्यके लिये प्रारब्धके अनुसार प्राप्त होनेवाले सुख-दुःखको न चाहता है और न छोड़ता है, उसे शान्त कहते हैं ।

जिसकी दृष्टि समस्त प्राणियोंके प्रति प्रेमपूर्ण और अमृतधाराके समान सुखद होती है, उसको शान्त कहते हैं ।

जिसका अन्तस्तल सदाके लिये शीतल हो चुका है, जो क्षणिक भावनाओंमें डूबने नहीं लगता, व्यवहार करते हुए भी उसमें आसक्त नहीं हो जाता, उसे शान्त कहते हैं।

चिरकालतक रहनेवाली आपत्तियोंमें और महाप्रलय उपस्थित होनेपर भी जिसके मनमें घबराहट नहीं होती, त्रिविध शरीरके प्रति जिसकी अहंता-ममता नहीं होती, उसे शान्त कहते हैं।

जिसकी मनोवृत्तियाँ व्यवहार करते समय भी राग-द्वेष आदि दोषोसे दूषित नहीं होतीं, आकाशके समान निर्लेप और स्थिर रहती हैं, उसे शान्त कहते हैं।

आप भी संकटके समय इसी प्रकार शान्त और अविचलित रहें। शान्ति धारण करनेसे आप अपने कष्टोंपर उपयोगी विचार कर सकेंगे। स्वयं कष्टोंसे बच निकलनेकी कोई युक्ति आपको सूझ जायगी। अशान्तको ही चिन्ता सताया करती है। घबराहटमें ही चिन्ता परीशान करती है। चिन्तासे मनुष्य कल्पनाके भूत पैदा कर लेता है। चिन्ताकी स्थितिमें जीवन-क्षितिजपर काले-काले घनघोर बादल छा जाते हैं, जिससे चारों ओर अँधेरा-ही-अँधेरा नजर आता है।

शान्ति और धैर्यकी रोशनी आते ही मानसिक आकाशके किसी मेघमुक्त कोनेसे आशाकी छोटी-सी रजत-रश्मि उदित होती है और मनरूपी संसारमें व्याप्त अन्धकार तथा नैराश्यके कटु वातावरण-को चीरती हुई धीरे-धीरे मानसतलपर उतरती है। उसके शुभ्र उल्लसित प्रकाशसे मनुष्यका खोया हुआ आत्मविश्वास और पौरुष जाग उठता है। जब मनुष्य साहसका संबल लेकर नये उत्साह

और आत्मविश्वाससे प्रयत्न करता है, हारी हुई बाजीको फिर सँभाल लेता है, कुश्तीकी आखिरी पकड़ ले लेता है और लीजिये, उसे एक छोटी-सी सफलता मिल भी गयी ।

अब वह उससे बड़ी सफलताको प्राप्त करनेके लिये शान्त-चित्तसे आगे बढ़ रहा है । अपने हथियार सँभाल रहा है । कपड़ोंसे धूल झाड़ रहा है । उसका मुख-मण्डल स्वावलम्बन-शक्ति और सामर्थ्यसे दीप्तिमान् हो उठा है । वह निरन्तर संघर्षके लिये आगे बढ़ रहा है । अब उसके पग-पगमें विश्वास है । उसके शब्द-शब्दसे उत्साह प्रकट हो रहा है । वह विजयके महापथपर बढ़ रहा है ।

आप 'शान्ताकारं भुजगशयनम्' के मर्मको ग्रहण करें । संकटमें पूर्ण शान्त रहा करें । यह जीवन एक विषधर भुजंगके समान परीशानियोंसे भरा हुआ है; पर सच्चा पुरुषार्थी वही है, जो शान्तमनसे कर्मलीन रहता है, कदापि हार नहीं मानता ।

शूरबाहुषु लोकोऽयं लम्बते ।

याद रखिये, वीर-भुजाओंपर ही इस संसारकी सफलता आश्रित है ।

नास्ति चात्मसमं बलम् ।

याद रखिये, अपनेपर भरोसे-जैसी दूसरी कोई शक्ति नहीं है । उसे निरन्तर विकसित कीजिये ।



अपनी शक्तियोंके उपयोगसे शक्तिशाली बनिये

आपने कुछ साधु देखे होंगे जिन्हें नकली बाबा कहते हैं, जो अपना एक हाथ ऊँचा किये रहते हैं। ऊँचा किये रहनेसे धीरे-धीरे उसकी कार्यशक्ति क्षीण हो जाती है। वह हाथ मुर्झाकर निर्जीव-सा हो जाता है। उससे काम न चलनेसे वह सदाके लिये बेकार हो सकता है।

आपने दीन-हीन-गरीब स्त्रियोंको कार्य करते देखा होगा। वस्त्र, अच्छा भोजन, पारिवारिक सुख, आराम इत्यादि उनके पास कुछ भी स्वास्थ्यवर्द्धक वस्तुएँ नहीं होतीं, पाँवमें वे जूतातक नहीं पहिनतीं, दूधकी एक बूँद उनके गलेमें नहीं उतरती। मिठाई, फल या ताकतकी दवाइयोंसे वे कोई प्रयोजन नहीं रखतीं, फिर भी वे निरन्तर अपनी शक्तियाँ बनाये रखती हैं। दीर्घ जीवन प्राप्त करती हैं। अमीरोंकी कन्याएँ एक-दो शिशुओंको जन्म देकर प्रायः मृत्युकी ग्रास बनती हैं, पर वे अनेक शिशुओंको जन्म देकर भी स्फूर्तिमती और सशक्त बनी रहती हैं। इसका एकमात्र कारण है कि वे सदा-सर्वदा निरन्तर अपनी शक्तियोंका उपयोग करती हैं।

शक्तियोंका समुचित उपयोग न करनेसे धीरे-धीरे वे अपना नैसर्गिक कार्य छोड़कर क्षीण हो उठती हैं। मनोविज्ञानका शाश्वत

नियम यह है कि अपनी समस्त इन्द्रियोंका अधिकाधिक उपयोग कीजिये। उन्हें दैनिक कार्यमें अधिक-से-अधिक लगाये रहिये तो वे स्वयं अपना कार्य सौ वर्षोंतक करती रहेंगी। निरन्तर समुन्नत और दृढ़तर होती रहेंगी। मशीनके पुर्जे काममें न आनेसे जंग खाते हैं और जल्दी खराब होकर बेकार हो जाते हैं, किंतु यदि वे ही लगातार सक्रिय रक्खे जायँ और उनसे पूरा काम लिया जाय, तो वे घिस-घिसकर बहुत दिनोंतक चलेंगे। खूब काम करेंगे। स्वस्थ रहेंगे। कहा भी है कि—

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः। (ऋग्वेद १।६३।५)

अर्थात् जीवनमें क्रिया, स्फूर्ति, उत्साह और हमारा साहस उत्तरोत्तर बढ़ता रहे। हम आलसी, प्रमादी, भीरु और संदेही न बनें; क्योंकि ये सब दुर्गुण मनुष्यकी उन्नतिमें बाधक हैं।

यदि हम अपने शरीरसे काम न लें, केवल खायें-पियें और प्रमादमें निष्क्रिय पड़े रहें, तो निश्चय ही कुछ दिनोंमें हम इतने कमजोर और रोगी हो जायँगे कि जो कुछ भोजन हम करेंगे, उसका पचाना भी कठिन हो जायगा। हमारा यह फूल-सा मधुर जीवन भार-स्वरूप हो जायगा। फिर हम मौतकी कुटिल इच्छा करने लगेंगे। हमें एक क्षण भी काटना कठिन हो जायगा।

यह सच है कि दुनियामें आलस्य नामक रोगसे शारीरिक और मानसिक कार्य सुचारुरूपसे न करनेके कारण ही बड़े अमीर, पूँजीपति, सेठ, साहूकार, अफसर, राजा, महाराजा पीड़ित हैं।

आरा चलानेवाले, खेतमें सारे दिन हल चलानेवाले किसान या मजदूरको सक्रिय जीवनसे जो आनन्द काम करनेमें मिलता है, रात्रिको खूब गहरी निद्रामें जो आनन्द आता है, वह सेठ-साहूकारोंको स्वप्नमें भी दुर्लभ होता है। यह प्रत्यक्ष देखा गया है। अतः ऋग्वेदमें कहा गया है—

शग्धि पूर्धि प्र यंसि च शिशीहि प्रास्युदरम्।
(१।४२९)

समर्थ बनो! अपने कार्यको पूरा करो और खरे बनकर पेट भरो। बलवान्, क्रियाशील, कर्तव्यपरायण, ईमानदार और मेहनती व्यक्तियोंको ही जीवनका सर्वोच्च आनन्द प्राप्त होता है।

शक्तियोंका उपयोग न करनेसे वे क्षीण हो जाती हैं और प्रतिदिन उपयोग करनेसे वे बढ़ती हैं। यदि स्वाध्याय या मनन करनेका अभ्यास करने लगें तो हमारा मन बलवान् बनेगा। यदि हम उच्च चिन्तन करेंगे तो आत्मा मजबूत बनेगी। यदि हम शरीरका व्यायाम करेंगे तो शरीर पुष्ट और बलिष्ठ होगा।

विशेषकर सांसारिक व्यवहारोंमें आसक्त मनुष्योंको ऐसे विषयों-पर विचार करना अति आवश्यक है, जिससे उनके मनकी वे शक्तियाँ काममें आवें जो साधारण व्यवहारमें समुन्नत या प्रयुक्त नहीं होतीं। विचारार्थ वे शिल्प-विद्या, पदार्थ-विद्या, साहित्य-अध्ययन, साहित्य-निर्माण, प्रकृति वा निरीक्षण-सम्बन्धी किसी उपयोगी विषयको लें, जिससे उनके व्यक्तित्वके ये छिपे हुए भाग भी विकसित हों; वे

गम्भीर विषयोंकी ओर भी बढ़ें। नये सिरेसे विचार करना सीखें और संसारके ज्ञानमें कुछ अभिवृद्धि कर जायें। साथ ही उनके हृदयमें प्रसन्नता भी आये।

सबसे अधिक युवकोंको किसी ऐसे साधनका अभ्यास करना चाहिये जिससे वे वृद्धावस्थातक प्रेरणा प्राप्त कर सकें। साहित्य, धर्म, अध्यात्म, काव्य इत्यादि वे साधन हैं, जो चिर कालतक नयी प्रेरणा देते रहते है। भक्ति-भाव, पूजन, धर्मका ज्ञान वे साधन हैं, जो जीवनमें अन्तिम क्षणोंतक प्रेरणा देते हैं—

अयुतोऽहमयुतो म आत्मा। (अथर्ववेद १९। ५१। १)

अर्थात् धर्मात्मामें दस हजार मनुष्योंके बराबर बल होता है। जिसका मार्ग सच्चाईका है, उसे कोई नहीं हरा सकता।

हम एक ऐसे महान् तत्त्व—परमात्माके अंश हैं, जिसकी क्रियामें कोई भूल नहीं होती है और जो अपनी महान् शक्तिसे विश्वका यथोचित क्रममें नियत करके संसार-चक्रोंको उनके उद्देश्यकी ओर ले जाता है।

यह मानना कि हम दीन-हीन और कमजोर हैं, अभागे हैं—मूर्खता है। हमारी ये बुरी कल्पनाएँ कि हमारा जीवन सबसे पृथक् और निराश्रित है और हम परिस्थितियोंके दास हैं, केवल हमारा भ्रम है और दुःखदायी है। जबतक हम संसारको और स्वयंको इस दूषित दृष्टिसे देखेंगे और ऐसा ही विश्वास रक्खेंगे, तबतक हमारी उन्नति नहीं हो सकती और हमें शान्ति भी नहीं मिल सकती। जब हमें यह विश्वास हो जायगा कि सारा विश्व, हम और विश्वकर्ता

एक हैं, अभेद हैं, तब शक्ति और शान्तिका घर हमें अपने अंदर ही प्राप्त हो जायगा। कहा भी है—

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति

(ऋग्वेद १ । १६४ । ४६)

अर्थात् एक ही परमात्माको ज्ञानी लोग अनेक नामोंसे पुकारते हैं। अनेक नामोंके देवता ईश्वरके ही विभिन्न नाम हैं।

पुरुष एवेदꣳ सर्वम् (ऋग्वेद १० । ९० । २)

अर्थात् सम्पूर्ण विश्व परमात्माका ही रूप है। संसारको परमात्माका प्रत्यक्ष स्वरूप मानकर इसकी सेवा करनी चाहिये।

प्रजापतिः…बहुधा विजायते। (अथर्ववेद १० । ८ । १३)

अर्थात् इस विश्वमें परमात्मा ही अनेक रूपोंसे जन्म ले रहा है। संसारके सब प्राणी और स्वयं आप भी परमात्माकी ही प्रतिमूर्तियाँ हैं।

उपर्युक्त विचारधाराको अपनाकर हम शक्ति और शान्तिरूप हो जाते है। उस आत्माका आश्रय ग्रहण करनेपर ही हमें पूर्ण शान्तिकी अनुभूति होती है। ज्यों-ज्यों हमारी बुद्धि इस आत्म-तत्त्वकी ओर प्रेरित होती जाती है, त्यों-त्यों सुख और शक्तिकी भावनाएँ भी बढ़ती जाती है। शान्तिकी जड़ आत्मज्ञान है और 'सोऽहम्, अहं ब्रह्म, एकोऽहं बहु स्याम' आदि भावनाएँ शान्ति प्राप्त करनेमें सहायक हो सकती हैं।

इस भावनाको मनमें धारण करनेसे मनुष्यको ऐसी शक्ति प्राप्त होती है जिससे वह अन्य प्राणियोंको सहायता दे सकता है, जो निर्बल हैं और जिन्हे अपनी शक्तियोंका ज्ञान नहीं है।



हमने मौतको टाला है !

(कुछ वृद्धोंके मौतसे युद्ध करनेके प्रत्यक्ष अनुभव)

'क्या मृत्युसे बचा जा सकता है ?'

'मृत्युसे कोई नहीं बचा है। मौत अवश्यम्भावी है। जहाँ जन्म है, वहाँ एक-न-एक दिन मौत अवश्य आनी है। लेकिन मौतसे आखिरी दमतक युद्ध किया जा सकता है। उसे बहुत दिनों-तक टाला जा सकता है। जिंदगीको मौतके क्रूर पंजोंसे सुरक्षित रक्खा जा सकता है। मृत्युसे कुश्ती लड़कर उसे दूर रक्खा जा सकता है।'

'मनुष्यकी सबसे बड़ी योग्यता किसे कहें ? हमारी विद्या, बुद्धि, ज्ञान-विज्ञान, दर्शन-शास्त्रका निचोड़ क्या है ?'

वेदोंमें इसका उत्तर यों दिया गया है—

वर्च आ धेहि मे तन्वां३ सह ओजो वयो बलम्।
इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याय प्रति गृह्णामि शतशारदाय॥
(अथर्ववेद १९ । ३७ । २)

अर्थात् मेरे शरीरमें तेज-शक्ति, ओज, पराक्रम, पौरुष, बल सदा बने रहें। मैं सौ वर्षोंतक अपनी समस्त इन्द्रियोंसे कर्म करता रहूँ। मेरा वीर्य स्थायी रहे।

मनुष्यकी योग्यता इस बातमें है कि वह सौ वर्षोंतक जीवित रहे। पूर्ण स्वस्थ रहे, उसकी इन्द्रिय, शक्ति, पुरुषार्थ, वीर्य बने रहें। दीर्घ आयु, ओज, शक्ति, बल बने रहें। वह अन्ततक इन तत्त्वों-की प्राप्तिके लिये प्रयत्न करता रहे।

मनुष्यकी चतुराई और बुद्धिमत्ता इस बातमें है कि वह सावधानीसे अन्त समयतक अपनी इन्द्रिय-शक्ति, उत्साहमय वीर्य-शक्ति, कर्म-शक्तिको सुस्थिर तथा वर्द्धनशील रक्खे और दीर्घायु बने। इनमेंसे कोई भी शक्ति कम हो जाय, तो उसकी योग्यता कम माननी चाहिये और अधिक होनेसे बढ़ी हुई योग्यता मानी जानी चाहिये।

ऐसे योग्य वृद्धोंके कुछ उदाहरण और मृत्युसे युद्ध करनेके उपाय सुनिये--

सौ वर्षकी पंजाबी घुमक्कड़ महिला

मेरे घरके ठीक सामने एक सौ वर्षीय पजाबी सहगल महिला किरायेके मकानमें अपने बड़े पुत्रके परिवारके साथ रहती हैं। इनका जीवन मै प्रतिदिन देखता हूँ—बड़े तड़के उठना, स्नान-पूजनसे-निवृत्त हो हाथमें आटेकी एक कटोरी लिये निकल -पड़ना, तीन-चार घंटे घूमना-फिरना, भोजनके समय वापस आना, खाना खाकर विश्राम, फिर दो घंटे शयन और चार बजे फिर टहलने निकल जाना—यह है उनका प्रोग्राम। आँखोंसे कम दीखता है, पाँव पूरी तरह काम नहीं करते, मुँहमें दाँत नहीं हैं, दूध, दही, फलपर निर्वाह करती हैं; पर टहलनेका बेहद शौक है।

एक दिन बातचीत हुई——

'माँजी, इन बुढ़ापेके दिनोंमें कुछ विश्राम किया कीजिये। थक जायँगी, टहलते हुए रास्ता भूल जायँगी या किसी साइकल, टाँगें, मोटरसे टकरा जायँगी।'

'बूढ़ा, बैठा तो बस आखिरी बार बैठा। वह एक बार बैठकर फिर उठता नहीं। जबतक यह शरीरको मशीन चलती है, इसे चलाती

हूँ। जबरदस्ती चलाती हूँ। जिस दिन न चरूँ-फिरूँ, उसी दिन आलस्य दबाने लगेगा। शरीरको जंग खा जायगा। आज हमारे हजारों वृद्ध भाई-बहिन शरीररूपी मशीनमें जंग खाकर अकाल मृत्युको प्राप्त हो रहे हैं। अच्छे लोहेपर भी जंग लगने लगे, तो समयसे बहुत पहले उसे नष्ट कर डालेगा, पर वही लोहा अगर सदा लगातार काममें आता रहे, तो बहुत लम्बा चलता है। घिस-घिसकर लोहेका समाप्त होना जंग लगकर खत्म होनेसे अच्छा है। मैं जंग लगाकर नहीं, घिस-घिसकर जीवनको आखिरी दमतक जीना चाहती हूँ। जीवनमें यह याद रखना—इन्सान घिसता कम है, जंग ज्यादा पकड़ता है। मैंने मृत्युको टाला है। बेचारी दूर खड़ी गिट रही है। मैं भी आखिरी दमतक लड़ रही हूँ।'

एक दिन उनका मनीआर्डर आया, तो वे स्वयं डाकियेके साथ अपने हस्ताक्षरोंको प्रमाणित कराने आयीं; रुपये गिने और पर्समें रक्खे।

मैंने पूछा—'आप रुपये तो काफी सँभालकर रखती हैं ?'

वे बोलीं—'दीर्घजीवन करनेमें धन भी जरूरी है। जबतक जीवन है, इस समाजमें हमें तबतक अर्थकी आवश्यकता पड़ेगी।'

धनेन बलवाँल्लोको धनाद्भवति पण्डितः।

'मैं तो यही मानती हूँ कि धनके द्वारा मनुष्य बलवान् भी बनता है, पण्डित भी गिना जाता है, जीवन भी धारण करता है। अर्थहीन व्यक्तिके समस्त शुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं।'

मैं इस महिलाको देखता हूँ तो मुझे अथर्ववेदके शब्द अनायास ही याद हो आते हैं, जिनमें हमें जीवनकी रक्षा और वृद्धिके लिये निरन्तर प्रयत्न करनेको कहा गया है।

कितनी प्रेरणा है इन शब्दोंमें, देखिये—

अनुहूतः पुनरेहि विद्वानुदयनं पथः।
आरोहणमाक्रमणं जीवतो जीवतोऽयनम् ॥
(५।३०।७)

अर्थात् हे मनुष्यो! (अहितकर चिन्तन और निराशाद्वारा) तुम मौतकी ओर क्यों जा रहे हो?

मैं तुम्हें जीवन, उल्लास, यौवन, उत्साहकी ओर बुला रहा हूँ। वापिस लौटो।

जीवनके सच्चे मार्गको पहचाननेवाले बनो।

अरे भाई! उन्नति और जीवन-वृद्धिको जाननेवाले बनो। यह जीवन मधुर है। यह आनन्दसे परिपूर्ण है। ईश्वरने जब तुम्हें जीवन दिया है, सुखसे भोगो। आनन्दपूर्वक जीओ।

रूसमें १५८ वर्षके एक किसान हुए हैं उनका नाम मखमूद इवाजोव था उन्होंने सोवियत संघकी कृषि-प्रदर्शनीमें भाग लिया था। उनके स्वास्थ्य और सक्रियताकी बड़ी प्रशंसा की गयी थी। उनके कार्यकी प्रशंसामें सन् ५७ में सोवियत सरकारने उन्हें 'आनर आफ रेड बैनर आफ लेबर' (श्रमके लाल झंडेका पदक) से विभूषित किया था। तनिक सोचिये, मनुष्यका जीवन कितना लम्बा है। कितने दिनोंतक जिया जा सकता है? कितना कार्य किया जा सकता है?

यही नहीं, रूसमें ओसेतियावासी एक महिला तेपो आब्जीवने तो वास्तवमें दीर्घ आयुका विशेष रिकार्ड ही कायम कर दिया है। सन् ५८ में एक सौ अस्सी वर्षकी आयुमें उसका देहान्त हुआ था।

वह कहा करती थी कि केवल मनको शान्त और संतुलित रखकर जीनेसे इस शरीररूपी मशीनको कोई हानि नहीं पहुँचती है।

इन दोनो वृद्धोंको देखकर हम अथर्ववेदकी इस उक्तिकी सत्यता देखते है—

अयं लोकः प्रियतमो देवानामपराजितः।
यस्मै त्वमिह मृत्यवे दिष्टः पुरुष जज्ञिषे।
स च त्वाऽनु ह्वयामसि मा पुरा जरसो मृथाः॥
(५। ३०। १७)

यह देवताओका प्यारा लोक है। यहाँ पराजयका क्या काम ? तुम समझते हो, तुम मौतके प्रति संकल्पे जा चुके हो। (यही बात नहीं है) हम उसे सुनाते हुए तुम्हें वापिस बुलाते हैं। बुढ़ापेसे पहले मरनेका कभी नाम भी मत लो !

आ त एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे।
ज्योक् च सूर्यं दृशे॥ (ऋ० १०। ५७। ४)

उठो, होश सँभालो। फिर सोच-विचारको, कर्म-कौशलको, जीवनको चेतो। अभी तुम्हें चिरकालतक सूर्य भगवान्के दर्शन करते रहना है।

वास्तवमें ईश्वरद्वारा निर्मित इस मानव-शरीरमें अद्भुत क्षमता और शक्तियाँ छिपी हुई हैं। हमें बहुत दिन जीना है तथा समाज और मानवताकी सेवा करनी है। उच्चतम उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये हमें अपने जीवनके सम्पूर्ण कालको लगाना चाहिये।

हम सौ वर्षतक जियें

मनुष्यकी सबसे महत्त्वपूर्ण अभिलाषा है—भूतलपर अधिक-से-अधिक जीवित रहना, जीवनका आनन्द लूटना। इस सम्बन्धमें

हमें उन दीर्घजीवियोंके अनुभवोंसे लाभ उठाना चाहिये, जो अधिक जीवित रह सके हैं। हमें चाहिये कि ऐसे व्यक्तियोंके सम्पर्कमें आयें, उनसे उनके रहस्य पूछें तथा उन्हें दैनिक जीवनमें प्रयोग करें।

कुछ दीर्घजीवी महानुभावोंने अपने दीर्घजीवनके रहस्यको अनुभवोंके आधारपर प्रकाशित किया है। इनके नुस्खोंको देखनेसे प्रतीत होता है कि दीर्घजीवनके लिये प्रत्येकके उपाय पृथक्-पृथक् हैं; किंतु उन सबमें थोड़ा-बहुत व्यायाम, नियमितता, निश्चिन्तता एवं तीव्र मनोविकारोसे दूर रहना निर्देशित है। दीर्घजीवनका रहस्य शक्तिवर्धक खुराक, कान्तिवर्धक कल्प या शानदार रहन-सहनमें इतना अधिक छिपा है, जितना मनमें। चिरस्थायी जीवन स्थित रखनेकी वास्तविक औषधि यदि कहीं उपलब्ध हो सकती तो वह मनमें ही मिल सकती है।

उज्ज्वल, उल्लसित, आनन्ददायक, आशापूर्ण, उत्साहवर्धक युवावस्थाके मनोहर एवं सर्वाङ्गसुन्दर चित्र अपनी अन्तर्दृष्टिके सामने चित्रित करने तथा जवानीके निर्दोष सुख, स्वप्न, उदात्त, सात्त्विक आशा, प्रेममयी कल्पना, उन्नत परिपुष्ट ध्येय, सुख-शान्तिमय भविष्यपर विचार-दृष्टि रखनेसे निम्न महानुभावोंने अत्यन्त लाभ उठाया है। इन अनुभवोंसे लाभ उठाकर अन्य पाठक भी उन्हींकी भाँति सर्वाङ्गसुन्दर दीर्घ जीवनका आनन्द लूट सकते हैं—

वैंजिमन, आयु ११४ वर्ष

कम खाओ, अधिक बचाओ और चूस-चूसकर पेय पदार्थों, जैसे—दूध, गन्नेका रस, टमाटरका रस इत्यादिको पियो, सवारीपर कम बैठो और पैरोंसे खूब काम लो। गाली मत दो, जिद्दी,

संतप्त, उद्दण्ड तथा तामसी विचारोंसे बचो और खर्राटोंवाली गहरी नींद लो, पेटके साथ निर्दयता न करो और शाकाहारी बने रहो—इन सब तत्त्वोंद्वारा तुम मृत्युको बहुत दूर धकेल सकते हो ।

१५१ वर्षका एक चीनी

चीनके पेकिंग शहरमें एक वृद्ध, जिसकी आयु १५१ के लगभग है, कहता है—'मैंने अपने जीवनमें तीन बातोंका विशेष ध्यान रक्खा है । श्वास पूरा नाभितक लिया, शीघ्रतासे अधूरा श्वास कभी नहीं लिया और अपने मेरुदण्ड (रीढ़की हड्डी) को सदैव सीधा रक्खा; कभी झुककर नहीं बैठा, अपने दिमागको गरम नहीं होने दिया अर्थात् कभी क्रोधकी या चिन्ताकी अग्निमें दग्ध नहीं हुआ । वास्तवमें उपर्युक्त तीनों नियम योगविद्यासम्बन्धी आयुवृद्धिकर्ता हैं ।

पूरा श्वास लेनेसे कुम्भक हो जाता है, मेरुदण्डको सीधा रखनेसे उसके भीतरके एक तरल पदार्थके भीतर जो सुषुम्णा नाड़ी रहती है, वह निर्बल नहीं हो पाती । अतएव मस्तिष्क परिपुष्ट रहता है एवं आयुवृद्धि होती है । क्रोध करनेसे श्वासकी गति तीव्र हो जाती है और मानसिक क्षति होती है ।

डा० मेंचनी कौफ, बलगेरिया

दही-मटठेका प्रयोग अत्यन्त लाभदायक है, क्योंकि ये अँतड़ियोंमें पहुँचकर उनको शुद्ध करते हैं, तरावट पहुँचाते हैं और अग्नि मन्द नहीं होने देते । बलगेरियामें दीर्घजीवियोंकी संख्या अधिक है तथा उनके जीवन और आहारका अध्ययन करके डाक्टर साहब इस परिणामपर पहुँचे ।

डाक्टर डेन

उत्तेजक मनोविकारोंसे दूर रहो। शोक, संताप, निराशा, पश्चात्ताप तथा अशान्ति उत्पन्न करनेवाले विचारोंसे मन विक्षुब्ध रहता है और आयु क्षीण होती है। उससे मृत्युकी काली परछाईं पड़ने लगती है तथा शरीरमें भाँति-भाँतिके घातक विष उत्पन्न होकर जीवनकी समस्त मधुरता भक्षण कर लेते हैं। आयुवृद्धिके लिये चित्त शान्त रखिये तथा घृणा, कामुकता, क्रोध इत्यादि तीव्र उत्तेजनाओंसे अपनी आन्तरिक शान्तिकी रक्षा कीजिये।

डा० बरनर मैकफेडन, अमरीका

अपने दाँतोसे अपनी कब्र मत खोदिये। कम भोजनसे इतनी मौतें नहीं होतीं जितनी अधिक खा जानेसे होती हैं। जीभपर अधिकार रक्खो और केवल स्वादके लिये ही पेटमें चीजें मत ठूँसो। शुद्ध तथा सात्त्विक आहारद्वारा शरीरकी जीवनी शक्ति बढ़ती है।

अत्यधिक खानेसे मनुष्यकी आयु क्षीण होती है।

डाक्टर शाहू, नागपुर

पपीता खाओ, इससे कब्ज दूर होगा, कब्ज ही मृत्युका दूत है, इसको पास मत फटकने दो। अधिक जल पीने, टहलने, फल खानेसे कब्ज दूर होता है और गरम मसाले, मिर्च, चाय, तम्बाकू तथा शराबसे दूर रहना चाहिये—इनसे कब्ज उत्पन्न होता है। अधिक दिन भूखे रहना भी ठीक नहीं। इससे अँतड़ियाँ सूखती हैं, पिण्ड खजूर एक ऐसा फल है जो कब्जको जड़मूलसे नष्ट करता है।

लगमाराण कोकर्ण, बेलगाँव आयु ८० वर्ष

खेतोंकी शुद्ध वायुमें निवास करो, चूस-चूसकर दुग्ध-पान करो और ताजी शाक-भाजीका सेवन करना न भूलो। भोजन करते समय जल यथाशक्ति कम पीयो या सम्भव हो तो बिल्कुल न पियो। ठण्डे जलसे स्नान करो। दाँतोंको शुद्ध रक्खो। रात्रिमें जल्दी सोओ। किंतु प्रातःकाल शीघ्र शय्या-त्याग करो।

एक ईरानी, उम्र १२६ वर्ष

'खूब घूमिये, खूब दूध पीजिये तथा खूब प्रसन्न रहिये। बेफिक्री तथा अलमस्ती दीर्घ-जीवनकी कुंजियाँ हैं। मनुष्यको मारनेवाली चिन्ता-जैसी पिसाचिनीके अतिरिक्त अन्य तो साधारण भ्रान्तियाँ हैं। अतः हमें अपने विचार जीवनके सुखमय पहलूपर ही केन्द्रित करने चाहिये। तुम वासनाओंके गुलाम नहीं हो, चिन्ताएँ तुम्हें विवश नहीं कर सकतीं। पाप एवं अज्ञानमें इतनी शक्ति नहीं कि वे तुम्हारे ऊपर शासन कर सकें। श्रम ही पूजा है।'

सरदार फीरोज दस्तूर

नियमित रूपसे आहार करो। बड़े तड़के उठनेकी आदत डालो और तुम्हारे मनमें पूजाभावका जो पौधा है, उसे सींचते रहो। दुःखोंको हँसते-हँसते सहन करो। खूब घूमो।

जाहिदपाल, आयु ११५ वर्ष

'मैंने अपनी आयुके ४० वर्ष केवल खजूर और पानीपर ही विताये थे। उनका विश्वास है कि भोजन सादा और सात्त्विक तो

रहे ही; किंतु साथ ही वह नियमित भी हो। गरिष्ठ पदार्थोंसे यथाशक्ति बचा जाय और पेटको एक मिठाईवालेकी दूकान बनानेसे रोका जाय।

सलाक ममोसा, आयु १०५ वर्ष

आपका निर्देश है—'मैंने जीवनभर सब्जीके अतिरिक्त और कुछ नहीं खाया है। अपने लिये मैं स्वयं सब्जी उखाड़ता हूँ और स्वयं पकाता हूँ! कभी-कभी परिवर्तनके लिये कच्ची सब्जी भी खाता हूँ।

अति सर्वत्र वर्जयेत्

सर दीनशा वाचा, जिनकी अवस्था लगभग ९० वर्षकी है। लिखते हैं—'मैं पाँच बजे प्रातःकाल उठता हूँ तथा रात्रिमें निश्चित समयपर शय्याग्रहण करता हूँ। इस कार्यक्रममें मैं परिवर्तन नहीं होने देता। मैं 'अति सर्वत्र वर्जयेत्'का अनुयायी हूँ। घूमनेसे मेरे स्वास्थ्यको स्थायी बनानेमें बड़ी सहायता प्राप्त हुई है। मैं खेलना भी पसंद करता हूँ और खेलते समय अपनी आयुके विषयमें सब कुछ विस्मृत कर देता हूँ।'

कामोंमें दिलचस्पी लीजिये

मिसेज केथराइन प्रकेट (अवस्था ११२ वर्ष) अपनी दीर्घायुका रहस्य प्रकट करते हुए कहती हैं—'मैं अपनी रहन-सहन सदासे सादी रखती चली आयी हूँ, किंतु इससे भी अधिक मेरी लंबी आयुका कारण और कामोंमें दिलचस्पी लेना, कोई अन्य मजेदार काम जी-बहलावके लिये रखना है। मै पूरे दिन एक तरहका ही कार्य नहीं करती।'

शरीरके साथ अन्याय न करें

सर तेमुलजी, जिनकी अवस्था ८७ वर्षकी है, अपना रहस्य इन शब्दोंमें प्रकट करते हैं—'मैं खान-पानके विषयमें सदा संयमी रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि मुझे कितना खाना चाहिये तथा क्या खाना चाहिये, कब खाना चाहिये और कैसे खाना चाहिये। मैं नियमितरूपसे व्यायाम करता हूँ। इस उम्रमें भी मैं खूब घूमता तथा दण्ड लगाता हूँ। ७५ वर्षकी आयुतक दवाकी एक बूँदकी भी मुझे आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई। मै यह नहीं भूलता कि शरीरके साथ ज्यादती करनेसे उसका पाप मुझे भुगतना पड़ेगा—देरसे या जल्दी।'

खूब भ्रमण कीजिये

प्रोफेसर कर्वे, आयु ८९ वर्ष, पूनानिवासी कहते हैं—दीर्घ-जीवनके निमित्त पैदल खूब भ्रमण करो। घूमना ही जीवन है। टहलना, सरपट-चौकड़ी भरते-भरते भागना, हिरनोकी तरह छलाँग मारते हुए एक खेतसे दूसरे खेतमें भागना और फिर भागना, भागते ही जाना—यही मेरा रहस्य है।

शरीरमें जंग मत लगने दीजिये

सर नसरवानजी, अवस्था ७३ वर्ष—मैं बड़े तड़के उठता हूँ और तभीसे अथक परिश्रम आरम्भ कर देता हूँ। शारीरिक व्यायाम मनुष्यको युवा बनाये रखनेमें बड़ी सहायता पहुँचाते है। मैंने जवानीमें जो व्यायाम किये हैं, उनका मजा इस वृद्धावस्थामें लूट रहा हूँ।

१०० वर्षतक जीनेका उपाय

विद्वान् जापानियोंने १०० वर्षतक जीनेका जो उपाय निश्चित किया है, उसके १० नियम निम्नलिखित हैं—

(१) खुली और हवादार जगहमें यथासम्भव अधिक समय व्यतीत करो।

(२) संध्याके अनन्तर शीघ्र ही शय्या ग्रहण करो और प्रातः जल्दी उठो।

(३) कम-से-कम छः घंटे और अधिक-से-अधिक ७॥ घंटे सोओ, रात्रिको कमरेमें रोशनी न हो, किंतु खिड़की खुली रहे।

(४) चाय और कहवा न पियो, मद्य और धूम्रपान बिल्कुल त्याग दो।

(५) दिनमें दो बार भोजन करो।

(६) ताजे पानीसे प्रतिदिन स्नान करो।

(७) मोटे वस्त्र पहनो।

(८) सप्ताहमें एक दिनकी छुट्टी अवश्य मनाओ, उस दिन कुछ भी न पढ़ो-लिखो।

(९) काम-क्रोधकी उत्तेजनासे सर्वदा बचो। मस्तिष्कका कार्य अधिक न करो।

(१०) विवाह करो; किंतु नियमोंका पालन आवश्यक है।



हृदयमें मधुर गान रखकर आनन्दित होइये

हमारे भक्त कवियोंने कभी कविता करनेका जान-बूझकर प्रयत्न नहीं किया। उनका प्रभुभक्तिविह्वल हृदय स्वयं ही संगीतके रूपमें फूट निकला। भक्तप्रवर सूरदास, भक्तशिरोमणि तुलसीदास, प्रभुप्रेममें पगी मीराँ, कबीर, नानक आदि भक्त कवियोंने सगीतमय जीवन व्यतीत किया। वे प्रभुभक्तिमें विह्वल होकर एकतारेपर कुछ-न-कुछ मधुर गीत गुनगुनाया करते थे। रैदास जूते बनानेका कार्य करते-करते गाते रहते, कबीर जुलाहेका करघा चलाते-चलाते भजन गाते रहते, तुलसी और सूर प्रतिदिन एक भव्य भजनसे ही प्रारम्भ करते थे। इन्हें कभी यह ज्ञान नहीं था कि वे सर्वगुणसम्पन्न उत्तम काव्य-रचना कर रहे है। यह भजन, उनका यह संगीत, ये मधुर गान 'स्वान्तःसुखाय' ही थे। अपने मन, हृदय, शरीर और आत्माको पूर्ण प्रसन्न और तृप्त रखनेके लिये ही इनका निर्माण हुआ था। मीराँ तो जो गाती थी, वही एक मधुर गान बनकर निकलता था। इन मधुर गीतोंने उसके हृदयको सरस और ताजा बना रक्खा था। उनकी तन्मयतामें वह संसारके कष्टोंको भुला सकी थी।

सच मानिये, जीवन बिल्कुल ही दूसरे प्रकारका हो सकता है, यदि आप उसे मनमें या हृदयमें एक मधुर गान रखकर आरम्भ करें। जीवनकी अनेक विषमताएँ बहुत कुछ कम हो सकती हैं या बिल्कुल ही हट सकती हैं, यदि आप गाकर जीवन प्रारम्भ करें। हृदयको किसी मधुर भजन, प्रेरणाप्रद कविता, प्रिय गानसे सरस और तरोताजा रखिये।

हृदयमें किसी गीतका प्रेरक, उत्साहप्रद, संतोषदायक, उन्नतिशील भाव रखना इस बातका प्रमाण है कि आप जीवनके प्रत्येक दिनकी समस्याएँ विरोध अथवा कठिनाइयाँ ईश्वरमें विश्वास रखकर दूर कर रहे हैं। आपके मनमें किसी प्रकारका भय नहीं है। यह गीत हमें जीवनरूपी सागरमें दूरतक बड़ी बहादुरीसे आगे बढ़ाता है और मनमें नये जोशको भर देता है। गानेसे ,कठोरताएँ दूर होकर सरसतामें बदल जाती हैं। बुरे-से-बुरा थका या उबा देनेवाला काम आसान लगता है। खेद है कि हम उस शक्ति और योग्यताको नहीं जानते; जो हमें प्रेरक गीतसे मिल सकती है। एक बार एक प्रेरक गाना गाइये, फिर आप पायेंगे कि आपके हृदयकी कली जैसे पूरी तरह खिल गयी है, रग-रेशे ताजगीसे भर गये हैं, मन और शरीरमें नयी ताकत आ गयी है, तब आप अपना कठोर कार्य भी बखूबी पूरा कर पा रहे हैं।

हमें अपनी आजकी समस्याओंका सफलतासे मुकाबला करनेके लिये एक प्रेरक गीतकी आवश्यकता है; क्योंकि हमारी आजकी समस्याएँ विषम हैं। इन कठिनाइयोंको हम संगीतके द्वारा हल करेंगे। हमें वे कठिनाइयाँ कदापि नहीं आयेंगी, जो हमारे पूर्वजोंको आती थीं। आर्थिक समस्याएँ, पारिवारिक विषमताएँ, मकान, बीमारी, बच्चोंके विवाहकी शत-शत समस्याएँ हमें विचलित नहीं करेंगी, यदि हमें आजके लिये कोई प्रेरक शान्ति-स्फूर्ति-दायक गीत मिल जाय।

एमर्सन कहा करते थे, 'हमारा यह वर्तमान समय, अन्य समयकी तरह बहुत ही उपयुक्त और कार्य करनेके लिये सर्वोत्तम

समय है। जरूरत यह है कि हम यह जान लें कि उसका उचित उपयोग हम किस प्रकार कर सकते हैं।'

यह कथन आज भी उतना ही सही है जितना यह तब था, जब इसे एमर्सनने कहा था। उन्नतिकी असंख्य सम्भावनाएँ हमारे चारों ओर बिखरी पड़ी हैं। इन सम्भावनाओंके विषयमें सोचने, विचारने तथा उन्हें कार्यरूपमें परिणत करनेसे हमें नयी आशा मिलती है। यह कार्य प्रत्येक गीत बड़ी तेजीसे हमारे लिये करते हैं। प्रत्येक उत्तम कविता या गीतमें एक उत्तम भाव छिपा रहता है, जो हमारे शरीरमें फैलकर हमारी ताकतोंको दुगुना-चौगुना बढ़ा देता है।

मनमें पवित्र भजन या ईश्वरीय प्रेरणासे सना हुआ गान आपको ईश्वरीय शक्ति प्रदान करता है। हमारे विचार ईश्वरके अक्षय शक्तिभण्डारसे शक्ति खींचते हैं। ईश्वरकी शक्ति आपके चारों ओर वातावरणमें बिखरी पड़ी है। भजनकी विद्युत्-तरङ्गें उसे आसपाससे खींचती है। इन भजनोंमें जो ईश्वरीय शक्ति शब्द-शब्द और अक्षर-अक्षरमें छिपी पड़ी है, उसे अनुभव कीजिये। ये उन संतो तथा महात्माओंके उद्गार हैं, जिन्होने स्वयं अपने अंदर ईश्वरीय शक्तियोंको अनुभव किया था। ये भजन उन संतोंके प्रत्यक्ष जीवनके निचोड़ हैं, अनुभवकी किरणें हैं। इनसे ईश्वरीय शक्तिका माहात्म्य प्रकट हो रहा है।

प्रेरक गान चाहे आप उच्च स्वरसे करें अथवा शान्त मन-ही-मन गुनगुनायें, या किसी भक्त प्रेमीद्वारा सुनें—हर प्रकार उपयोगी

और कल्याणकारी है। इसे आन्तरिक आह्लाद, आन्तरिक आनन्दके गुणके रूपमें ग्रहण करना चाहिये और अनुभव करना चाहिये कि वही मधुर स्वर्ग-जैसा पवित्र संगीत हमारे जीवन-पुष्पद्वारा प्रकट हो रहा है। हमारे देशमें संत और भक्त कवियोंके संगीतमय भजनों और ईश्वरीय गीतोंका बृहत् भण्डार बिखरा पड़ा है। उनमेंसे स्वयं अपनी रुचि और आवश्यकतानुसार भजन चुन लेने चाहिये। तुलसीकी 'विनयपत्रिका', सूरका 'सूरसागर', मीराँकी 'पदावली', कबीरके 'पद'—ये सब पवित्र भावोंसे परिपूर्ण हैं।

प्रातः उठते ही बड़े प्रेमसे निम्न उत्तम भजनोंको गाना सुख, स्वास्थ्य और मङ्गलमय जीवन प्रदान करनेवाला है—

अब कै नाथ ! मोहि उधारि।
मगन हौं भव-अंबुनिधि में, कृपासिंधु मुरारि॥
नीर अति गंभीर माया, लोभ-लहरि तरंग।
लिएँ जात अगाध जल कौं गहे ग्राह अनंग॥
मीन इंद्रिय तनहि काटत, मोट अघ सिर भार।
पग न इत-उत धरन पावत, उरझि मोह-सिवार॥
क्रोध-दंभ-गुमान तृष्ना पवन अति झकझोर।
नाहिं चितवन देत सुत-तिय, नाम-नौका ओर॥
थक्यो बीच बिहाल बिहवल, सुनौ करुना-मूल !।
स्याम, भुज गहि काढ़ि लीजै सूर ब्रज कैं कूल॥

सूरदासजी बतलाते हैं कि 'यह संसार समुद्रकी तरह जंजाल-दुःखरूप है। माया इस संसारसागरका अगाध जल है, लोभरूपी लहरें हैं, कामवासनाका मगर है, इन्द्रियाँ ही मछली हैं और जीवके

सिरपर पापोंकी गठरी रखी हुई है । मोह ही इस समुद्रमें सेवार है । काम-क्रोधादिकी हवा झकझोर रही है । हरि-नामकी नौका ही पार लगा सकती है, पर स्त्री-पुत्रकी माया उधर देखने ही नहीं देती । भगवन् ! आप ही मेरा हाथ पकड़कर पार लगायेंगे । आप ही मेरे बल हैं । आपकी करुणा ही संसार-सागरसे मेरा उद्धार करनेवाली है ।'

एक और भजन इस प्रकार है—

प्रभु, मेरे गुन-अवगुन न विचारौ ।
कीजै लाज सरन आए की, रबि-सुत-त्रास निवारौ ॥

× × × ×

जो गिरिपति मसि बोरि उदधि मे लै सुरतरु बिधि हाथ ।
मम कृत दोष लिखै बसुधा भरि, तऊ नहीं मिति नाथ ॥
तुमहिं समान और नहिं दूजौ, काहि भजौं हौं दीन ।
कामी, कुटिल, कुचील, कुदरसन, अपराधी, मति-हीन ॥

× × × ×

तुम सरबज्ञ सबै बिधि समरथ, असरन-सरन मुरारि ।
मोह-समुद्र सूर बूडत है, लीजै भुजा पसारि ॥

(सूरदास)

अथवा यह गाइये—

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी ।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी ॥
नाथ तू अनाथको, अनाथ कौन मो सो ?
मो समान आरत नहिं, आरतिहर तो सो ॥
ब्रह्म तू, हौं जीव, तू है ठाकुर, हौं चेरो ।
तात-मातु, गुरु-सखा तू सब बिधि हितु मेरो ।

मोहिं तोहिं नाते अनेक, मानियै जो भावै।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु ! चरन-सरन पावै॥

(विनयपत्रिका)

कुछ आधुनिक कवियोके प्रेरक गीत लीजिये—

हे भगवान् ! महान् बनूँ मैं।
दुख आकर मुझसे टकरावें।
गिरकर चूर-चूर हो जावें॥
अविचल अटल रहूँ दृढ़ होकर—
प्रभु ऐसा चट्टान बनूँ मैं।
हे भगवान् ! महान् बनूँ मैं॥ १ ॥
उन्नत हो नभमें लहराऊँ।
मानवके जगमें फहराऊँ॥
शुचिता और सुमानवताका—
ऐसा अमिट निशान बनूँ मैं।
हे भगवान् ! महान् बनूँ मैं॥ २ ॥
जगमग ज्योति अखण्ड जला लूँ।
भूले पथके पथिक बुला लूँ॥
हो जाऊँ मग-दर्शक जगका—
ऋषियोंकी संतान बनूँ मैं।
हे भगवान् ! महान् बनूँ मैं॥ ३ ॥
मैं सत्य-सुधाका पान करूँ।
मैं प्रेमी बन सम्मान करूँ॥
मैं न्यायी न्याय-विधान करूँ।
(फिर) जीवनका अभिमान बनूँ मैं।
हे भगवान् ! महान् बनूँ मैं॥ ४ ॥

तेरी करुणाका ध्यान करूँ।
प्रतिक्षण तेरा आह्वान करूँ॥
हो जाऊँ तन्मय तुझमें तब—
तेरे करका वरदान बनूँ मैं।
हे भगवान्! महान् बनूँ मैं॥ ५॥

—पं० जनार्दन पाण्डेय

एक कविता जिससे आप सदा नयी शक्ति और प्रेरणा पा सकते हैं—

(१)

क्या हुआ नभमें घटाएँ घिर गईं तो,
क्या हुआ तममें दिशाएँ खो गईं तो,
छोड़ना मत आश मनकी तू अभी,
प्रातका जगमें उजेला छायगा ही!
भोरका तारा गगनमें आयगा ही!

(२)

क्या हुआ पतझार तेरे बागमें मुसका रहा तो,
क्या हुआ मझधारमें तूफान फिर इठला रहा तो,
छोड़ना पतवार मत माँझी अभी तू,
बागमें मधुमास फिरसे छायगा ही!
भोरका तारा गगनमें आयगा ही!

(३)

जिन्दगीमें फूल भी हैं, शूल भी हैं,
जिन्दगीमें हार भी हैं, जीत भी हैं,
फिर हृदयमें क्यों निराशा भर रहा तू!

शाप भी वरदान बनकर आयगा ही !
जिन्दगीका यह अँधेरा जायगा ही !

—श्रीउमाकान्त एस० चौधरी

इसी प्रकारके अनेक प्रेरक गीत, कविताएँ, भजन, वाणियाँ, दोहे इत्यादि आप अपने लिये छाँट सकते हैं। गुनगुनाकर नयी ताकत और नयी स्फूर्ति पा सकते हैं। इन गीतोंमें आपके जीवनको सरस और उत्साहप्रद बनानेकी बड़ी शक्ति है। यदि संगीतका अस्तित्व मिट जाय, तो दुनिया बड़ी नीरस, रूखी और कर्कश माळूम होने लगेगी। प्राणियोंके अदर जो उन्नतिशील चैतन्य-तत्त्व है, वह संगीतद्वारा गति प्राप्त करता है। उसे आगे बढ़ाता है। मनुष्यके अंदर जो नयी जागृति होती है, उसका आधार शक्तिशाली झंकृतियाँ ही है। भव्य संगीतकी कम्पनमय प्रेरणासे ही समस्त सृष्टिका काम चल रहा है।

एक विद्वान्‌के शब्दोंमें हम यह कह सकते हैं कि 'एक दिव्य संगीतसे दसों दिशाएँ झंकृत हो रही हैं। हर ओर स्वर-लहरी गूँज रही है। हृषीकेशका पाञ्चजन्य, शंकरका डमरू, भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर मुरली, सरस्वतीकी वीणाका सत्य, शिव और सुन्दर संगीत निनादित हो रहा है और उसपर विमुग्ध होकर विश्वकी जड-चैतन्य सत्ताका प्रत्येक परमाणु नृत्य कर रहा है।

आइये, इस अमृतमय संगीतको हम अपने प्राण और आत्मामें उतारें।



*

मनको सदा कल्याणकारी विषयोंमें लगाइये

हमारा मन जब एक विषयमें तृप्ति नहीं पाता, तब वह भागकर नये विषयको पकड़ता है। जब उसमें भी शान्ति नहीं मिलती, तब तीसरे विषयकी ओर दौड़ता है। इस प्रकार वह सदैव इधर-उधर भटकता, लुढ़कता और कूदता फिरता है, मानो उसकी कोई अमूल्य वस्तु खो गयी हो, जिसका पाना उसे आवश्यक है और जिसके बिना उसका कार्य नहीं चल सकता।

हमारे चञ्चल नेत्र इस संसारमें अनेक प्रकारके दृश्य देखते हैं, जिससे उनका प्रभाव मनपर पड़ता है। देखा गया है कि जीवनकी बहुत-सी घटनाओं, दृश्यों, परिस्थितियोंपर मन सुख मानता है। अतः इनपर वह देरतक टिका रहता है। बहुत-से ऐसे विषय हैं कि वह उनसे जल्दी ही पीछा छुड़ाना चाहता है।

अतः मनको किसी एक सुन्दर, उपयोगी, कल्याणकारी विषय-पर टिकाये रखना संयमकी अपेक्षा सुगम है। अभ्यासमें सिद्धि प्राप्त करनेके लिये जिज्ञासुको सर्वप्रथम इसी साधनाका आश्रय लेना चाहिये। भक्तोंको प्रायः इसके द्वारा अधिक सहायता मिलेगी।

यदि उन्नतिके इच्छुक महान् पुरुषोंके चरित्रों, इतिहास, पुराण, गीता, रामायण इत्यादि धर्म-ग्रन्थोंमेंसे किसी मनोहर लीलाको लेकर उसका साङ्गोपाङ्ग स्पष्ट चित्र अपने मानसिक जगत्में स्थिर करे, उसीमें देरतक रमण करे, वही मानसिक वातावरण बनाये रहे, तो उन्नति हो सकती है। धीरे-धीरे वे ही भाव जीवनमें स्पष्ट हो सकते हैं। इस रीतिसे धीरे-धीरे मन एक मार्गपर एकाग्र हो सकता है।

ज्यों-ज्यों वह मानसिक एकाग्रता, चरित्र और भाव-चित्रमें अपना प्रवेश पाता जायगा, त्यों-त्यों यह आदत मजबूत होती जायगी और मन सरलतापूर्वक एकाग्र होने लगेगा। जीवनकी किसी मनोहर सुन्दर घटनाको मानसिक जगत्‌में उपस्थित करनेसे चित्तका संयम जितना हो सकता है, उतना किसी पुस्तकको पढ़ने अथवा विषयको रटने या दुहरानेसे नहीं हो सकता।

जिन लोगोंने मनका साधन आरम्भ कर रक्खा है, उनकी प्रायः ये शिकायतें होती हैं कि संयमके साधनका यत्न करनेसे चित्तकी चञ्चलता और भी अधिक बढ़ जाती है! वे कहते हैं कि हम मनको एकाग्र करना चाहते हैं, परंतु वह नहीं होता। कुछ अंशोंमें यह शिकायत ठीक है, परंतु वास्तवमें देखा जाय तो उनका साधन ही गलत है, क्योंकि वे एक म्यानमें दो तलवारें रखनेका प्रयत्न करते हैं। एक विषयको पकड़े हुए हम दूसरे विषयको नहीं पकड़ सकते हैं। एक साथ ही हम दो नावोंमें नहीं बैठ सकते। प्रत्यक्ष हम यह बात देखते हैं कि जहाँ बहुत शोर हो रहा हो या परस्पर जहाँ तीन-चार मनुष्य एक साथ ही बोल उठें, उस समय हमें सबोंकी बात एक ही समयमें नहीं सुन पड़ती; क्योंकि हमारा मन सदा एक ही विषयको देखता, सुनता एवं विचार करता है। पुस्तकके दो पृष्ठोंको अथवा दो लकीरोंको हम एक साथ कभी नहीं पढ़ सकते।

अतः इससे यह सिद्ध है कि हमारा चित्त सदैव एक ही विषयको पकड़ता है, पर कठिनाई यह है कि वह अधिक कालतक उसपर स्थिर नहीं रहता। इसलिये जबतक हम एक मुख्य बातको

जो हमारे चित्तमें जमी हुई है, न छोड़ दें, तबतक चित्त दूसरे विषय-पर स्थिर नहीं हो सकता। जो विषय उपयोगी हैं, जिनसे वास्तवमें हमारा सच्चा लाभ हो सकता है, जो हम अध्ययन कर रहे हैं; उन्हीं-पर मनको बारंबार एकाग्र करना चाहिये। इस प्रकार एकाग्रताकी सिद्धि हो सकती है।

उदाहरणके लिये जब बालक रोता है, उस समय यदि हम उसे भय दिखायें और कहें कि 'चुप हो जा, नहीं तो पीटेंगे।' तो शायद ही वह चुप हो; परंतु इसकी अपेक्षा और भी अच्छा साधन उसको चुप करनेका यह है कि उसे कोई खिलौना दे दिया जाय, मिठाई दे दी जाय या अन्य पदार्थ, जो उसे पसंद हो, तो वह धमकाये जानेकी अपेक्षा शीघ्र ही चुप हो जायगा और प्रसन्न भी हो जायगा। यही हाल हमारे मनका भी है। इसके विषयमें श्रीकृष्ण-भगवान्‌ने जो कुछ कहा है, वह महत्त्वपूर्ण है—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥
(गीता ६। ३५)

उन सब साधकोंको जो मनका साधन कर रहे हैं, दृढ़ताके साथ उन संकल्पोंपर दृष्टि रखनी चाहिये, जो चित्तमें सदा प्रवेश करते रहते हैं। उनमेंसे केवल शुभ और उत्कृष्ट संकल्पोंको ही अपने इच्छानुसार संग्रह करते रहना चाहिये। अशुभ और हानिकर संकल्पोंके आवेशको रोकना चाहिये। यह तभी होगा, जब सदा शुभ संकल्पोंको ग्रहण करनेका ध्यान रहे। इससे अशुभ संकल्प

आप ही न फटकने पायेंगे। इसमें अभ्यास ही प्रमुख बात है। अभ्याससे हमारा मन बलवान् होगा। हमपर दूसरोंके बुरे विचारों तथा गालियोंका प्रभाव न पड़ेगा।

बहुधा लोग अशुभ विचारों तथा अप्रिय अवस्थाओंका ही चिन्तन करते रहते हैं और उनसे अपना पीछा छुड़ानेके लिये युद्ध करते रहते हैं। रोगी मनुष्य यदि रोगका ही चिन्तन सदैव करता रहेगा तो वह कदापि स्वस्थ नहीं हो सकता, चाहे कितनी ही ओषधियोंका सेवन करे। इसके विपरीत यदि मनुष्य दवा ही न ले और अपने ही संकल्पको बलवान् रखकर मनकी चञ्चलतापर संयम करके पूर्ण स्वस्थ तथा आनन्दमय अवस्थाका चित्र ही अपने मानसिक जगत्में उपस्थित करे और यह धारणा करे कि वह पूर्ण स्वस्थ है तो वह अवश्य स्वस्थ हो जाता है। सद्विचार ही वह बीज है, जो जीवनको स्वस्थ, सुन्दर और तृप्त बना सकता है।

अपने कष्टोंको कभी मत गिनिये। जबतक वे बिल्कुल आ ही न जायँ, तबतक निरन्तर उनकी भयावह कल्पनाएँ कर अपनी उत्कृष्ट सृजनात्मक शक्तिका क्षय मत कीजिये।

प्रिय व्यक्तियों, अपनी छोटी-बड़ी सफलताओं, अपनी समृद्धि और यश-प्रतिष्ठा इत्यादिकी मङ्गलकारी स्मृतियोंको ही मन-मन्दिरमें बसाइये। अपनी सफलताओंके विषयमें चिन्तन करने, उन्हींमें लगे रहने तथा उन्हीं दिशाओंमें विकास करनेसे नयी शक्तिका प्रादुर्भाव होता है। अपनी शक्तिकी बातें सोचनेसे शक्तियोंका विकास होता है।

बुराईके विचारोंसे मुक्त रहिये

विचार एक शक्ति है, जिससे मानवके इर्द-गिर्दका वातावरण निरन्तर विनिर्मित होता रहता है। जो व्यक्ति अच्छे विचारोंमें निमग्न रहते हैं, उनके इर्द-गिर्द अच्छाईका एक शुभ्र वातावरण निरन्तर चलता रहता है। इसके विपरीत क्रोध, लोभ, घृणा, द्वेष, ईर्ष्या, मत्सर इत्यादि दुर्भावनाओंका वातावरण ऐसा कष्टकर होता है कि मनुष्य उसमें सुख-शान्तिकी श्वास भी नहीं ले पाता। उसे अपना दम घुटता-सा प्रतीत होता है।

बुराई, गंदगी और अपकीर्तिका विचार तेजीसे फैलता है। प्रकृतिके जगत्में भी यदि कहीं बदबू हो तो यह चारों ओर वातावरणमें छा जाती है और सम्पूर्ण वातावरणको गंदा कर देती है। इसी प्रकार मानव-जगत्में ईर्ष्या, आलोचना तथा कटुताके दूषित विचार उसी प्रकारके दूषित वातावरणका निर्माण करते हैं।

स्मरण रखिये, अपकीर्तिके विचारोंमें मनुष्य अधिक दिलचस्पी लेते हैं। जिन व्यक्तियोंके हृदयमें आपके प्रति दूषित विचार हैं, वे उन्हे प्रदर्शित करनेके लिये अवसरकी ताकमें रहते हैं।

मनके दूषित विचार आप छिपा नहीं सकते, किसी-न-किसी रूपमें उन्हें आप व्यक्त कर देते हैं। अपने मनसे दूसरोंके प्रति जो विद्वेष-की भावनाएँ हैं, उन्हें निकाल डालिये; सबके लिये शुभ सोचिये; मनके गुप्त दुर्भाव दूसरोंके लिये नहीं, प्रत्युत स्वयं आपके मानसिक एवं नैतिक स्वास्थ्यके लिये भी अहितकर हैं। इनसे आन्तरिक जगत् विक्षुब्ध हो जाता है। यह मत समझिये कि आपका चारित्रिक

दोष घरतक ही सीमित रहेगा। गंदी आदत, अश्लील हाव-भाव, बोलने तथा वस्त्र पहिननेके ढंग जोर-जोरसे आपके चरित्रका विज्ञापन किया करते हैं। आप जो गालियाँ, अशिष्टताएँ, वासना-लोलुपता, गंदे गीतोंका उच्चारण करते हैं या आपके अनुचित, अनैतिक सम्बन्ध आपतक ही सीमित रहनेवाले नहीं हैं। अनुचित, अनैतिक वासना-मूलक सम्बन्धोंकी चर्चाएँ जनताके व्यक्ति बड़े स्वादके साथ करते हैं। चुपचाप आपकी कमजोरीका मजाक बनाकर हेय दृष्टिसे निहारते हैं। जो व्यक्ति क्षणिक आवेशमें आकर समाजमें अपनी स्थिति, प्रतिष्ठा या कुटुम्बसे निम्न वर्ग या स्थितिकी स्त्रीसे अनुचित प्रेम-सम्बन्ध कर लेते हैं, वे विलासी, पतित और संदिग्ध दृष्टिसे देखे जाते है। उनके विलासकी अश्लील वार्ताएँ बड़े वेगसे समाजमें फैलती है। उनका कुटुम्ब बदनाम होता है।

एक महापुरुपका कथन है कि 'पाप यदि निर्जन पर्वतकी कंदरामें छिपकर भी किया जाय, तब भी छिपा नहीं रहता। पापकी दूषित छाया लंबी होकर पड़ती है। वह उत्तरोत्तर बढ़ती चलती है। कोई यह समझे कि हमारे पाप-कर्म हमेशा छिपे रहेंगे; कोई इन्हें नहीं जान पायेगा, यह सम्भव नहीं है।'

आये दिन रिश्वत, कालाबाजार, घूस, इनाम या भ्रष्टाचारकी बातें चलती रहती हैं। प्रत्येक रिश्वत लेनेवाला या कालाबाजार करने-वाला अपने आपको सुरक्षित समझता है, पाप कर्मको छिपाता है। कत्ल, चोरी करने या जेब कतरनेवाला अपने कार्यको करते समय यह मान बैठता है कि कोई उसे पकड़ न सकेगा। लेकिन यह बात सत्य नहीं है। पाप मनुष्यके शिरपर चढ़कर बोलता है।

पापीकी आत्मा उसे गुप्त रूपसे धिक्कारती रहती है, किंतु वह दुष्ट आत्माकी अन्तर्ध्वनिको अवहेलना करता जाता है। एक समय ऐसा आता है जब या तो वह घोर दुष्ट बनकर आत्माको कुचल डालता है, या उसके द्वारा पराजित होकर शुभ मार्गपर आरूढ़ होता है। पाप बड़ा अस्वाभाविक है। हम उसमें जान-बूझकर लिप्त होना नहीं चाहते।

समाजमें पाप-पथपर चलनेवाले व्यक्तियोंको बड़ा सावधान रहना पड़ता है; क्योंकि उनकी कलई अन्तमें खुल ही जाती है। फिर क्या लाभ है ऐसे जीवनसे, जिसमें आपको पग-पगपर दूसरोंसे अपना व्यवहार छिपाना पड़े। क्या लाभ है उन बातोंसे जो बनावटी हों? बनावट आखिर कृत्रिम ही है। यह कृत्रिमता स्थायी तो है नहीं कि ठहर सके। अतएव अच्छा चरित्र बनाना और अच्छी आदतें डालना ही शान्ति और सुखका मार्ग है।

सच्चे सभ्य पुरुषका जीवन एक खुली पुस्तक है, जिसकी प्रत्येक पंक्ति पढ़ी और समझी जा सकती है। दुराव-छिपावकी दुष्प्रवृत्ति छोड़कर स्पष्ट रहना, निष्कपट व्यवहार, स्पष्ट कहना, तदनुकूल आचरण करना ही अपनाना चाहिये। स्पष्टवादीका प्रभाव देरसे समाजपर पड़ता है, किंतु उसका प्रभाव व्यापक एवं स्थायी होता है। यह वह रंग नहीं, जो पानीकी एक बूँदसे घुलकर नष्ट हो जाय, या मामूली-सी आलोचनासे विनष्ट हो जाय। संसारकी हजार आलोचनाएँ भी अपने सद्विचारोंपर सुदृढ़ रहनेवाले महापुरुषोंका कुछ नहीं बिगाड़ सकतीं। वे निष्कलंक देदीप्यमान रहते हैं।



अकारण निन्दा, आलोचना और घृणा मिलनेपर हम क्या करें ?

एक महिलाकी विचित्र समस्या है। लिखती हैं—

'मैं एक असहनीय मानसिक वेदनासे अंदर-ही-अंदर घुटी जा रही हूँ। यह दुःख मुझे गुप्त मनमें बार-बार कचोटता रहता है। लोग अकारण ही मेरी निन्दा, कटु आलोचना करते और मुझपर घृणा दिखला रहे हैं, जब कि मेरा कसूर कुछ भी नहीं है। इस नैतिक अन्यायके कारण मेरी आत्मा चीत्कार कर रही है।

'कुछ महीनोंसे मैं एक ऐसे घरेलू संकटमें फँस रही हूँ कि मेरे आत्मा और गुप्त मनमें प्रतिक्षण एक ज्वाला धधकती रहती है। मुझे डर लगता है कि इस असहनीय वेदनाको सहन करनेमें असमर्थ होकर कहीं मैं मानसिक संतुलन न खो बैठूँ, पागल न हो जाऊँ अथवा उत्तेजनामें आत्महनन-जैसा भयानक पाप न कर बैठूँ।'

उनकी समस्या

लेखिकाकी आयु ५३ वर्षके लगभग है। वृद्ध हो चुकी हैं। उन्होंने विस्तारसे अपनी आपबीती घटना इस प्रकार लिखी है——

लगभग एक वर्ष होने आया कि मेरे देवरके पुत्रकी बहू (जो मेरी बहिनकी पुत्री भी है और जिसे मैं प्राणोंसे अधिक प्यार करती रही हूँ) का तीन हजार रुपयेकी लागतका जेवर चोरी हो गया। वह रातको गाड़ीसे पटियालासे मेरठ गयी थी। यहाँसे जाते हुए उसने अपने ट्रंकको नहीं देखा था। दोपहरको १२ बजे ट्रंक लगाया था। तभी उसमें जेवरोंका बक्स भी छिपाकर रख दिया था। मेरठ पहुँचनेपर उसे पता लगा कि उसका जेवर गायब है। दुर्भाग्य-की ठोकर कहिये या बदकिस्मती कहिये, उस लड़कीने इस जेवरकी चोरीका इल्जाम मेरे ऊपर लगा दिया। यह बिल्कुल झूठा आरोप है। मेरे साथ अन्याय है। सरासर गलत अकारण आरोप है। मैं ५३-५४ वर्षकी वृद्धा स्त्री हूँ, जिंदगीके अनेक उतार-चढ़ाव देख चुकी हूँ। अच्छा-बुरा, उचित-अनुचित, पाप-पुण्य सबको समझती हूँ। मैं आरोप लगानेवाली उस कन्याको इतना प्यार करती हूँ जितना कोई अपने पेटकी पुत्रीको भी प्यार न करता होगा। मैंने अपने हृदयका पवित्रतम निःस्वार्थ स्नेह देकर इसे पाला-पोसा और बड़ा किया है········।

'दुर्भाग्यकी ठोकर है कि वही लड़की मुझे ही चोर समझकर अब घृणा, निन्दा और आलोचना करने लगी है। यही नहीं, हर किसीसे मेरी बदनामी करती है, मुझे चोर बताकर अपमानित

करती हैं। यह मेरी आत्मा स्वीकार नहीं करती। मैं अकारण अपमानित और तिरस्कृत जीवनसे मौत बेहतर समझती हूँ।.... उफ्! मुझे अकारण ही कैसा बुरा, सो भी इस बड़ी उम्रमें, लाञ्छन लगा है। आप बताइये, मैं क्या करूँ? कैसे उस लड़कीपर असलियत प्रकट करूँ?

'भगवान् तो अन्तर्यामी हैं, न्यायकारी हैं! फिर भी वे मेरा न्याय क्यों नहीं करते? मैंने तो अपने जीवनमें भूलकर भी कोई ऐसा घृणित काम नहीं किया, जिसमें पाप हो और किसीके मनको जरा-सा भी दुःख पहुँचे। मेरी आत्मा चीत्कार करती है और कहती है कि संसारका दुर्व्यवहार एवं कपट है। बताइये, संसार आदमीकी योग्यताओं और चरित्रका सही मूल्याङ्कन क्यों नहीं करता? मैं हर समय समाजकी इस निन्दावृत्तिकी अग्निमें धधकती रहती हूँ। जेवर तो जिसने चुराया है, वह वापस नहीं देगा। मै कैसे उन लोगोंका संदेह दूर करूँ? मेरी तो समझमें कुछ नहीं आता है। मन इस घृणा और आलोचनासे बड़ा ही अशान्त, निराश और दुखी रहता है। कृपया मेरी समस्याका हल बताइये।'

इस बहिनका पत्र बड़ा लंबा है, जिसमें बहुत-सी घरेलू बातें लिखी हुई है। मूल समस्या यही है कि अकारण निन्दा, व्यर्थकी झूठी आलोचना और घृणा मिलनेपर हम क्या करें? लोग हमें बुरा कहते हैं, हमारी टीका-टिप्पणी करते हैं, हममें झूठे दोष निकालते हैं तो हम क्या करें?

ऊपर जिन बहिनकी समस्या दी गयी है, उन्होंने वास्तवमें कुछ

भी नहीं किया। उन्हें अकारण ही निन्दा, घृणा और आलोचना मिल रही है। उनके पत्रमें सच्चे हृदयके उद्गार हैं। उनकी आत्मा सचाई स्पष्ट कर रही है।

हमारी आत्मा सत्-चित्-आनन्दस्वरूप है। वह सर्वथा निष्कलुष है, निर्विकार है। आत्माकी आवाज ईश्वरकी आवाज है। हर व्यक्तिमें यह सचाई प्रकट करती है, मनुष्यका मार्ग-दर्शन करती है।

हम जिसे पवित्रतम मानते हैं, हमारा जो उच्चतम लक्ष्य है, उसमें तनिक-सी रुकावट पड़ते ही, आत्माके रूपमें, ईश्वर बोलते हैं, मार्ग दिखाते है। यह आत्माद्वारा मार्गदर्शन ही धर्मकी प्रधान शक्ति है।

जब हमसे कोई पाप या अधार्मिक कार्य होता है, तब आत्मा हमें रोकती है और पवित्र मार्ग दिखाती है। भले कामोंको करनेमें भी एक दैवी आनन्द है। यह उस दृष्टिसे हमें मिलता है, जो हमें संतोष देता है। यह हमारी आत्माका ही आनन्द है, आत्मा ही स्थायी देव है।

जिसका जीवन निष्पाप है, जिसका जीवन पाप-मुक्त है, जो सत्कार्योंमें लगा हुआ है, दैवी कार्य कर रहा है, जिसकी वृत्तियाँ शुभ हैं, सात्त्विक हैं, उसपर झूठा कलंक लगनेसे मानसिक आघात लगना स्वाभाविक है।

सम्भव है लोग आपको भी बुरा-बुरा कहते हैं, व्यर्थ ही अकारण निन्दा या आलोचना करते हैं। भाई-बहिन, निकट सम्बन्धी, मुहल्लेवाले, समाज या जनता आपको नहीं समझते और

निन्दा ही करते हैं, कलङ्क लगाते हैं, खराबियोंका बखान करते नहीं थकते। यह झूठी निन्दा बुरी जरूर लगती है, किंतु आप क्या करें?

जो स्थिति आपकी है, वह संसारमें अनेक महापुरुषों, नेताओं, समाजसुधारकों और संत-महात्माओंकी रही है। समाजने उन्हें नहीं समझा, क्योंकि वह तो विचार एवं शिक्षा-प्रगतिमें पिछड़ा हुआ है। उन महापुरुषोंका घोर विरोध और कहीं-कहीं अपमान भी हुआ है। पर वे आत्मासे धैर्य और मनका संतुलन ही पाते रहे।

वे प्रतिकूलतामें भी स्थितप्रज्ञ रहे, संतुलित रहे। स्थितप्रज्ञके क्या लक्षण हैं? गीतामें कहा गया है कि जो व्यक्ति कामनाओं-का त्याग करता है, आत्मतुष्ट रहता है, दुःखोंकी प्राप्तिमें उद्वेगरहित रहता है, सुखोंकी प्राप्तिमें स्पृहारहित है, राग, भय, क्रोध जिसके पूरी तरह वशमें है, शुभ तथा अशुभ व्यवहारको पाकर न प्रसन्न होता है, न द्वेष करता है, उसीकी बुद्धि स्थिर है, वही सुखी रह सकता है।

इनपर भी निराधार कलङ्क लगा था

क्या आप जानते हैं कि माता सीतापर व्यर्थका कलङ्क लगा था, जिसके कारण उन्हें वनवासकी कठोर यातनाएँ सहनी पड़ी थीं। टीका-टिप्पणी करनेवाला एक मूर्ख धोबी था, निपट अशिक्षित आदमी था! वह अपनी बुद्धिको बड़ी प्रखर समझता था। उसने परम साध्वी सीतामें बहुत-सी कमजोरियाँ निकाल डाली थीं। उनकी आफतोंकी कमी नहीं थी। तनिक कल्पना कीजिये, एक

महारानीको गर्भावस्थामें वनवास, निवास और भोजनकी शत-शत असुविधाएँ—पर सीताजी तो दूधके समान पवित्र थीं। उनमें धैर्य था। उन्हें ज्ञात था कि एक दिन उनकी यशःकीर्ति सूर्यके समान चमकेगी। वे स्थिरबुद्धि रहीं। अन्तमें पुण्य-चरित्रकी ही विजय हुई। अन्तमें व्यर्थका कलङ्क लगानेवालोंको लज्जित होना पड़ा।

महात्मा ईसाका चरित्र, उद्देश्य तथा कार्य अत्यन्त उच्च थे। वे शुभ और सात्त्विक युग लाने और लोगोंमें सदाचारवृत्तिको फैलानेका पवित्र कार्य कर रहे थे। लोग अधिकतर पाशविक वृत्तियोंके होते हैं। अविकसित बुद्धिवाले आदमी उनके ऊँचे उद्देश्यों तथा अच्छे संस्कारोंको न समझें। विरोध होना शुरू हुआ। निर्णय भी उनके विरुद्ध ही हुआ। महात्मा ईसाको मृत्युदण्ड दिया गया। कीलें गाड़कर सूलीपर तिल-तिलकर मरनेको लटका दिया गया। घोर अत्याचार था…पर ईसाने क्या किया ?

वे बोले, 'हे ईश्वर! इन अज्ञानियोंको क्षमा करना। ये अविकसित हैं, अविवेकी हैं। इनकी बुद्धि ठीक कार्य नहीं कर रही है। ये अबोध नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।'

ईसाकी आत्मा साफ थी। इसलिये क्रोधके स्थानपर उन्होंने शत्रुओंको क्षमा ही करना उचित समझा। मरते हुए भी उनके मनमें गलती करनेवाले भ्रमित मूर्खोंके लिये दया और करुणाकी ही भावना थी। उन्होंने क्षमासे ही मनका संतुलन कायम रखा था।

स्वामी दयानन्द आर्यसमाजके प्रवर्तक, भारतके महान् नेता, सुधारकोंके सिरमौर थे। अपनी समझसे हिंदू जातिको व्यर्थके ढोंग

और अंधविश्वासोंसे मुक्त करनेमें उन्होने बड़ी सेवाएँ की थीं।

किंतु दुनिया मूर्खों, अशिक्षितों और बहुत-से बुरे विचारके लोगोंसे भरी हुई है। स्वामीजीकी हत्याके लिये हत्यारोने काँच पीसकर पिला दिया था !

कैसा जघन्य अन्याय था ! कैसी घृणा, अकारण वैर था !!

काँचका विषैला प्रभाव उनके शरीरमें फैलता गया। स्वामीजीके सारे शरीरपर छाले उभर आये थे। उनकी साँस रुक-रुककर चल रही थी। जलनसे उनका सम्पूर्ण शरीर बुरी तरह जल रहा था। जीवन-संध्या निकट थी, दीपक बुझनेवाला था। उनकी परम पवित्र आत्मा नश्वर शरीरको छोड़नेकी तैयारीमें थी, परंतु स्वामीजी सत्य, न्याय, पुण्य, नीति और सदाचारपर दृढ़ रहनेके कारण तृप्त थे। मृत्युके मुखमें भी चुपचाप आरामसे लेटे हुए थे।

एक भक्तने पूछा, 'स्वामीजी ! तबियत कैसी है ? आपके साथ तो अकारण अन्याय हुआ है। व्यर्थ ही घृणा मिली है और अकारण आलोचना की गयी है।'

स्वामीजीने धैर्यपूर्वक उत्तर दिया—'तबियत ठीक है। प्रकाशकी ओर जा रहा हूँ।'

वे वेदमन्त्रोंका उच्चारण करने लगे।

मरते हुए दिव्य ज्योतिकी किरणें छोड़ते हुए बोले—

'हे दयामय ! हे सर्वशक्तिमान् !! तेरी यही इच्छा है। मैं आत्माके सुखमें प्राण त्याग रहा हूँ। मैंने सदा अपनी आत्माकी आवाजके अनुसार ही कार्य किया है। हे परमात्मदेव! इन अज्ञानियोंको क्षमा कीजियेगा।'

इस समाजमें मूर्ख अभी बहुत हैं। वे आपकी नीति-रीति नहीं समझते। आप उनकी परवा न करें। अपनी आत्माकी आवाज सुनें। यही ईश्वरकी आवाज है। इसीके अनुसार कार्य करें। प्रतिकूलतामें आगे बढ़े।

संसार कुछ कहता रहे, आप उसीको मानकर संतोष कीजिये जो आपकी आत्मा कहती है। आत्मा ही आपको सही सलाह देती है। वही हमें पाप-कर्मोंसे बचानेवाली है। उसीका मार्ग न्यायपूर्ण है, सदाचारसम्पन्न है।

आत्मामें स्थिर होना ही परम तीर्थ है। सब पवित्रताओंमें आत्माकी पवित्रता ही मुख्य है। आत्मा ही हमें न्यायपूर्ण मार्ग दिखाती है।

राजा हरिश्चन्द्र, राजा युधिष्ठिर, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, महात्मा गाँधीजी आदि सभी विचारक आत्माकी आवाजमें पूर्ण आस्था रखते रहे हैं। उनके न जाने कितने विरोधी रहे होंगे, पर उन्होंने कदापि किसी विरोधकी परवा नहीं की; वे भूले हुए समाजकी थोथी और निस्सार आलोचनाओंसे कभी परेशान न हुए थे। घोर विरोधोंमें भी उनका पूर्ण मानसिक संतुलन बना रहा था।

आत्माके आदेशपर टिके रहनेसे मनुष्यमें आत्मश्रद्धाका विकास होता है। यह आत्मश्रद्धा वरदान है। श्रद्धावान् प्रतिपलपर सफलताके दर्शन करता है। श्रद्धाहीनको ही असफलता मिलती है। आत्मश्रद्धाविहीन व्यक्ति निष्प्राण ही है।

जब आप अन्धकारमें भटक रहे हों, रास्ता नजर न आता हो, संगी-साथी कोई सलाह न दें, तो आप कृपया आत्माकी आवाज सुनें और उसपर दृढ़ रहें। यह आत्मा ईश्वरका रूप है। सही मार्ग दिखानेके लिये सदा-सर्वदा आपके साथ है।

पाप कहाँ है ?

जो बात आपकी आत्मामें चुभे, जिस बातका आपकी आत्मा विरोध करे, वही पाप है। कोई व्यर्थ ही घृणा करे तो करने दीजिये, कुछ परवा नहीं। व्यर्थकी आलोचनाओंसे परीशान होनेकी तनिक भी आवश्यकता नहीं है। बस आत्मा आपके साथ रहे यह ध्यान रखिये।

जिनकी आत्मा चुप है, जिन्होंने उसकी आवाजकी परवा नहीं की है, वे ही अभागे हैं, आत्मा निष्पाप है। आप भी निर्मल हैं। फिर कोई कुछ कहता, इससे आपको क्या प्रयोजन ?

तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।

(मुण्डकोपनिषद् २। २। १०)

अर्थात् आत्माके प्रकाशसे ही यह सब जगत् भासित होता है।

निधानं सर्वशक्तीनां तेजस्तेजस्विनां तथा।
नात्मानमवमन्येथा आत्मोहवशं गतः॥

'हे भाई ! अज्ञानवश होकर अपनी आत्माका अपमान न करो; क्योंकि वह सारी शक्तियोंका आश्रय है और सूर्य आदि तेजस्वी पदार्थोंका तेज है।'



आशीर्वचन सुख-शान्ति देनेवाले होते हैं

विद्वानों, तपस्वियों और प्रशस्त आप्तजनोंसे इष्टसिद्धिके लिये शक्ति और कल्याणके लिये आशीर्वाद प्राप्त करना भारतकी एक पुरानी परम्परा है।

आशीर्वाद एक प्रकारकी तीव्र शुभ कल्पना है। जैसे बुरे विचारका एक वातावरण दूर-दूरतक फैलता है, वैसे ही शुभ भावनाकी गुप्त विचार-तरङ्गें दूर-दूरतक फैलती हैं और मनुष्यको तीव्रतासे प्रभावित करती हैं। भलाई चाहनेवाला यदि पुष्ट मस्तिष्कका व्यक्ति होता है, तो उसका गुप्त प्रभाव और भी तेज रहता है।

विद्वानों, तपस्वियों तथा प्रशस्त आप्तजनोंका जीवन निःस्वार्थ होता है। वे समाजका हितचिन्तन ही किया करते हैं। मन और वचनसे सबकी भलाई ही चाहते हैं। उन्हें किसीसे व्यक्तिगत लाभ नहीं उठाना होता। इसलिये उनका शक्तिशाली मस्तिष्क प्रबल विचार-तरङ्गे फेंका करता है। वे सबके विषयमें शुभ कल्पनाएँ ही किया करते है। फलस्वरूप उनके आशीर्वादमें अद्भुत फलदायिनी शक्ति होती है।

आशीर्वादमें मनकी उज्ज्वलता, शुभचिन्तन, शुभकल्पना ही फलदायक होती है। जिसका मन उज्ज्वल विचारोसे परिपूर्ण है, वह सर्वत्र प्रकाश-ही-प्रकाश फैलायेगा। उससे आशा और उत्साह ही बढ़ेंगे। आशीर्वाद पाकर हमारा चेहरा आन्तरिक खुशीसे भर जाता है। मस्तक तेजोमय हो उठता है। हमारा सोया हुआ आत्म-विश्वास जाग्रत् हो उठता है।

प्रत्येक आशीर्वाद एक प्रकारका शुभ आत्मसंकेत अथवा सजेशन है। एक उत्पादक दिशामें वृद्धिका प्रयत्न है। जिस प्रकार लोहेका बना हुआ कवच मनुष्यके शरीरकी रक्षा करता है और युद्धमें बाहरसे होनेवाले आक्रमणोंको रोकता रहता है, कवच पहन-कर लड़नेवाला योद्धा बचा रहता है, उसी प्रकार आशीर्वाद एक गुप्त मानसिक कवच है। विद्वानों और तपस्वियोंके दिये हुए इस गुप्त मानसिक कवचको धारण करनेवाला योद्धा नये उत्साह और साहससे कर्तव्यपथपर अग्रसर होता है।

आशीर्वाद हमें शक्तिका सही दिशामें उपयोग करना सिखाता है। हम तभी आशीर्वादके लिये जाते हैं, जब हम अपने उद्देश्य और कर्मकी पवित्रतामें पूर्ण विश्वास करते हैं। विद्वान् और तपस्वी सुपात्रोंको उच्च उद्देश्योंकी प्राप्तिमें ही आशीर्वाद देते हैं। वे हमारी शक्तिके सद्व्ययमें सहायक होते हैं।

सारी शक्तियाँ अदृश्य होती हैं, वायु अदृश्य है, विद्युत् अदृश्य है, आत्मा अदृश्य है। इसी प्रकार विद्वानोंके आशीर्वादकी शक्ति भी अदृश्य है। विवाहों, यज्ञों, युद्धों तथा महत्त्वपूर्ण अवसरोंपर हमें विद्वानों, तपस्वियों और प्रशस्त आप्तजनोंके आशीर्वाद अवश्य ग्रहण करने चाहिये।

आशीर्वाद एक गुप्त मानसिक कवचकी तरह सदा हमारे साथ रहता है। हमें गुप्तरूपसे उससे बड़ी प्रेरणा मिलती रहती है। वह हमारी शक्तिका छिपा हुआ एक शक्ति-केन्द्र है। अतः हमें महान् कार्य करनेसे पूर्व आशीर्वाद ग्रहण करना चाहिये।



आपकी कल्पनाशक्ति साक्षात् कल्पलता है, उसका उचित प्रयोग किया करें

आपके पास सर्जन करनेवाली, नयी-नयी बातोंकी सृष्टि, नयी खोजें, नव-निर्माण करनेकी अद्भुत शक्ति है। इसे कल्पना-शक्ति कहते हैं।

मानसिक शक्तियोंमें आपकी कल्पनाशक्तिका स्थान अत्यन्त प्रमुख है। इसी अद्भुत शक्तिके बलपर संसारके इतिहासमें नये-नये महान् कार्य हुए हैं। कलाकारों, कवियों, नाट्यकारो, दार्शनिकों, तत्त्वज्ञानियोंने कल्पनाके प्रयोगसे अपनी कलाका निर्माण तथा साहित्यके रत्नों, महान् काव्यग्रन्थों तथा वैज्ञानिकोंने नयी खोजें की हैं। सृष्टिके नाना रहस्योंका उद्घाटन किया है।

मानव-जीवनमें नित्य ही हम अपनी कल्पनाका प्रयोग किया करते हैं। कल्पनाके द्वारा हम हवाई महल, नयी-नयी स्थितियाँ उज्ज्वल भविष्यका मनमें निर्माण कर सकते हैं।

कल्पनाशक्तिकी कार्य-प्रणाली समझ लीजिये।

कल्पनामें एक विचित्रता है। यह तमाम ज्ञानतत्त्वको तोड़-मरोड़कर छिन्न-भिन्न कर देती है। फिर उन छिन्न-भिन्न तत्त्वोंको इस

तरकीबसे जोड़ती है कि बिल्कुल नवीन वस्तुका निर्माण हो जाता है। नये-नये स्वरूप, नयी वस्तुएँ बनाना, नये तरीकेसे संगठन पैदा करना, नये जोड़ जोड़ना, अद्भुत चीजोंको बनाते रहना हमारी कल्पनाशक्तिका कार्य है। कविगण तथा वैज्ञानिक कल्पनाशक्तिसे चित्र, कविता, उपन्यास या नयी-नयी खोजें करते हैं। नये आविष्कार करते हैं। विच्छेदसे शुरूकर यह नवनिर्माणका कार्य करती रहती है। हमारी स्मरण-शक्ति या स्मृति ही इसकी सहायिका सहेली है। स्मृतिमें इकट्ठी हुई ज्ञान-राशि या अनुभवोंसे यह हमें नयी दिशाकी ओर चलाती रहती है। स्मृतिपर भी कल्पना अपना प्रभाव डालती रहती है।

कल्पना तीन रूपोंमें हमारे दैनिक जीवनपर प्रभाव डालती है

१. *विधायक कल्पना या ज्ञानात्मक कल्पना*—वह है जिसके द्वारा जब हम कोई बात पढ़ते हैं, वैसा ही चित्र हमारे मनोजगत्में खिंचता है। जबतक मनमें उसका चित्र अंकित न हो, ज्ञान प्राप्त न होगा। अतः वास्तविक ज्ञान प्राप्त करनेमें विधायक कल्पनाका प्रमुख हाथ है। यह जरूरी है कि जो तथ्य समझे जायँ, उनकी एक काल्पनिक तस्वीर (Image) भी मस्तिष्कमें खींच ली जाय।

२. *उत्पादक कल्पना या प्रयोगिक कल्पना*—इस प्रकारकी कल्पनाका प्रयोग नित्य ही हम करते रहते हैं। पूर्वसंचित स्मृतिके बलपर नयी चीज बनाते हैं। रेल, तार, मोटर, पुस्तकें, कलाएँ, चित्रकारी इसी प्रकारकी कल्पना-शक्तिके चमत्कार हैं।

३. आदर्श या ललित कल्पना—इस प्रकारकी कल्पनाके द्वारा हम मनमें सबसे उत्कृष्ट अत्युत्तम आदर्श खड़े करते हैं। धर्म, ईश्वर, देवी, देवता, स्वर्ग इत्यादि हमारी आदर्श कल्पनाके उच्चतम नमूने हैं।

हमारे भावोंका प्रभाव कल्पनापर पड़ता है और मनोभावोंके अनुसार ही हमारे आदर्शोंकी सृष्टि होती है। मनुष्यके अन्तर्जगत्में स्थित भलाई, सभ्यता एवं उच्चतम नैतिकतासे हमारे आदर्श बनते हैं। सत्य, शिव और सुन्दरका उच्चतम संयुक्त स्वरूप नये-नये आदर्शोंकी सृष्टि करता है।

शरीरपर आपकी कल्पनाका अद्भुत प्रभाव

श्रीयुत कुन्दनलालने प्रो० बूलके एक प्रयोगका वर्णन अपने ग्रन्थमें इस प्रकार किया है। इससे स्पष्ट होता है कि हमारे शरीरपर कल्पनाका राज्य है—

"फ्रांसमें एक अपराधीको प्राणदण्ड मिला। कारागारमें डाक्टरोंने उसके नेत्रोंपर पट्टी बाँधकर एक तख्तेपर लिटा दिया और कह दिया कि तुमको नसें काटकर मारा जायगा। उसकी दोनों बाजुओंमें सुइयाँ चुभो दी गयीं, जिससे वह यह कल्पना कर सके कि नसें काट दी गयी हैं और बाजुओंपर गरम पानीकी धारा इस प्रकार छोड़ी गयी कि वह इस भ्रममें आ गया कि मेरी नसोंमेंसे गर्म रक्त निकाला जा रहा है। फिर झूठ ही यह कहना प्रारम्भ किया गया कि 'रक्त तो बहुत निकल गया, सारेमें खून-ही-खून फैला हुआ है। ओफ! इतना खून निकल रहा है।' यह सुनकर कैदीने अपने कल्पना-

जगत्में यह देखा कि वह लहूलुहान हो गया है। मरणासन्न है। उसकी कल्पनाने इतना भयंकर प्रभाव दिखाया कि वह कैदी स्वयं ही मृत्युको प्राप्त हो गया।

उपर्युक्त उदाहरणसे स्पष्ट है कि हम जैसी कल्पनाएँ करने लगते हैं वैसे ही बनते जाते हैं। गलत दिशामें कल्पनाएँ करनेसे हम अपने भाग्यका नाश करते हैं; क्योंकि अभद्र कल्पनाओंसे मनुष्यका भविष्य कालिमापूर्ण निराशा और असफलतासे भर जाता है। बुरी कल्पनाओंसे हम अपने शरीरमें नाना रोग और व्याधियाँ पैदा करते रहते हैं। मनमें जिस बीमारीकी कल्पना करते हैं, वही बीमारी कल्पना-शक्ति और मनोबलके गलत प्रयोगसे हमारे शरीरमें प्रकट हो जाती है। कल्पित भयसे हमारा जीवन रुक जाता है और उत्पादक शक्तियाँ मारी जाती हैं।

कुकल्पना रोग, शोक, व्याधि, असफलता और नरककी उत्पत्ति करती है। बुरी कल्पनाएँ शैतानसे भी बढ़कर विनाशकारी हैं। मनकी यह अशुभ वृत्ति आयु, सामर्थ्य तथा मनोबलकी सर्वथा हानि करनेवाली है।

इससे विपरीत यदि हम कल्पनाका सही प्रयोग करें—उन्नति, लाभ, सफलता, पूर्ण विजय, ऋद्धि-सिद्धिकी भव्य बातें सोचें, तो हमारी निरन्तर उन्नति ही हो सकती है। पवित्र उन्नतिमूलक कल्पनाएँ हमारी शक्तियोंको नया बल और शरीरको प्रेरणा देनेवाली हैं।

कल्पनाशक्तिके दुरुपयोगसे पूर्ण स्वस्थ मनुष्य भी क्षयको

प्राप्त हो सकता है तथा सदुपयोगसे मृत्यु-शय्यापर पड़ा हुआ रोगी भी पूर्ण आरोग्य प्राप्त कर सकता है। मनकी स्थिति सुधारने, स्थिरता कायम रखने, नवीन उपयोगी रचनात्मक कार्य करनेमें कल्पनासे अत्यधिक सहायता मिलती है; क्योंकि इस शक्तिका राज्य भूत, भविष्यत् एवं वर्तमान तीनोंपर समानरूपसे है।

कल्पनाशक्तिद्वारा सम्पूर्ण मानसिक शक्तियोंका विकास

यदि आप अपने स्वास्थ्यको सुधारना चाहते हैं तो प्रतिदिन अधिक-से-अधिक अपने मनमें अपने पूर्ण स्वस्थ निर्विकार रूपकी कल्पनाएँ किया कीजिये। एक ऐसे व्यक्तिका मानसिक चित्र सदा-सर्वदा अपने सामने रखिये जो हर दृष्टिसे पूर्ण स्वस्थ, निर्विकार और तरोताजा है, बलिष्ठ है, यौवनसे परिपूर्ण है।

यदि आप अपनेको आकर्षक बनाना चाहते है तो मनमें एक बड़े ही सुन्दर आकर्षक व्यक्तिकी मजबूत कल्पनाएँ बनाइये। सम्भव हो तो वैसे ही सुन्दर-सुन्दर चित्र अपने कमरेमें सजाइये।

यदि आप उदासीको दूर भगाना चाहते हैं तो मनमें उन युवकोंकी मधुर कल्पनाएँ सजाइये, जो हँस-खेल रहे हैं, जिंदगीमें संघर्ष कर रहे हैं, आपत्तियोसे जूझ रहे हैं, खुश हैं, प्रसन्नता जिनके कण-कणसे प्रवाहित हो रही है।

यदि आप कमजोरीको दूर करना चाहते है तो बलवान्की कल्पनाएँ रखिये। यदि स्फूर्तिवान् बनना चाहते हैं तो वैसी ही स्फूर्तिकी ताजी कल्पनाएँ रखिये।

यदि आप मानसिक शक्तियोंका पूर्ण विकास चाहते हैं तो

उन मानसिक ताकतोंका हमारे देवदुर्लभ शरीरमें पूर्ण विकास हुआ है—ऐसी दृढ़ कल्पना रखिये ।

यदि आप कवि, चित्रकार, लेखक, नेता, समाजसुधारक, चिकित्सक, वकील या ऐसा ही कोई सफल पेशा करना चाहते हैं तो मनकी कल्पनाओंको इसी प्रकारके काल्पनिक चित्रोंके निर्माणमें व्यतीत कीजिये ।

सभी व्यक्तियोंकी उच्चातिउच्च स्थिति, सर्वोत्कृष्ट वैभवपूर्ण स्वास्थ्य उच्चतम प्रतिभाके मानस चित्रोंके निर्माणमें कल्पनाको व्यय करो । फिर अपने जीवनमें धीरे-धीरे इन्हीं काल्पनिक चित्रोंको स्पष्ट, स्पष्टतर और स्पष्टतम बनाओ । उनके लिये जी तोड़कर यत्न करो । उन्हीं उद्देश्योंकी प्राप्तिमें तत्पर रहो ।

इन आशापूर्ण तरङ्गोंसे ही संसारमें पूर्ण सफलता और लक्ष्य-सिद्धि प्राप्त होती है । ये महत्त्वाकाङ्क्षाएँ हमारी छिपी हुई निरन्तर निकलनेको तत्पर शक्तिकी सूचक है, सत्य हैं, बड़ी प्रबल हैं और हमारी कार्य करनेकी शक्तिके परिणामकी द्योतक हैं ।

हम जिसकी प्रबलता और दृढ़तासे चाह करते हैं, जो आदर्श हमने प्यारसे बनाया है, जिसमें हमारी कल्पनाएँ सदा लगी रहती हैं और मन उलझा रहता है, वह अवश्य हमारे सम्मुख प्रकट होगा । जिस दिनसे हम आदर्शकी प्राप्तिके लिये मन, वचन, कायासे पूर्ण प्रयत्नवान् होनेकी कल्पना करते हैं, उसी दिनसे इच्छित पदार्थसे अपना सम्बन्ध जोड़ना प्रारम्भ करते हैं ।



क्या करूँ, क्या न करूँ ?

आपके मनमें एक ही बारमें अनेक इच्छाएँ पैदा हो रही हैं। आप चाहते हैं कि मैं लेखक बनूँ, अध्ययन करूँ, पुस्तकें पढ़ूँ, अपनी मानसिक उन्नति करूँ, उच्चकोटिके विद्वानोंकी संगतिमें रहूँ।

पर आप ठेकेदार हैं। दिनभर अल्पशिक्षित और रूखे मजदूरोंमें रहते हैं। उनकी गाली-गलौज, गंदी चेष्टाएँ और नशे-पत्तेकी बातें सुनते हैं। मनमें द्वन्द्व मचता है।

कभी आप बहुत-सा रुपया कमानेकी योजनाएँ बनाते हैं। बड़े-बड़े व्यापारोंकी बातें सोचते हैं। शहरके अमीरोंमें अपना नाम लिखा लेना चाहते हैं। बढ़िया कपड़े, आलीशान मकान, मोटरगाड़ी इत्यादि रखनेकी सोचते हैं।

और जब आप सिनेमा देखते या रेडियोसे मधुर संगीत सुनते हैं, तो इच्छा होती है कि हम भी अभिनेता बनें। हम भी रेडियोके संगीतज्ञ बनें और संसारको अपनी कलासे चकित-विस्मित करें।

जब आप किसी नेताका ओजस्वी भाषण सुनते हैं तो मन करता है कि हम भी एक अच्छे भाषणकर्ता होते। ढेर-के-ढेर व्यक्ति हमारी प्रभावशाली वक्तृता सुनते। हमारी अखबारोंमें प्रशंसा हो।

इच्छाओंका यह मायाजाल

हम इसी प्रकारकी एक-न-एक सैकड़ों छोटी-बड़ी इच्छाओंके मायाजालमें फँसे रहते हैं। मनमें सैकड़ों इच्छाओंका द्वन्द्व चलता रहता है। इच्छाओंके इस संघर्षके कारण हमारे मनमें कई लक्ष्यों, अनेक उद्देश्यों, नाना प्रकारकी लौकिक तथा आध्यात्मिक प्रवृत्तियोंका जन्म होता रहता है।

इच्छाओंका यह द्वन्द्व हमें परीशान रखता है। हम जल्दीमें एक कार्य शुरू कर देते हैं। फिर अकस्मात् उसकी गलती मालूम होती है। उसे छोड़कर एक दूसरा कार्य प्रारम्भ करते हैं, वह भी उचित नहीं लगता, तो एक और नया काम शुरू कर देते हैं। इस प्रकार जल्दी चुनावकी गलतीका अनुभव होता जाता है।

इच्छाओंके तूफानमें चुनाव गलत होता रहता है। अनेक वर्षोंके बाद हमें अचानक मालूम पड़ता है कि हम जहाँ थे, आज भी वहीं पड़े हैं। हमने कुछ भी प्रयोजन सिद्ध नहीं किया है। विविध इच्छाएँ हमारे मनको विविध दिशाओंमें आकर्षित करती रही हैं।

सभी लक्ष्यों या आपकी सभी इच्छाओंकी पूर्ति एक साथ होना असम्भव रहता है। एक ही व्यक्ति एक बारमें अनेक कार्य पूरे नहीं कर सकता। सब लक्ष्यों या क्षेत्रोंमें एक साथ उन्नति करना सम्भव नहीं है। यदा-कदा उनका एक दूसरेसे विरोध होता है।

यदि एककी पूर्ति होती है तो दूसरे लक्ष्य या उद्देश्यको बिल्कुल छोड़ना पडता है। इस प्रकार मनमें नाना इच्छाओं अथवा प्रवृत्तियोंमें प्रतियोगिता (Sense of Competition) या संघर्ष (Conflict) उत्पन्न होता है। आप सोचते है यह करूँ ? या वह करूँ ?

इस द्वन्द्वात्मक मनःस्थितिमें क्या करें ?

आपके मनमें एक शक्ति है, जिसे विचारणा कहते हैं। इसका सम्बन्ध आपकी आत्मासे है। हमारी आत्मा हमारे अंदर बैठे हुए

ईश्वरकी ध्वनि है। हमारी आत्माकी आवाज उचित-अनुचितका निर्णय करती है। वही हमें बताती है कि हम पहले कौन-सा कार्य करें, बादमें कौन-सा?

जब उचित-अनुचितका निर्णय करना हो तो अपनी आत्मासे पूछिये कि किस कार्यको पूर्ण करनेसे आपको अधिकतम लाभ या सुख प्राप्त होगा? किसमें स्थायित्व है? कौन-सा फल अधिक टिकाऊ है? आपकी आत्मा जिस प्रयोजन, लक्ष्य अथवा कार्यको स्वीकार करती है, वही पहले करना चाहिये।

आत्मा हमारी विविध प्रवृत्तियोसे प्रेरित कार्योंके गुण-दोषोंका निर्णय करती है। यह हमारे विभिन्न विकल्पोंके पक्ष अथवा विपक्षोंका तुलनात्मक विचार करती है। इसे विचारणा कहते हैं। इसका मतलब आत्मासे पृथक् इच्छाओंके बल या बलहीनतासे नहीं है; क्योंकि इच्छाएँ आत्माकी तरङ्गें हैं।

हमारी विचारणा प्रतिद्वन्द्वी इच्छाओंमेंसे एकके चुनावके लिये तरह-तरहकी इच्छाओंके द्वारा प्रेरित कर्मोंके गुणावगुणोंके चिन्तनकी मानसिक प्रक्रिया है।

विचारणाद्वारा हमारी आत्मा एक प्रेरणा-विशेषको चुन लेती है और अपनेको उसके साथ एकाकार कर लेती है। वह एक बड़ी और हितकारी इच्छाको चुनकर शेषका निषेध या दबाव कर देती हैं। यह चयनात्मक क्रिया हमारी बहुमूल्य निधि है। इसको निर्णय कहते हैं। इस स्थितिमें आत्मा चुने हुए साधनोंके द्वारा एक निश्चित प्रेरणा या अभीष्टको सिद्ध करनेके लिये एक निश्चित कार्यप्रणालीका निर्णय कर देती है।

आपकी आत्मा जिस इच्छाको जरूरी, दूसरोंकी अपेक्षा अति आवश्यक, सर्वाधिक गुणकारी, हितकारी समझती है, उसी इच्छाकी पूर्तिका पहले प्रयत्न कीजिये। जो उस कालमें जरूरी इच्छाएँ नहीं हैं, जो क्षणिक हैं, जिनसे अपेक्षाकृत कम लाभ है, उनको कुछ कालके लिये स्थगित कर देना चाहिये। प्रतियोगी तथा विपक्षी लक्ष्यों, उद्देश्यों और प्रवृत्तियोंमेंसे सर्वश्रेष्ठ एकको ही छाँटिये। आत्माद्वारा स्वीकृत इसी इच्छाको प्राथमिकता दीजिये। शेष यदि मजबूत हुईं तो बनी रहेंगी अथवा पानीके बुलबुलोंकी तरह स्वयं विनष्ट हो जायँगी।

आत्माके द्वारा चुनी हुई प्रेरणा कर्मकी वास्तविक प्रेरणा बन जाती है। चुनी हुई प्रवृत्ति प्रबलतम प्रवृत्ति बन जाती है। अस्वीकृत या दुर्बल इच्छाएँ मनके अवचेतनमें चली जाती हैं। निर्णयके बाद चुनी हुई प्रेरणा कर्मकी-वास्तविक प्रेरणा बन जाती है।

अपने सबसे ऊँचे लक्ष्य, सबसे हितकारी कर्म, सबसे प्रिय प्रयोजनको पहले कीजिये और इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये चुने हुए उचित, नैतिक साधनोंका ही प्रयोग कीजिये।

कद्ध ऋतं कदनृतं क्व प्रत्ना……।

(ऋग्वेद १ । १०५ । ५)

अर्थात् क्या उचित है या अनुचित, यह विचारकर जरूरी कार्य पहले कीजिये।

अन्धपरम्पराको छोड़कर विशुद्ध विवेकका आश्रय ग्रहण कीजिये।



भले शब्दोंकी प्रचण्ड शक्ति

क्या आपने इसका कभी अनुभव किया है ?

भद्रं श्लोकं श्रूयासम्। (अथर्ववेद १६ । २ । ४)

अर्थात् मैं सदा भला शब्द ही सुना करूँ।

एक बार असुरोंने इन्द्रपुरीको घेर लिया। उनके पास बड़ी सुसज्जित सेना थी। हर प्रकारके हथियारोंसे सज्जित हो उन्होंने युद्धके लिये इन्द्रको ललकारा।

'हमारा युद्धमें सामना करो। हम अपने बाहुबलकी शक्तिसे तुम्हें परास्त करना चाहते हैं। यदि हमसे डरते हो तो हार स्वीकार करो। इन्द्रपुरी हमारे हवाले करो।'

विशाल असुर-सेनाको देख महाप्रतापी इन्द्र एक बार तो काँप उठे। 'बहुसंख्यक शत्रुके सामने मुट्ठीभर देवता लोग क्या कर सकेंगे ? मेरी पराजय निश्चित-सी है। यों तो मेरी इन्द्रपुरी ही छिन जायगी। अब तो किसी बाह्य दैवी शक्तिसे सहायता लेनी चाहिये। अपनी सीमित शक्तियोसे तो इन्द्रपुरीकी रक्षा होती नहीं दीखती।'

उनके सामने प्रश्न था, 'असुर कैसे मारे जायँ ?'

भगवान्ने सलाह दी, केवल शब्दशक्तिके देवता ॐकी सहायतासे ही आप सबमें नव प्राण और नव उत्साहका संचार सम्भव है। वे ही मेरी शक्तिके स्रोत हैं। उनकी कृपासे मुर्दा दिलमें

नयी शक्तिका प्रादुर्भाव होता है। आप उन्हींके पास जाइये और उनसे शब्द-शक्ति ग्रहण कीजिये। भले शब्दोंमें भी प्रचण्ड शक्ति भरी हुई है। उसकी साधना कीजिये।'

महाराज इन्द्रको कुछ धैर्य हुआ। ढूँढते-ढूँढते वे ॐ (ओम्) देवके पास पहुँचे।

मुँहपर अमित शान्ति और धैर्यकी साक्षात् मूर्ति ॐके दर्शनमात्रसे उनमें शक्तिका संचार हो गया।

इन्द्रने ॐसे कहा, 'हे भगवानके शक्तिस्वरूप ॐ! आप शब्द-शक्तिके देवता हैं। हम आपको अपना नेता बनाकर असुरोंकी सेनासे युद्ध करना चाहते हैं। आप ईश्वरकी शक्ति और सामर्थ्यके रूप हैं। आपके नामके उच्चारणमात्रसे हम देवताओंमें नयी शक्ति और नयी स्फूर्ति आयेगी। आपके नामके प्रत्येक स्वरमें प्रचण्ड शक्ति भरी हुई है। आपका नाम उच्चारण करते रहनेसे हममें निरन्तर साहसका प्रादुर्भाव होगा। इस संकटके समयमें हमारे नेत्र आपपर लगे हुए हैं। हे स्वरदेवता! हमारी सहायता कीजिये।'

'ओम्' (ॐ) सोचते रहे। देवताओंपर बड़ा संकट था। उन्हे वीरता, साहस, धैर्य, उत्साहवर्धक शब्दोंकी आवश्यकता थी। उनके शरीरमें हाथ, पाँव, नाक, मुँह सभी तो थे। केवल आत्म-विश्वास और साहस कमजोर पड़ गया था। उत्साहवर्धक शब्दोंसे उनके वे ही शरीर फिर शक्तिशाली बन सकते थे। उनके लिये शब्दोंकी शक्तियोंकी योजना करनी होगी।

देवताओंकी विनयपर उन्हें दया आ गयी। ओम् एक शर्तपर देवताओंको दिव्य सहायता देनेको तैयार हुए।

सबने पूछा, 'हे देव! कहिये आपकी शर्त क्या है?'

'ओम्' बोले मेरी शर्त इस प्रकार है—

न मामनीरयित्वा ब्राह्मणा ब्रह्म वदेयुर्यदि वदेयुरब्रह्म तत् स्यादिति।

(गोपदब्रा० १।१।२३)

अर्थात् 'मुझ 'ओम्'को पहले पढ़े बिना ब्राह्मण वेदोच्चारण न करे। मेरे नामका उच्चारण सबसे पहले किया जाया करे। यदि कोई ब्राह्मण मेरा नाम लिये बिना वेद-पाठ कर दे तो वह देवताओं-द्वारा स्वीकार न किया जाय।'

'ओम्'के बिना असुर जीते नहीं जा सकते थे। अतः देवताओंने उनकी यह शर्त मान ली। उन्होंने देवताओंकी सेनाका संचालन किया।

पूरी सेनाके सामने वे खड़े थे। वे बोले, देवताओ! मेरा नाम उच्चारण करते-करते पूरे धैर्यके साथ आगे बढ़िये। आप सिंधुकी थाह नाप लेंगे। कायरता दूर होगी। शिथिल पगोंमें अटल विश्वासकी शक्ति आयेगी। आज आप अपनी शक्तिको पहचान लीजिये। आपमें दैवी शक्तियाँ सो रही हैं। मेरा नाम लेनेसे वे खुल जायँगी।'

देवताओंकी सेना आगे बढ़ी। घोर युद्ध हुआ। देवताओंकी सेना विश्वासभरे उच्च स्वरमें 'ॐ....ॐ....ॐ....ॐ....ॐ....ॐ'का उच्चारण कर रही थी। उस शब्दकी प्रचण्ड शक्तिसे पूरी

सेनामें नयी शक्ति और जोश उमड़ रहा था। वे नये उत्साहसे दानवोंकी बड़ी सेनाको काट रहे थे। थकी हुई सेना जैसे ही 'ओम' शब्दका उच्चारण करती, वैसे ही उसे नयी शक्ति फिर मिल जाती। उसकी शक्ति अक्षय हो गयी थी। इस शब्दका चमत्कार संजीवनी शक्तिके समान जीवन और प्राणदायी था।

युद्ध समाप्त हुआ। 'ओम्'की शब्दशक्तिके कारण देवता विजयी हुए थे। सब देवताओंने ॐका जयकार किया।

तबसे ॐ अमर हो गये। थके-हारे, जीवनमें निराश, उत्साह-हीन व्यक्तियोंको जीवनमें नवजीवन, नयी प्रेरणा और नयी शक्ति देनेके लिये 'ओम' शब्दका प्रयोग प्रचलित हुआ।

संकटमें, विपत्तिमें युग-युगसे जनताने 'ओम्' शब्दके उच्चारण तथा श्रवणसे आत्म-विश्वास प्राप्त किया है। नये सिरेसे वे जीवनके मोर्चेपर आरूढ़ हुए हैं।

मैंने सदा परखा है। आप भी देखें तो पायेंगे, हर एक विपत्तिमें मनुष्यको शक्ति और नया साहस देनेवाला यह अद्भुत चमत्कारी 'ॐ' शब्द है।

'ॐ' ब्रह्मबीज है। त्रिविध आकाररूपी ब्रह्मका संक्षिप्त रूप है। इसकी ध्वनिमें ऐसा सूक्ष्म कम्पन उत्पन्न होता है कि चारों ओर शक्ति और साहसकी लहरें फैलती हैं। अतः दिनमें कई बार इसका प्रयोग करनेसे, बच्चोंके नामके रूपमें इसे रख लेनेसे दैवीशक्ति-का प्रादुर्भाव होना प्रत्येक समझदार व्यक्ति समझ सकता है।

'ॐ' शब्दका विश्लेषण और महिमा

अ, उ, न्के संयोगसे यह महत्त्वपूर्ण शब्द बना हुआ है। 'ॐ' परमात्माका उत्तम नाम है। वेदादि शास्त्रोंमें परमात्माका मुख्य नाम 'ॐ' ही बताया गया है।

माण्डूक्योपनिषद्में लिखा है—

ओमित्येतदक्षरमिदꣳ सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद् भविष्यदिति सर्वमोंकार एव।

अर्थात् 'ओम्' वह अक्षर है जिसमें भूत, वर्तमान तथा भविष्यत् ओंकारका एक छोटा-सा व्याख्यान है। सभी शक्तियाँ, ऋद्धियाँ और सिद्धियाँ इसी ओंकारमें भरी हुई हैं।

छान्दोग्य उपनिषद्में 'ओम्'की चमत्कारी महिमाका वर्णन करते हुए लिखा गया है—

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत ओमिति ह्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम्। एषां भूतानां पृथिवी रसः पृथिव्या आपो रसः। अपामोषधयो रस ओषधीनां पुरुषो रसः पुरुषस्य वागरसो वाच ऋगरस ऋचः साम रसः साम्न उद्गीथो रसः। स एष रसानाꣳ रसतमः परमः परार्ध्योऽष्टमो यदुद्गीथः। (१।१।१–३)

अर्थात् 'ओम्' अक्षर उद्गीथ है। अतः उसकी उपासना करनी चाहिये। सब भूतोंका रससार पृथ्वी है। पृथ्वीका रस जल है। जलका सार ओषधियाँ हैं। ओषधियोंका सार मानवदेह है। मानवदेहका सार वाणी है। वाणीका सार-ऋचा अर्थात् वेद है। ऋचाका सार सामवेदद्वारा भगवान्का यशोगान है। सामवेदका सार

उद्गीथ है। यह जो उद्गीथ है, वह सब रसोंमेंसे रसतम, सारतम और सर्वोत्कृष्ट है।

यह 'ओम्' सबका श्रेष्ठ आलम्बन है। इसी शक्तिपूर्ण शब्दका सहारा लेकर मनुष्य ब्रह्मलोकमें महिमान्वित होता है।

सच मानिये, 'ओम्'की शक्ति अपार है। इसके उच्चारणसे मनुष्यमें शुद्ध और सात्त्विक भाव उत्पन्न होते हैं।

विराट्, अग्नि, विश्व आदि परमात्माके नाम 'अ' अक्षरके अंदर सम्मिलित हैं। हिरण्यगर्भ, वायु, तैजस् आदि 'उ' के अन्तर्गत हैं। ईश्वर, आदित्य आदि परमात्माके नाम 'म' में आ जाते हैं।

इस प्रकार 'ओम्' शब्दमें अनन्त दैवी शक्तियाँ भरी हुई हैं। 'ओम्' में बल है, बुद्धि है, जीवन है। 'ओम्'में इन्द्रियोंका संयम है।

भगवान् श्रीकृष्णने 'ओम्'की महिमाका वर्णन करते हुए गीताके आठवें अध्यायमें लिखा है—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

अर्थात् जो आदमी मन और इन्द्रियोंको वशमें कर 'ओम्' शब्दका जप करता है, वह ब्रह्मका स्मरण करता हुआ इस भौतिक देहको त्यागकर परमपदको प्राप्त होता है। इस पदको प्राप्त करनेके बाद जीवात्मा जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त हो जाता है।



संसारमें दरिद्रता पाप है

आत्महत्या करनेवालोंमें एक तिहाई ऐसे होते हैं जो गरीब, बेरोजगारी, दरिद्रता और आर्थिक बेबसीकी वजहसे मरते हैं। रोजगार मन्दा है, नौकरी मिलती नहीं, पढ़-लिख जानेसे मामूली मजदूरीमें गुजारा नहीं होता, बच्चे अधिक होनेसे और परीशानी बढ़ती है, गरीबी बढ़ती जाती है।

गरीबी सबसे बड़ी गुलामी है। दरिद्रतासे मनुष्यकी समस्त उच्च शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं। गरीबको विद्या, बुद्धि, सद्गुण, विवेक, सच्चरित्रता, भलमनसाहत, रिश्तेदारीका समाजमें कोई भी मूल्य नहीं है।

दरिद्रका दर्शन दोष समझा जाता है। समाजमें उससे कोई बातें करना पसंद नहीं करता। उसके विवाह-सम्बन्ध नहीं हो पाते, पुरानी रिश्तेदारियाँ टूटती जाती हैं!

जब एक बार किसी परिवारपर इसका आक्रमण हो जाता है, तो पीढ़ियोंतक वह पीछा नहीं छोड़ती। अतः हमारे शास्त्रकारोंने तो यहाँतक कहा है—

'दारिद्र्यं पातकं लोके ।

अर्थात् संसारके मनुष्यो ! स्मरण रक्खो, संसारमें दरिद्रता पाप है । पापीको कोई नहीं पूछता । सब उससे पृथक् रहते हैं । उसी प्रकार गरीबकी विद्या, उसकी सुशील संतान, यश, प्रतिष्ठाको कोई नहीं पूछता । गरीबोंकी बुद्धिके दो टके नहीं उठते । गरीबके सौन्दर्यकी कोई परख नहीं की जाती । गरीबके निकट सम्बन्धी उसका परित्याग कर देते हैं ।

गरीबके मित्र नहीं बनते । जो बने हुए होते भी हैं, वे उसे त्याग देते हैं । रिश्तेदार घर पहुँच भी जाता है तो उसका उपहास होता है । उसके साथ बातचीत करना भी कोई पसंद नहीं करता । गरीबकी गुणवती कन्याका वैवाहिक सम्बन्ध रुक जाता है, जब कि अमीरकी निरक्षर और मूर्ख कन्या सुख-सुविधाका जीवन बिताती और ऐश करती है ।

धनवान्को जनता नेता चुनती है । उसके यशोगानके वर्णनमें जीभ नहीं थकती । उसके गुणोंकी कल्पनाएँ समझती है । दूसरी ओर गरीब सर्वगुणसम्पन्न, सर्वकलाविभूषित, योग्य विद्वान्, विद्या होते हुए भी जंगलमें मङ्गलमय खिले हुए पुष्पकी तरह है, जिसका संसारको कुछ पता नहीं है ।

शास्त्रकार कह गये है कि—

धनेन बलवाँल्लोके धनाद्भवति पण्डितः ।

अर्थात् धनके द्वारा ही मनुष्य बलवान् होता है; धनके द्वारा

ही समाजमें मनुष्य पण्डित गिना जाता है। यदि धन नहीं है, विद्वान्को भी सामाजिक सम्मान प्राप्त नहीं होता।

अर्थेन तु विहीनस्य पुरुषस्याल्पमेधसः।
क्रियाः सर्वा विनश्यन्ति ग्रीष्मे कुसरितो यथा॥

अर्थात् ग्रीष्मऋतुमें जैसे छोटी नदी और पोखरी सूख जाती है, इसी प्रकार अर्थहीन व्यक्तिके समस्त शुभ कर्म भी नष्ट हो जाते हैं।

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः।
यस्यार्थाः स पुमाँल्लोके यस्यार्थाः स हि पण्डितः॥

अर्थात् जिसके पास रुपया है, समाजमें उसीके मित्र, बन्धु-बान्धव हैं। उसका सब कुछ हमें अच्छा लगता है। जब वह हँसता है, तो ऐसा मालूम होता है कि मोती झर रहे हैं; उसके रोनेपर भी माणिक गिरते हुए प्रतीत होते हैं।

जो धनवान् है, उसीको लोग अच्छा कहने लगते हैं। समाजका मूल्याङ्कन रुपयेके बाटोंसे होता है। समाज़के नेत्र मनुष्यकी ऊपरी सतहपर ही रहते हैं, गहराईमें नहीं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों वर्ग भी मुट्ठीमें रहते हैं। धनमें सब कुछ समाविष्ट करनेकी क्षमता इकट्ठी हो गयी। महिमावती लक्ष्मीकी शक्तिका पारावार नहीं है। सारा समाज, बड़े-बड़े विद्वान्, कवि, ज्ञानीतक उनके वशमें हैं।

दरिद्रताके लिये हम ही जिम्मेदार हैं

हम अपनी गरीबीके लिये भाग्यको दोष देते है। माँ-बापकी

गलतियाँ निकालते हैं, समाजकी व्यवस्थाको गालियाँ देते हैं। वास्तवमें हम स्वयं ही अपनी बुरी आदतोंसे तथा क्रियाओंसे दरिद्र बनते हैं।

पहला कारण यह है कि हमारा आत्मविश्वास बहुत शिथिल रहता है। हम समझते हैं कि यह हमारी परिस्थितियोंका दोष है—यह बिल्कुल अनुचित है। हमें चाहिये कि हम अपनी धन कमानेकी योग्यताएँ बढ़ायें। कोई व्यापार करें। किसी व्यापारीके साथ रहकर व्यापार सीखें। नौकरीके लिये अपनी किसी विशेष दिशामें विकास करें। जिस क्षेत्रमें हम नौकरी करते हैं, उसी प्रकारकी योग्यताएँ प्राप्त करें। फिर मितव्ययितासे धनका संचय करें। अपनी आदतोंको सँभालें। व्यसन, व्यभिचार, नशा, फैशनपरस्ती, सिनेमा, दिखावा, बड़ी लेन-देन, दूसरोंको ऋण देना, किसीकी जमानत दे देना और मुकदमेबाजी इत्यादि-से दरिद्रता आती है। इन सभी विकारों तथा चारित्रिक दुर्बलताओंसे मनुष्यका जन्मभरका संचित धन नष्ट हो जाता है।

याद रखिये, मनुष्यके सुखपूर्वक जीवन-निर्वाह करनेके लिये धन आवश्यक और अनिवार्य है। धनके बिना मनुष्य न जीवन-निर्वाह कर सकता है, न कर्तव्य-पालन कर सकता है; न देवऋण, ऋषि-ऋण और पितृऋणसे ही उऋण हो सकता है।

लेकिन धन अर्जित किया जाय शुभ सात्त्विक साधनोंसे ही। पापकी कमाई घरका धन भी ले जाती है। कमानेके साधन पवित्र और ईमानदारीके हों तो दुगुनी, चौगुनी समृद्धि होती है।

अंग्रेजीके प्रसिद्ध लेखक ओरिसन मार्डनने एक पुस्तक इसी

विषयपर लिखी है। नाम है, 'पीस पावर एण्डप्लेन्टी'। इस पुस्तकमें दरिद्रतासे बचनेके लिये अनेक बहुमूल्य विचार भरे पड़े हैं। यहाँ हम उसी पुस्तकसे कुछ महत्त्वपूर्ण अंशोंका भावानुवाद प्रस्तुत कर रहे हैं। यह पाठकोंके लिये बहुमूल्य है। मार्डन साहबके नीचे लिखे विचारोंको पढ़कर पाठक दरिद्रतारूपी विषैले भावसे छुटकारा पा सकते हैं। इस पुस्तकमें मार्डन साहबने यह स्पष्ट किया है कि 'संसारमें अपना जीवन प्रारम्भ करते हुए हम एक बड़ी गलती करते हैं। वह यह है कि हम अपने विचारोंमें दरिद्रता रखते है। हमेशा गरीबीके ही विचार मनमें बनाये रहते हैं। इस विचार-दारिद्र्यसे ही हम जीवनमें गरीब बनते हैं।' यहाँ हम मार्डन साहबके विचार उनकी अंग्रेजी पुस्तकसे उद्धृत करते हैं—

दरिद्रता अनुचित और अप्राकृतिक स्थिति है

प्रकृति तथा परमात्माकी कभी भी यह इच्छा नहीं कि इस संसारमें मनुष्य अनाथ, गरीब या दरिद्र बनकर रहे। इस मानव-शरीरमें एक भी ऐसा निशान नहीं, जिससे यह बात प्रमाणित हो कि मनुष्य दरिद्र बननेके लिये जन्मा है।

मनुष्य मुट्ठीभर अनाजके लिये सदैव दूसरोंकी चाकरी करते रहनेके लिये पैदा नहीं हुआ है। संसारमें उसके लिये यश, प्रतिष्ठा और समृद्धि है।

'कोई व्यक्ति उस समयतक सर्वोत्तम कार्य नहीं कर सकता, न अपनी गुप्त शक्तिको प्रकाशमें ला सकता है, जबतक वह पग-पग-

पर दूसरोंकी सहायताकी भिक्षा माँगता रहता है, जबतक वह विकट परिस्थितियोंकी दयापर संतोष करके बैठा रहता है।

'गरीब मनुष्य, जो छोटी-छोटी मेहनत-मजदूरी या दूसरोंकी सेवामें जीवन घुलाते रहते हैं, कभी स्वाधीनता और आजादीका स्वर्ग-जैसा सुख नहीं पा सकते। कभी अपने जीवनको नियमित नहीं बना सकते।

'गरीब व्यक्ति आजादीसे अपने विचारोंको प्रकट भी नहीं कर सकते। उनके पास इतने पैसे नहीं होते कि वे हमेशा सुन्दर, हवादार, स्वास्थ्यप्रद मकानोंमें निवास कर सकें।

दरिद्रतासे मानसिक हीनता और दब्बूपन

जब दरिद्रता मनमें स्थायी रूपसे निवास कर लेती है, तो वह मनुष्योंमें स्थायी दीन-हीनवृत्ति उत्पन्न कर देती है। ऐसा व्यक्ति मन-ही-मन डरता-घबराता रहता है। मानसिक दरिद्रताकी भावना अपने सगे-सम्बन्धियोंके प्रेमको नष्ट कर देती है, जो गरीबीमें भी आनन्दसे दिन कटानेवाला होता है। यह हृदयको निर्दयी, क्षुद्र, संकुचित, प्रेमविहीन और निराश बनानेवाला अभिशाप है।

संकुचित सीमामें बाँधनेवाली दरिद्रता आनेपर मामूली आदमी तो अपने वास्तविक मनुष्यत्वकी रक्षा भी नहीं कर सकता। जब मनुष्य ऋणसे दबकर या किसी और कारणसे जैसे-तैसे अनुचित उपायोंसे कार्य कर पैसे पैदा करनेको विवश होता है, तब उसके लिये आत्मगौरव और स्वाभिमानको सुरक्षित रखना कठिन हो जाता है। उसका सिर ऊँचा नहीं उठता और वह कायरतासे संसारको देखता है।

हमें उन उच्चतम और श्रेष्ठतम आत्माओंके उदाहरण याद रखने चाहिये, जिन्होंने भीषण दरिद्रताके अंदर रहकर भी जीवनको समुन्नत किया और अमीर बने। उन पुरुषार्थियोंके उदाहरण सदा संसारके हृदयपटलपर लिखे रहेंगे; परंतु खेदका विषय है कि अनेक ऐसे दीन-हीन पोच व्यक्ति हैं, जो दारिद्र्यके भयंकर प्रहारोंसे क्षुद्रता और नीचताके गहरे गड्ढोंमें डूब गये हैं। अपने उन व्यक्तियोंमें रहना चाहिये, जो छोटेसे निरन्तर बड़े और महान् बने हैं।

अपनी उत्पन्न की हुई दरिद्रतासे बचिये

लूले, लँगड़े, अंधे, बहरे या और कोई अङ्ग खराब होनेपर जो दरिद्रता आती है, उसके लिये हमारे हृदयमें तिरस्कार नहीं बल्कि दया है। ऐसी स्थितिमें ईश्वरके विधानसे हुई समझना चाहिये। इसका मिटाना असम्भव है। हम तो उन आलसियों, असंयमियों, कर्महीनोंको निर्लज्ज बताते हैं, जो कि सब तरहसे परिश्रम करनेके योग्य होकर भी अपनी गरीबी दूर करनेका सच्चा और प्रबल प्रयत्न नहीं करते और उम्रभर दरिद्रतामें पड़े रहते हैं। हम जिस दरिद्रतासे छूट सकनेकी बात कहते हैं, वह हमारी ही उत्पन्न की हुई दरिद्रता है। वह दरिद्रता व्यसन, व्यभिचार, दुष्ट बर्ताव, लापरवाही, कार्यपद्धतिका अभाव, आलस्य, ढील-ढाल, विलम्ब करनेका स्वभाव और अपनेको कोसते रहनेसे उत्पन्न होती है। संक्षेपमें जो पुष्ट प्रयत्न और नये कार्य करनेके साहस-शून्यतासे पैदा होती है, जो मिथ्या और दीन-हीन विचारोंसे उत्पन्न होती है।



आर्थिक मुसीबतोंसे यों बचिये

दारिद्र्यं पातकं लोके कस्तच्छंसितुमर्हति ।

(महाभारत, शान्ति० ८ । १४)

स्मरण रखिये, संसारमें दरिद्रता पाप है। भला कौन ऐसा मूर्ख है, जो गरीबीकी प्रशंसा करता है।

किंतु अपनी दरिद्रताके लिये हमीं जिम्मेदार हैं।

एक पाठकका पत्र है—'मेरा ध्यान, पूजन और सब धार्मिक कार्य-क्रम टूट गया है। भजन-कीर्तनमें मन नहीं लगता। कारण यह है कि मुझपर आर्थिक मुसीबत आ गयी है। रोजगारमें एकदम घाटा हो गया है। पास पैसा नहीं रहा है। मैं अपने बाल-बचोंतकका पेट पालनेमें मजबूर हूँ। इन आर्थिक चिन्ताओंने मुझे हतोत्साह और निराश कर दिया है। कोई रोजगार करनेकी हिम्मत नहीं होती। चिन्तासे बचनेके लिये सोया रहता हूँ या इधर-उधर बेकार बैठा रहता हूँ। जिंदगीमें अच्छे दिन गुजारे हैं, पर अब साहसहीन और आलस्यके वश होकर कुछ भी नया काम नहीं कर पा रहा

हूँ। मेरा दिमाग दुःख, निराशा, आत्महत्या और कायरताके गलत विचारोंसे परीशान—हैरान रहता है। ईश्वर-आराधनामें मन एकाग्र नहीं होता। डरता रहता हूँ कि भविष्यमें जिंदगीके दिन कैसे बीतेंगे; परिवारके बोझ, यश और प्रतिष्ठाकी कैसे रक्षा होगी? मेरा जीवन मरे हुए आदमीकी तरह हो रहा है। कृपया अपने सुझाव लिखें; अन्यथा मैं तो पागल हो जाऊँगा।'

इन भाईको याद रखना चाहिये कि माता लक्ष्मीके रूपमें हिंदू धनको पवित्रतासे संयुक्त करते हैं। लक्ष्मीजीकी सदा कृपा और वरदान चाहिये। धनका जीवनमें बड़ा भारी महत्त्व है। प्रारम्भसे ही योग्यताएँ ऐसी बढ़ायी जायँ कि लक्ष्मीजीकी कृपा बनी रहे—

धत्ते धारयते चैव एतस्मात्कारणाद्धनम्।

(महाभारत, शान्ति०)

अर्थात् यह धन जड पदार्थ नहीं है। धनका नाम 'धन' इसी कारणसे है कि वह (जीवनको, सांसारिक यश, प्रतिष्ठा और स्वास्थ्यको) धारण करता है और कराता है।

कहा गया है—

'श्रीः सुखस्येह संवासा।' (महाभारत, उद्योग० ४२। २१)

अर्थात माता लक्ष्मी मनुष्यके सुखकी प्राप्तिका साधन है।

जो व्यक्ति बुरे आचरण, आलस्य, उद्योगहीनता, दुश्चरित्रता, अभक्ष्य-पदार्थोंका सेवन एवं झूठ-कपट-रिश्वत या और गलत तरीकोंसे धनका उपार्जन करते हैं, उन्हें माता लक्ष्मी त्याग देती है और वे

व्यक्ति गरीब और असहाय हो जाते हैं। अतः धन-अर्जनमें सतर्क रहना चाहिये।

माता लक्ष्मी सत्य, प्रेम, ईमानदारी और सेवाभावसे कमाये हुए धनसे प्रसन्न होती हैं। अनुचित तरीकोंसे अर्जित धन बीमारी, मुकदमाबाजी, बालकोंका आवारापन या कुमतिसे व्यर्थ ही बह जाता है। उससे न यश मिलता है न प्रतिष्ठा, न स्वास्थ्य प्राप्त होता है, न यौवन स्थिर रहता है, न बन्धु-बान्धव ही प्रसन्न रहते हैं—

रमन्तां पुण्या लक्ष्मीर्याः पापीस्ता अनीनशम्।

(अथर्ववेद ७। ११५। ४)

अर्थात् प्रत्येक बुद्धिमान् व्यक्तिको सदा यह स्मरण रखना चाहिये कि पुण्य (ईमानदारी, सेवाभाव, सहयोग) से कमाया हुआ धन ही मनुष्यको जीवनमें सुख देता है। जो पापयुक्त धन है (अर्थात् झूठ, कपट, रिश्वत, कालाबाजार, अनैतिकता, पापाचारसे कमाया धन है), उसको मैं नाश करनेवाला बनूँ।

अतः माता लक्ष्मीके नित्य निवासके लिये हमें उन अनैतिक तरीकोंको तुरंत त्याग देना चाहिये, जिन्हें हमने अपना रक्खा है। पापके घरमें कदापि माता लक्ष्मीका निवास नहीं हो सकता। वे हर प्रकारकी गंदगी—शारीरिक, मानसिक, आत्मिक अशुद्धिको नापसंद करती हैं। हमारा घर स्वच्छ रहे, हमारा मन पूजाके मन्दिरकी तरह शुद्ध रहे, हमारी आत्मा पवित्र रहे; हमारे कमाईके साधन समाजके लिये पवित्र रहें, तो निश्चय ही माता लक्ष्मीजीका हमारे यहाँ स्थायी निवास हो सकता है।

लक्ष्मी-प्राप्तिके उपाय

स्वयं माता लक्ष्मीजीने धन-प्राप्तिके उपाय स्पष्ट कर दिये है। सुनिये—

धनमस्तीति वाणिज्यं किंचिदस्तीति कर्षणम्।
सेवा न किंचिदस्तीति भिक्षा नैव च नैव च॥

हे पुरुषो! धन हो तो व्यापार करना चाहिये। थोड़ा धन हो तो खेती करनी चाहिये। यदि कुछ भी न हो तो नौकरी ही सही, परतु भीख तो कभी भी नहीं माँगनी चाहिये।

लक्ष्मीजी कहती हैं—

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः।

अर्थात् मैं उसी पुरुषश्रेष्ठके पास जाती हूँ और ठहरती हूँ जो उद्योगपरायण है। जो व्यर्थ आलस्यमें नहीं बैठता और कुछ-न-कुछ उद्योग करता है। उद्योगके द्वारा ही धनकी प्राप्ति होती है, धन निरन्तर बढता है। खोया हुआ धन उद्योगसे फिर प्राप्त हो जाता है। अतः आलस्य त्यागकर समयकी गति और अपनी शक्तिके अनुसार श्रम कीजिये। मितव्ययतापूर्वक व्यापार कीजिये। कुछ-न-कुछ किसी भी दिशामें श्रम कीजिये। सच्चा परिश्रमी व्यापार, कृषि, नौकरी चाहे कुछ भी करे, उसमें जरूर धन प्राप्त करेगा।

कहा है—

भव क्रियापरो नित्यम्।

(वाल्मीकिरामायण, किष्किन्धा० २०१। ७)

हे पुरुषो! तुम सदा (श्रम, व्यापार, सेवा या जो भी अपना कार्य

हो उसके) करनेमें तत्पर रहो । खाली मत बैठो । लक्ष्मीके निवासके लिये अनुकूल वातावरण बनाओ ।

लक्ष्मीजीके अनुकूल वातावरण तैयार करें

महाभारतकी एक कथा बड़ी प्रेरक है। लीजिये उसे सुनिये—

एक दिन लक्ष्मीजी इन्द्रके दरवाजेपर पहुँचीं।

बोलीं—'हे इन्द्र ! मैं तुम्हारे यहाँ निवास करना चाहती हूँ ।'

इन्द्रने आश्चर्यसे कहा—

'कमले ! आप तो असुरोंके यहाँ बड़े आनन्दपूर्वक रहती थीं। वहाँ आपको कुछ कष्ट न था । मैंने कितनी ही बार आपको अपने यहाँ बुलानेका महान् प्रयत्न किया, परंतु तब आप न आयीं और आज बिना बुलाये मेरे द्वारपर पधारी हैं । सो देवि ! इसका कारण मुझे समझाकर कहिये ।'

लक्ष्मीजीने प्रसन्नमुख उत्तर दिया—

'इन्द्र ! कुछ समय पूर्व असुर बड़े धर्मात्मा थे । वे कर्तव्यपरायण रहते थे । अपना सब काम नियमित रूपसे करते थे; परंतु उनके ये सद्गुण धीरे-धीरे नष्ट होने लगे ।

'प्रेमके स्थानपर ईर्ष्या-द्वेष और क्रोध-कलहका उनके परिवारोंमें निवास रहने लगा । अधर्म, दुर्गुण और तरह-तरहके व्यसनों (शराब, तम्बाकू, मांसभक्षण) की वृद्धि होने लगी । इन दुर्गुणोंमें भला मैं कैसे रह सकती हूँ ?

'मैंने सोचा कि इस दूषित वातावरणमें अब मेरा निर्वाह नहीं हो सकता । इसलिये दुराचारी असुरोंको छोड़कर मैं तुम्हारे यहाँ (सद्गुणोंमें) निवास करने चली आयी हूँ ।'

इन्द्र चकित रह गये। लक्ष्मीजीके निवास करनेका रहस्य उन्हें मालूम होने लगा। उन्होंने कहा—

'हे भगवती! वे और कौन-कौन-से दोष हैं, जिनके कारण आपने असुरोंको छोड़ा है, कृपा करके मेरे तथा आनेवाली संतानके लिये उन त्रुटियोंको विस्तारपूर्वक मुझे बतलाइये, जिससे मैं भविष्यमें सावधान रहूँ।'

लक्ष्मीजी इन्द्रपर विशेष कृपालु हुईं। उन्होंने वे सब रहस्य बता दिये, जिनके कारण उन्होंने असुरोंका परित्याग किया था।

लक्ष्मीजीने कहा—'इन्द्र! जब कोई वयोवृद्ध सत्पुरुष ज्ञान-विवेकका उपदेश करते थे, तो असुरलोग उनका उपहास करते थे या उपेक्षासे निद्रा लेने लगते थे। यह मुझे बुरा लगा।

'वृद्ध और गुरुजनोंके सम्मानका विचार न करके उनकी बराबरीके आसनपर बैठते थे। सत्कार, शिष्टाचार और अभिवादनकी बात वे लोग भूल गये थे। लड़के माता-पितासे मुँहजोरी करने लगे थे। वे बहुत राततक घूमते-फिरते, आवारागर्दी करते, चिल्लाते रहते; न स्वयं सोते, न दूसरोंको सोने देते थे। ये अकारण ही वैर-विवाद मोल ले लेते थे। यह मुझे अनुचित लगा। अतः मैं वहाँसे बुरा मानकर चली आयी।

'असुरोंकी स्त्रियोंने पतियोंकी आज्ञा मानना छोड़ दिया था। पुत्रको पिताकी परवा न रही। शिष्य आचार्योंकी तरफ मुँह मटकाने लगे। समाजकी समस्त मान-मर्यादाएँ जाती रहीं।

'वे लोग सुपात्रोंको दान और लँगड़े-लूले भिखारियोंको भिक्षा न देकर धनको विलास—ऐश-आराममें खर्च करने लगे। घरके बच्चोंकी परवा न करके बूढ़े-बूढ़े पुरुष चुपचाप मधुर मिष्टान्न अकेले ही खाते। जहाँ ऐसे निर्लज्ज आचरण होते हैं, उनके यहाँ इन्द्र! मैं भला किस प्रकार रह सकती हूँ।

'ये असुरलोग फलदार और छायादार हरे-भरे वृक्षोंको काटने लगे। दिन चढ़ेतक सोते रहते थे, प्रहर रात्रि गयेतक खाते रहते, भक्ष्य और अभक्ष्य अन्नका विचार न करते। सत्कर्म करना तो दूर, दूसरोंको करते देखते तो उसमें भी विघ्न उपस्थित करते।

'स्त्रियाँ फैशन, आलस्य और व्यसनोंमें व्यस्त रहने लगीं। घरमें अनाजका अनादर होने लगा, चूहे खाकर अन्नको नष्ट करने लगे। खाद्य पदार्थ खुले पड़े रहते, जिन्हें कुत्ते-बिल्ली चाटते।

'घरमें ही पापाचार, स्वार्थ, पक्षपात बढ़ गया। असुरोंकी वृत्ति मादक द्रव्योंमें, जुए-शराब-मांसमें, नाच-तमाशोंमें बढ़ने लगी। लापरवाहीका हर जगह राज्य हो गया। ऐसी दशामें नौकरोंकी खूब बन पड़ी। वे चुरा-चुराकर अपना घर भरने लगे। उनके ऐसे आचरण देखकर मेरा जी जलने लगा। दुखी होकर एक दिन मैं चुपचाप असुरोंके घरोंसे चली आयी। अब वहाँ दरिद्रताका ही निवास होगा।

'हे इन्द्र! तुम ध्यानपूर्वक सुनो। मैं परिश्रमी, कर्तव्यपरायण, विचारवान्, सदाचारी, संयमी, मितव्ययी, जागरूक और नियमित

उद्योग करते रहनेवालेके यहाँ निवास करती हूँ। जबतक तुम्हारा आचरण धर्मपरायण रहेगा, तबतक तुम्हारे यहाँ मैं बनी रहूँगी।'

लक्ष्मीके इस कथनने इन्द्रको एक नयी शक्ति दी।

उन्होंने बड़ी श्रद्धा और आदरपूर्वक लक्ष्मीजीको अभिवादन किया और कहा—

'हे कमले! आप मेरे यहाँ सुखपूर्वक रहिये। मैं ऐसा कोई अधर्ममय आचरण नहीं करूँगा, जिससे नाराज होकर आपको मेरे घरसे जाना पड़े।'

× × ×

लक्ष्मीजीका यह कथन याद रखिये और उसपर आचरण कीजिये—

स्थिता पुण्यवतां गेहे सुनीतिपथवेदिनाम्।
गृहस्थानां नृपाणां वा पुत्रवत्पालयामि तान्॥

'मैं नीतिमार्गपर चलनेवाले, पुण्यकर्म करनेवाले गृहस्थ या राजाओंके यहाँ टिकती हूँ और ऐसोंका मैं पुत्रके समान पालन करती हूँ।'

हम अपनी योग्यताएँ—चाहे वे व्यापार, कृषि या नौकरी किसी भी दिशामें हों निरन्तर बढ़ाते रहें; पूरा-पूरा परिश्रम करें; मितव्ययतासे निर्वाह करें, संयमी रहें, दैवीसम्पदाका सेवन करें, तो लक्ष्मीजीके सदा ही कृपापात्र बने रह सकते हैं। उद्योगी, परिश्रमी और मितव्ययीको लक्ष्मीजी सदा प्यार करती हैं।



वायुमण्डलमें फैला हुआ गुप्त विचार-प्रवाह

भारतीय ऋषियोंने ऊँचे पर्वतीय स्थानोंमें अपने आश्रम बनाये, पहाड़ोंकी चोटियोंपर शास्त्रोंका निर्माण किया, हिमालयकी कन्दराओंमें मौलिक चिन्तन किया। इसका एक मनोवैज्ञानिक कारण है।

अंग्रेजीके प्रसिद्ध लेखक डॉ० सैमुअल जानसनने जब साहित्य-रचनाका कार्य प्रारम्भ किया था, तो उन्हें लन्दनमें तीसरी या चौथी मंजिलपर कमरा लेना पड़ा था। उनकी प्रसिद्ध पुस्तकोंकी रचना प्रायः इस ऊपरके कमरेमें ही हुई थी। उनका अनुभव था कि नीचेके कमरोंमें मनमें भारीपन रहता है।

इसी प्रकार प्रसिद्ध उपन्यासकार सर वाल्टर स्काट भी अपने उपन्यास ऊँची मंजिलवाले एक कमरेमें ही लिखा करते थे। उनके सामनेके मकानमें एक नारी प्रातःकाल उनकी कलमको निरन्तर

अविराम गतिसे कागजपर दौड़ते देखती थी। उसे ऐसा प्रतीत होता मानो कोई भूत यह कार्य कर रहा हो।

इन दोनों लेखकोंका अनुभव था कि ऊपरी मंजिलपर रहनेसे उनके मनमें विचारोंका तीव्र प्रवाह आता रहता है, लेकिन नीचे सड़कवाले कमरोंमें बैठकर वे नहीं लिख पाते। उनकी एकाग्रता बार-बार भंग हो जाती है और आदमियों तथा ताँगा, मोटर इत्यादिके तुमुल कोलाहलसे मनमें भारीपन अनुभव होता है। मनकी उपजाऊ भूमिसे विचार उतनी तीव्रतासे उत्पन्न नहीं होते हैं।

मनके इस भारीपनका क्या कारण है?

पृथ्वीके पासके नीचे स्थानों, सड़कोंके किनारोंके कमरों, दूकानों, बाजारोंमें स्थित मकानोंमें मनके भारीपनका कारण बाहरी कोलाहल है। उस शोर-गुलसे एकाग्रता भंग होती है। इसके अतिरिक्त आधुनिक मनोवैज्ञानिकोंने एक और कारण खोज निकाला है।

उनका कथन है कि हमारे विचारोंपर पहुँच तथा स्तरका भी प्रभाव पड़ता है। वायु-मण्डलमें नीचेके हिस्सोंमें सबसे अधिक वायु रहती है। इसी प्रकार मनुष्यकी ऊँचाईके बराबर तकके वायुमण्डलमें हमारे समाजके अच्छे, बुरे, क्रोध, आवेश, चिन्ता, घृणा, स्वार्थके सांसारिक विचारोंका बड़ा तेज प्रवाह बहता रहता है। साधारण विचार इस सामान्य पहुँचतक घूमते-फिरते हैं।

हमारे समाजमें नाना प्रकारके अच्छे-बुरे व्यक्ति हैं। सभीके

पास विचार-यन्त्र हैं । उनके मस्तिष्कोंसे निरन्तर प्रतिक्षण अनेक विचारोंका प्रवाह बहता रहता है। यह एक दैनिक मनो-वैज्ञानिक प्रक्रिया है। हम जबतक नीचेके धरातलपर रहते हैं, इन सैकड़ों-हजारों प्रकारके विचारोंकी लहरों या कम्पनोंसे प्रभावित हुए विना नहीं रहते।

यदि हम कमजोर मस्तिष्कवाले हैं, तो लोगोंके इस सामान्य विचार-प्रवाहसे हम बड़ी आसानीसे प्रभावित हो जाते हैं। हमें जो जैसा कहता है, हम वैसा ही मान बैठते हैं; हम जैसा किसीको कहते-सुनते हैं, फौरन उसीपर विश्वास कर लेते हैं। हम दूसरोंके विचारोंके तूफानके विरोधमें अपने मनको दृढ़ नहीं रख पाते। नीचेके वायुमण्डलमें गुप्त विचार-प्रवाह पूरी तरह भरा रहता है और प्रतिक्षण अधिकाधिक भरता रहता है। यह विचार-प्रवाह प्रत्येक चलनेवाले आदमीके मस्तिष्कमेंसे निकलता और प्रवेश करता है। यह प्रवेश और बाहर निकलना उसी अनुपात या मात्रामें होता है, जिस मात्रामें मनुष्यका मन सबल या निर्बल होता है। जिस आदमी-का मस्तिष्क कार्यमें लगा हुआ होता है, अर्थात् स्वयं अपने ही विचारोंमें मग्न रहता है या बाहरवाले विचार-प्रवाहसे ज्यादा सशक्त होता है, उसपर वायुमण्डल या आकाशमें स्थित शुभ और अशुभ विचारोंका प्रभाव नहींके बराबर पड़ता है।

जबतक हमारा मन कार्य करता रहता है, तबतक उसमें दृढ़ता रहती है। वह अपने विचारोंकी एकाग्रतासे मजबूत बना रहता है।

कार्य करते हुए मस्तिष्कपर अशुभ विचारोंका प्रभाव नहींके बराबर पड़ता है, किंतु जब वही मस्तिष्क फालतू या खाली रहता है, अपने कामसे छूटता है, तब उसके आस-पासके आकाशमें फैले हुए विचार बड़ी शीघ्रतासे उसके दिमागपर असर डालते हैं। यही कारण है कि हमारे यहाँ मनको सदा शुभ और कल्याणकारी विचारोंसे परिपूर्ण रखनेकी सलाह दी गयी है।

स्वयं अनुभव करके देखिये

आप स्वयं कभी अनुभव करके देखिये। नीचेका कमरा छोड़ ऊपरके कमरेमें या दूसरी मंजिलपर रहने लगिये। आप अनुभव करेंगे कि यहाँ अधिक रहनेको मन चाहता है। यहाँ आपको अधिक शान्तिका अनुभव होता है। यहाँ अच्छे और मौलिक विचार आपके मनमें आते हैं। आपकी तबीयत करेगी कि हम और भी ऊपर चलते; तीसरी या चौथी मंजिलपर रहते, पृथ्वीके धरातलसे और भी ऊँचे, और भी ऊपर उठते जाते। ज्यों-ज्यों ऊपर उठते हैं, त्यों-त्यों अन्य और शुभ्र विचारोंका वायुमण्डल आता जाता है।

भारतके ऋषि-मुनियोंने ऊँचे पर्वतीय प्रदेशोंमें अपने आश्रम बनाये। पहाड़ोंकी चोटियोंपर बैठकर उन्होंने धर्मग्रन्थोंका निर्माण किया। हिमालयकी ऊँची कन्दराओंमें रहकर वहाँके स्निग्ध, शीतल तथा शान्तिदायक वातावरणमें सांसारिक कोलाहलसे दूर रहकर उन्होंने मौलिक चिन्तन किया। वहाँ उन्हें आन्तरिक शान्तिका गूढ़ अनुभव हुआ। पं० श्रीराम शर्मा आचार्यने अपनी एक वर्षकी

पर्वतीय स्थानोंकी साधनाके आधारपर लिखा है कि परमात्माने ये स्थान विशेष प्रकारसे साधना, मनन और चिन्तनके लिये ही बनाये हैं।

जब समीपके वातावरणमें शान्ति होती है, तो साधारण ऊँचाईसे ही काम चल जाता है, लेकिन बड़े-बड़े शहरों (जैसे लंदन, पेरिस, बम्बई, कलकत्ता इत्यादि) में जहाँ दूसरी और तीसरी मंजिलोंपर भी वैसा ही कोलाहल रहता है, जैसा पहली मंजिलपर। वहाँ दूसरी और तीसरी मंजिलसे भी ऊँचा उठकर पाँचवीं, छठी मंजिलपर उतनी शान्ति मिल पाती है, जितनी शान्त स्थानोंपर दूसरी मंजिलपर मिलती है। जगत्‌की चहल-पहल इन ऊँचे स्थानोंपर न्यून होती जाती है और भव्य विचार प्रचुरतासे आते हैं।

यदि आपको शान्ति चाहिये, यदि आप भव्य विचार चाहते हैं, तो आपको चाहिये कि ऊँचे कमरोंमें रहें। ऊँचे स्थानोंपर बैठकर चिन्तन और स्वाध्याय, पूजा-पाठ एवं लेखन इत्यादि कार्य करें। उन्नति और भव्य विचार ऊपर ही आकाशमें फैले रहते हैं। आकाश शुभ विचारोंसे भरा रहता है। हमें अपना अधिकतर समय भव्य चिन्तनमें ही व्यतीत करना चाहिये। आप अपने शहरके बाहर या किसी बागमें अवश्य ऐसा स्थान खोज सकते हैं जहाँ उच्चतर चिन्तन हो सकता है। नहीं तो, अपने ही मकानकी छतका उपयोग कर सकते हैं। किसी वृक्षोंके नीचे स्थान बना सकते हैं। यहाँ बैठकर आप अपने उद्‌देश्य और कार्य-प्रणालीपर विचार करें। भावी उन्नतिकी नयी योजनाएँ या धर्म-ग्रन्थोंका अध्ययन करें।



भारतीय मूर्तियाँ और चित्र आपको प्रेरक शान्ति-संदेश देते हैं

एक शान्तिदायक अनुभव

श्रीरोनाल्ड निक्सनको पहली जर्मन-लड़ाईके बाद बड़ी अशान्ति हुई। आप उस युद्धमें हवाई जहाजके युद्ध-अफसर थे। उन्हें हत्या, मारकाट, मृत्युका ताण्डव, खूँरेजी, भयंकर रक्तपात, सैकड़ों लाशोंको देखना पड़ा था। इन भीषण दृश्योंको देखकर उनके मनमें बड़ी उथल-पुथल और अशान्ति पैदा हो गयी थी। उनका मन बुरी तरह बेचैन और असंतुलित हो गया था। दिनभर बेचैन रहते थे। चेहरा अशान्त, तो मन उद्विग्न! उनके मनको शान्त, संतोष और धैर्य देनेवाली कोई बात न रह गयी थी। वे बड़े अनमने और संतप्त रहते थे।

संयोगकी बात, एक बार उन्होंने अपने ध्यानको केम्ब्रिज विश्वविद्यालयमें मौजूद बुद्धभगवान्की शान्त मुसकुराती प्रेरणादायक मूर्तिपर लगाया।

अहह ! कितना मोहक-मादक था बुद्धका वह चेहरा। उसके पीछेसे जैसे शान्तिदायक संदेश निकल रहा था, 'हे ईश्वरके पुत्रो ! तुम्हारा जीवन शान्ति और तृप्तिके लिये है। आनन्दित और प्रसन्न रहनेके लिये है। मुसकुराते रहो। तृप्त रहो। चिन्ताका त्याग कर दो।' ऐसा लगता था कि उस मूर्तिसे ये उत्साह-वर्द्धक विचार तेजीसे निकल रहे हों।

जैसे शीतल फुहारोंसे धीरे-धीरे अग्नि शान्त हो जाती है, वैसे ही भगवान् बुद्धकी मधुर मूर्तिके दर्शन करने तथा उसपर अपना ध्यान केन्द्रित करनेसे श्रीरोनाल्ड निक्सनको अकथनीय शान्ति मिली। तबसे वे पूर्वीय साधनाओंके अनुगामी परम वैष्णव बन गये और अपना जीवन इन्हींमें बिताया।

यह अनुभव प्रो० लालजीराम शुक्लने अपने अंग्रेज मित्रके विषयमें लिखा है। इसी प्रकारका एक अनुभव अमेरिकन लेखक श्रीडेल कार्नेगी महाशय लिखते हैं—

'जब कभी मुझे किसी सांसारिक चिन्ता या कठिनाईका अनुभव होता है, मैं परीशान-सा हो उठता हूँ, तब मैं वाशिंगटनके राजप्रासादमें रक्खे हुए प्रेसीडेंट लिंकनके शान्त चित्रपर अपना ध्यान जमाता हूँ। इससे मेरे मनमें शान्त-भाव, साहस और नयी प्रेरणाएँ आ जाती हैं। मै तरोताजा हो अपने कर्तव्यमें फिर जुट जाता हूँ।'

भारतीय चित्रो और मूर्तियोंमें असीम प्रेरणाएँ और दिव्य संदेश छिपे हुए हैं। ये चित्र या मूर्तियाँ उन दिव्य महापुरुषों, वीरों,

नेताओं, धर्मप्रचारकों, विद्वानो, पथ-प्रदर्शकों, समुन्नत आत्माओंके हैं, जो प्राचीन कालमें हम और आपकी तरह इसी भौतिक संसार, इसी समाजके प्राणी थे । इसी पृथ्वीपर चलते-फिरते और हमारी तरह हर्ष, शोक, विषाद, उत्साह, दर्प, संघर्ष करते थे, पर जो अपने उद्देश्यों और विचारोंके लिये निरन्तर गतिमान् रहे, प्रयत्नशील रहे, मर मिटे और अमर हो गये । जन-मानसमें सदाके लिये बस गये । उनके शील, गुण, विचार, मान्यताएँ, विश्वास, संकल्प जनतापर स्पष्ट हो गये । प्रत्येक व्यक्ति उनके चित्रोंकी पृष्ठ-भूमिसे आज भी उन्हींकी गुप्त शक्तियोंको और अतुलित सामर्थ्य तथा शक्तिको खींचता है ।

चित्र और मूर्ति-दर्शनकी गुप्त मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया

घरमें रक्खी हुई प्रत्येक मूर्ति या चित्र एक वातावरण निर्माण करता है । मनुष्यके चर्मचक्षुओंसे जो चित्र, मूर्तियाँ या आकृतियाँ दृश्य या वातावरण प्रतिदिन दिखायी देता है, पुनः-पुनः जिन चित्रोंपर हमारी दृष्टि पड़ती है, उन सबका गुप्तरूपसे सूक्ष्म प्रभाव हमारे गुप्त मन (unconscious mind) पर पड़ता रहता है । चुपचाप हमारा मन इन चित्रोंके संदेशों, विचारों या प्रेरणाओंको ग्रहण करता जाता है । इन चित्रों अथवा मूर्तियोंमें चित्रित भावनाओं, स्थितियों और मुद्राओंके अनुसार हमारे मनरूपी परदेपर वैसे ही शुभ-अशुभ विचार उत्पन्न होते हैं और वैसी ही मनःस्थितियाँ बनती हैं । ये मानस-चित्र सदा अपने साथ कुछ विशेषताएँ या गुण-अवगुण लिये रहते हैं । चित्रोंके विचार धीरे-धीरे हमारे सम्पूर्ण

शरीर और मनमें व्याप्त हो जाते हैं। मनके कण-कणमें प्रविष्ट होकर उसे तरोताजा और स्फूर्तिमान् कर देते हैं।

मनुष्यका गुप्त मन कैमरेके सूक्ष्मदर्शी लेन्सकी तरह है। कुछ कैमरोंकी शक्ति इतनी तीव्र होती है कि उनसे बहुत सूक्ष्म और सच्चे बोलते-से चित्र खिंच जाते हैं। बाहरका जैसा दृश्य होता है, वह कैमरेमें नेगेटिव-रूपमें आ जाता है। फिर इन्हींको पोजेटिवमें छापनेपर आकृतियाँ आ जाती हैं। छोटे-से कागजपर बाह्य जगत् या व्यक्तिके सब अवयव या दृश्य उभर आते हैं।

इसी प्रकार हमारे घरों, दूकानों, पाठशालाओं या अपने इर्द-गिर्द जिन चित्रोंको हम प्रतिदिन देखते हैं, चुपचाप अपने मनरूपी कैमरेपर अङ्कित करते चलते हैं। ये गुप्त मनमें जम जाते हैं। इन चित्रोंमें अङ्कित हाव-भाव, मुख-मुद्राएँ, आकृतियाँ, शुद्ध या अशुद्ध विचार, उनमें व्याप्त भावनाएँ और आदर्श भी अङ्कित होते जाते हैं। हमारे आसपास या दृष्टिके सामने जो चित्र अनेक बार आते हैं, वे सदा चुपचाप हमें अच्छी या बुरी प्रेरणाएँ दिया करते हैं। उनमें चित्रित व्यक्तियों, नेताओं, देवी-देवताओं, धर्म-प्रचारकों, ऐतिहासिक महापुरुषों और भव्य आत्माओंके गुणोंको हम अपने चरित्रमें धारण करते और अज्ञातरूपसे क्रमशः उन्हीं-जैसे बनते जाते हैं।

चित्रों और मूर्तियोंकी एक भाषा है

जैसे लेखक शब्दोंके माध्यमसे अपने विचार प्रकट करता है, गायक स्वरके माध्यमसे अपना संदेश देता है, वैसे ही चित्रकार

रंगों तथा आकृतियोंसे अपनी बात कहता है। चित्रकार जिस भाषामें अपने विचार प्रकट करता है, वही उसका चित्र है। वह चित्रके माध्यमसे आपसे कुछ बातोंको कहना चाहता है, जिसे बुद्धिमान् देखनेवाले समझ सकते है। उसके चित्रमें व्याप्त गुप्त संदेशोंको ग्रहण कर सकते हैं।

हमारे अवतारों तथा देवी-देवताओंकी, रामायण-महाभारत-पुराणोंमें वर्णित भव्य कथाओंसे सम्बन्धित धार्मिक चित्रोंकी प्रत्येक आकृतिमें, हाव-भाव, अङ्ग-प्रत्यङ्ग, मुख-मुद्राओंमें सर्वत्र दिव्य संकेत भरे रहते हैं। समझदार व्यक्ति इनसे पुराने प्रसंग याद कर लेता है। उनके गुप्त मर्मको जीवनमें उतारता है और उनके द्वारा जीवनको ढालता है।

अध्यापन करनेवाले बन्धु जानते हैं कि जो विचार विद्यार्थियोंके मनपर स्थायी रूपसे अङ्कित करने होते है, वे दीवारपर टँगे नक्शों, चार्टों, चित्रों, मूर्तियों और काले तख्तेपर अङ्कित विविध रेखाओंद्वारा किये जाते हैं। बच्चे जो चित्र बार-बार देखते हैं, वैसे ही भाव ग्रहण करते जाते हैं। यही आदत बड़े मनुष्यकी भी है। वह भी अपने इर्द-गिर्द जिन चित्रोंको देखता है, वैसा ही बनता जाता है! इन चार्टोंकी सहायतासे अध्यापकका भाषण बच्चेका अविकसित मन सहज रूपमें ग्रहण कर लेता है। ये शब्द उसके कान सुनते हैं और नेत्र चित्रोंसे एक विशेष भावको ग्रहण करते हैं। इस प्रकार चित्र और मूर्तियाँ हमारे पुराने संस्कारोंको बदलकर नये शुद्ध सात्त्विक और पवित्र संस्कारोंका निर्माण करते हैं।

ऊपर चित्रोंसे बच्चोंके कोमल मनपर होनेवाले मनोवैज्ञानिक प्रभावोंका संकेत किया गया है। वैसा ही प्रभाव विकसित दिमागोंपर भी पड़ता रहता है। हम अपनी अच्छी या बुरी प्रवृत्तियोंके अनुसार चित्र चुनते हैं, फिर उन्हींके भावोंको गुप्त मनमें धारण करते हैं। कभी-कभी बड़ी उम्रके व्यक्तितकको यह मालूम नहीं हो पाता कि उसने गलत चित्रोंका चुनाव कर लिया है और वह उनसे गलत संकेत (Suggestions) पा रहा है।

उत्तेजक और अश्लील चित्रोंका दूषित प्रभाव

सिनेमामें चलते-फिरते, प्रायः उत्तेजक अश्लील चित्र रहते हैं। अभिनेता और अभिनेत्रियोंके हाव-भाव, विविध मुखमुद्राएँ दर्शकोंके मनपर तेजीसे अङ्कित होती हैं; क्योंकि चल-चित्रोंकी तस्वीरें बोलती-गाती और चलती-फिरती हैं। हाव-भाव करती हैं, परस्पर बातचीत, नृत्य इत्यादि कार्यकलाप करती हैं। हमें अपनी ओर आकृष्ट करती, लुभाती हैं। प्रायः फिल्मोंके चित्र कुरुचिपूर्ण होनेसे कामोद्दीपक दृश्य हमारा गुप्त मन पकड़ लेता है। बार-बार गंदे फिल्म देखनेसे ये वासनाएँ संस्कारोंके रूपमें बदल जाती हैं। फिर हम अपने दैनिक जीवनमें वही कार्य करने लगते हैं। अतः अश्लील एवं उत्तेजक चित्रोंको देखना पापसे कम नहीं है। गंदे फिल्म मानसिक पापकी सृष्टि करते हैं, क्योंकि इन्हींसे नैतिक पतन प्रारम्भ होता है। एक बार मनमें कुवासना जग जाती है या मनुष्यकी पापमय वृत्तियाँ उमड़ उठती हैं, तो बड़े अनर्थ कराती

हैं। अतः इन उत्तेजक चित्रोंसे सावधान रहनेका उपदेश दिया गया है—

अपेहि मनसस्पतेऽप काम परश्चर।
(अथर्ववेद २० । ९६ । २४)

मानसिक पापोंसे सदा सावधान रहिये। उनका परित्याग कर दीजिये। मनसे उन कुवासनाओंको निकाल दीजिये, जो दुष्कर्म कराते हैं।

अपास्मत् सर्वं दुर्भूतम्। (अथर्ववेद ३ । ७ । ७)

हे मनुष्यो! अपने गुप्त मनके सब दुर्भावों, मनोविकारों और कुवासनाओंको निकाल बाहर करो। बाहरी शत्रु उतनी हानि नहीं कर सकते हैं, जितनी आन्तरिक शत्रु करते हैं।

अश्लील और गंदी वासनाओंको भड़कानेवाले चित्ररूपी शत्रुओंको घर, परिवार, दूकानों, संस्थाओंसे निकाल दीजिये।

चित्रोंका चुनाव सावधानीसे कीजिये

आप मित्रोंका चुनाव, घरमें रिश्तेदारों, नये सम्बन्धों, वर-वधू इत्यादिके चुनावमें बड़ी सावधानी बर्तते हैं। उसी प्रकार प्रत्येक चित्र भी आपका एक मित्र ही है। यदि मित्र गंदा है, तो उसके कुसंगसे निश्चय ही आप अवनतिकी ओर चलेंगे। इसलिये ऐसे चित्र चुनिये, जिनसे मनमें शुभ विचार ही उत्पन्न हों; मनमें उत्साह, पौरुष, साहस और नव प्रेरणाएँ ही आयें।

सर्वश्रेष्ठ चित्र हिंदू-धर्म, भारतीय संस्कृति, तीर्थ-स्थलों, पावन

प्रसंगोंसे सम्बन्धित हो सकते हैं, जिनसे देशकी गौरवमयी संस्कृति स्मृतिपटलपर अङ्कित रहे। वेद, पुराण, गीता, रामायण, महाभारत इत्यादि पवित्र ग्रन्थोंसे सम्बन्धित असंख्य चित्र आपको प्राप्त हो सकते हैं। देवी-देवताओं— भगवान् राम, भगवान् श्रीकृष्ण, हनुमान्, विष्णु, शिव, आदर्श धर्मगुरुओं, नेताओं तथा ऐतिहासिक महापुरुषोंके चित्र हमें सत्पथपर चलाते हैं। प्राकृतिक दृश्योंके चित्र हमें प्रकृतिके साहचर्यकी भव्य प्रेरणाएँ देते हैं। हमारे देवत्वको निखारते हैं।

योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण, मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम, भगवान् गौतम बुद्ध, वीरवर शिवाजी, महाराणा प्रताप, गुरु गोविन्दसिंह, लोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधी, महामना मालवीयजी इत्यादिके चित्र तो प्रत्येक घरमें रहने अनिवार्य है। इनसे घरमें पवित्र आत्माओंका स्थायी और प्रेरक निवास रहता है।

वे ही चित्र चुनिये, जिनमें मुख-मुद्राएँ प्रसन्नता, मधुर मुसकानसे युक्त तथा उल्लासमय हों। जिनसे मन तरोताजा रहे, शान्ति और नव प्रेरणाएँ पाता रहे। यह याद रखिये—

'अग्निना अग्निः समिध्यते।' (ऋग्वेद १।१२।६)

अग्निसे अग्नि और बड़ी आत्मासे छोटी आत्मा प्रदीप्त होती है। महान् पुरुषों, हिंदू देवी-देवताओंके चित्र दीप्तिमान् आत्माओंके चित्र हैं। इन चित्रोंरूपी दीप्तिमान् आत्माओंके शान्तिदायक और प्रेरक वातावरणमें रहकर अपनी आत्माको प्रदीप्त कीजिये।



शान्तभावका अभ्यास किया करें

अशान्त व्यक्ति चिन्तातुर रहता है। वह जिस कामको हाथमें लेता है, उसकी सफलताके विषयमें घबराता रहता है, जीवनकी विपदाओंको बढ़ा-चढ़ाकर देखता है और कोई भी जिम्मेदारीका कार्य अपने ऊपर नहीं ले पाता। बात-बातमें घबरानेकी मनोवृत्ति उसकी असफलताका कारण होती है।

मनुष्यको शान्त रहना चाहिये। उस व्यक्तिकी सफलता निश्चित है जो संकट और विपद्में अपना मन शान्त और संतुलित रखता है। उत्तेजित और अशान्त मनुष्य कुछ भी उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य अपने हाथमें नहीं ले सकता। अतः सदा विपत्तियोंमें भी शान्त भाव बनाये रखनेका अभ्यास रखना चाहिये।

किसी नये गुणको विकसित करनेका पहला नियम उस गुणकी अपने व्यक्तित्वमें कल्पना करना है। आप सोचिये कि मुझमें साहस है, तो साहसकी कल्पनासे साहस आपके कार्योंमें धीरे-धीरे प्रकट होने लगेगा। आप अपनेको शान्त रहने (क्रोधसे बचने) की कल्पना कीजिये, तो निश्चय ही शान्तभाव आपके चरित्रमें प्रकट होने लगेगा। धैर्य, कष्ट-सहिष्णुता आदिकी मनमें कल्पना करनेसे ये दोनों गुण प्रकट हो जायँगे। सहिष्णुता ही धैर्यका मूल है। अध्यवसाय धैर्यका सहारा है। जिस गुणको धारण करना है, उसकी कल्पना, पुनः-पुनः उसपर विचार और चिन्तन करना चाहिये।

शान्त और धैर्य भावोंकी मधुर कल्पनाओंसे मनकी चित्रपटीको सजाइये। अशान्त व्यक्तिको कोई नहीं पूछता, शान्त भाव-

वालेकी सर्वत्र ही पूजा होती है। भयंकर आँधी और घोर तूफानमें जो नाविक मनका संतुलन बनाये रह सकता है, वही असली अर्थमें समाजका कर्णधार बन सकता है। बिना धैर्यके कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं हो सकता। अधीर होनेसे मनुष्य सम्पत्तिमें भी विपत्ति खींच लाता है।

शान्तभाव क्लेशोंसे मुक्त करनेवाला है। साधारण व्यक्ति कष्टों और कठिनाइयोंको देखकर अधीर हो उठता है, पर शान्त मन-वाला उसे बिना हानिके सँभाल जाता है। बड़े-बड़े कष्ट उसपर आते हैं और उसे बिना हानि पहुँचाये ऊपरसे निकल जाते हैं। उसका आत्म-विश्वास आसपासके वातावरणमें भी शक्ति और साहसका संचार कर देता है। शान्तभावको अपने चरित्रमें विकसित करनेके कुछ अनुभूत उपाय इस प्रकार हैं—

किसी शान्त-मुद्राके चित्रपर ध्यान केन्द्रित करना

जिस चित्रपर हमारे नेत्र बार-बार पड़ते हैं, उसका गुप्त वैज्ञानिक प्रभाव हमारे मनपर पड़ता है। उस चित्रके गुण हमारे चरित्रमें क्रमशः विकसित होते हैं। उसीसे हमारे संस्कार बनकर हमारे जीवनकी नाना क्रियाओंको परिचालित करते हैं।

कोई ऐसा धार्मिक चित्र चुन लीजिये, जिसमें शान्त-मुद्रामें कोई महान् व्यक्ति विराजमान हो। जैसे भगवान् शिव, विष्णु, गौतम बुद्ध, महावीर इत्यादि। इस चित्रको ध्यानसे देखिये। कैसी शान्त, निर्भय मनःस्थितिमें यह देव-पुरुष विराजमान है। उसे कोई चिन्ता नहीं, कोई सांसारिक भय नहीं, कोई संशय नहीं। वह चित्तकी परम शान्त-मुद्रामें ब्रह्मलीन है। यही शान्त स्थिर

गम्भीर मनःस्थिति लानेकी कोशिश कीजिये। मनकी समस्त शंकाएँ दूर कर दीजिये। ऐसा अनुभव कीजिये मानो आप भी उसी चित्रमें चित्रित व्यक्तिकी तरह अन्तर और बाह्य शान्त मनःस्थितियाँ बना रहे हैं। आपके समस्त भय और शंकाएँ जैसे सदाके लिये दूर हो गयी हैं।

शान्त विचार-भावनाके संकेत

अपने मनको शान्त विचारोंसे सराबोर कर लीजिये। ऐसा सोचिये, मैं सदा प्रशान्त मनःस्थितिमें ही रहता हूँ। मैं कभी अस्त-व्यस्त नहीं होता। मेरे विचारोंमें सहज शान्तिकी निर्मल धारा प्रवाहित हो रही है। सर्वत्र शान्ति है। मेरे आगे-पीछे शान्ति-ही-शान्ति है। मेरे ऊपर प्रशान्त आकाश है। मेरे नीचे निश्चल स्थिर पृथ्वी है। चारों दिशाएँ शान्त हैं। मैं भी पूर्ण शान्त हूँ, संतुलित हूँ, सुस्थिर हूँ, अविचलित हूँ। मुझे कोई विक्षुब्ध नहीं कर सकता; कोई विषम परिस्थिति भयभीत नहीं कर सकती। मैं परम शान्त हूँ, आत्मामें पूर्ण स्थित हूँ, निर्विकार हूँ, संसारके माया-मोह, चिन्ता आदिसे सर्वदा तटस्थ और निरपेक्ष हूँ, सच्चिदानन्द भगवान्में लीन हूँ। मेरी कायिक और मानसिक प्रकृति अविश्वास और संशयसे आच्छादित नहीं है।

शान्तचित्त हो शान्त मनोभावोंको प्रचुरतासे मनमें घुमाइये और सब विचारोंको हटा दीजिये। केवल शान्त भावनामें ही रमण कीजिये। इससे आपकी गुप्त मानसिक क्रियाएँ इसी भावनामें परिचालित होने लगेंगी।

कार्यका आरम्भ पूरी तैयारीसे कीजिये

मनुष्यको घबराहट तब होती है, जब उसकी तैयारी अधूरी

होती है। अपने प्रति आत्म-विश्वासकी कमी होनेसे उसका मन अंदर-ही-अंदर डरता रहता है कि कहीं मैं अपने कार्यमें असफल न हो जाऊँ। प्रायः भाषण देते समय, रेलमें चढ़ते समय, किसी बड़े कामके एकाएक आ पड़नेपर मनुष्य डर जाता है। इस घबराहटको दूर करनेका उपाय यह है कि आप कार्य प्रारम्भ करनेसे पूर्व पूरी-पूरी तैयारी करें। पहले ही यह अनुमान लगा लें कि अमुक समय हमें अमुक-अमुक वस्तुओंकी आवश्यकता पड़ सकती है। इन तमाम वस्तुओंको एकत्र कर लीजिये। घबराहट दूर हो जायगी। परीक्षामें वे ही विद्यार्थी घबराते हैं, जिनकी तैयारी अधूरी या अपूर्ण होती है। यात्रामें स्टेशनपर देरसे पहुँचनेवाले विद्यार्थी घबराकर बहुत कुछ भूल बैठते हैं। अतः अध्ययन पूरी तन्मयतासे करना चाहिये और अपनी शक्तियाँ जो कार्य हाथमें हो उसपर केन्द्रित करना चाहिये।

घबराहट अन्य आदतोंके समान एक मानसिक आदत है। शान्त-भावसे कार्य करनेसे अच्छा कार्य होता है और उसमें गलतीकी सम्भावना कम रहती है। ऐसा प्रयत्न कीजिये कि आपके सम्पूर्ण कार्य शान्तिसे ही सम्पन्न हो। प्रातःसे सायंतकके सारे काम, दिनभरकी दिनचर्या मनको संतुलित हालतमें चलते रहें। आप देखेंगे कि बहुत-से जटिल लगनेवाले कार्य भी शान्तिसे करनेसे सहज और सरल हो जाते हैं। हड़बड़ाहट और जल्दबाजीमें कार्य करनेसे जटिलताएँ उत्पन्न होती हैं।

सोते-जागते शान्तभावका अभ्यास किया करें

रात्रिमें शय्या-ग्रहणसे पूर्व शान्त-भावको मनमें धारण करना चाहिये। हम जिन विचारोंको लेकर सोते हैं, वे निरन्तर हमारे गुप्त

मनमें सक्रियतासे नव-निर्माणका रचनात्मक कार्य करते रहते हैं। रात्रिमें हमारा गुप्त मन बड़ी तीव्रतासे कार्य करता है, क्योंकि बाह्य मनका नियन्त्रण कम हो जाता है। वातावरणमें सर्वत्र शान्ति रहती है। सोते समयके विचार जैसे-के-तैसे स्वभावका अङ्ग बन जाते हैं।

सोनेसे पूर्व मनको अक्षय शान्तिसे भर लीजिये। ऐसा सोचिये कि सारे दिन कार्य करनेके उपरान्त अब आप पूर्ण शान्तिमें निवास कर रहे हैं। आपकी चिन्ताएँ दिनके साथ समाप्त हो चुकी हैं। समाज, परिवार, व्यवसाय और लेन-देनकी घबराहट दूर हो गयी है। अब हमें व्यर्थके अशान्त विचारोंसे मुक्त रहना है।

'मैं शान्त हूँ। सर्वत्र शान्ति है। मेरा मन पूर्ण शान्तिसे कार्य करता है। मैं किसी भी विपरीत परिस्थितिसे विचलित नहीं होता हूँ। व्यर्थके विचार मुझे नहीं सताते। मैं सफल व्यक्ति हूँ। शान्ति ही मेरी सफलताका कारण है। मैं किसीके सामने नहीं घबराता। कोई भी परिस्थिति मेरी शान्तिको भंग नहीं कर सकती। मैं अपनी आत्मामें पूरी तरह स्थित हूँ।'

ये भाव रातभर आपके गुप्त मनमें घूमते रहेंगे और मस्तिष्कमें शान्तिके संस्कार बनेंगे। धीरे-धीरे ये ही आपकी आदतका एक अङ्ग बन जायँगे। जागनेपर भी ऐसी स्थिति बनाये रखनेकी कोशिश करें। मनकी घबराहटको दूर रक्खें। एक ही काम हाथमें लें और उसीको शान्त चित्तसे पहले धीरे-धीरे समाप्त कर लें। शान्त भावसे पूरा मन लगाकर कार्य करना ही फलदायक है।



एकान्त-सेवनसे लाभ

संसारकी बाह्य हलचल और लोगोंके निरन्तर आवागमनसे प्रायः मन अशान्त रहता है। जीवन व्यर्थके अस्थिर कार्योंमें क्षय होता जाता है। पल-पलका सारा दिन छोटे-छोटे कार्योंमें बरबाद होता जाता है। जीवनमें ठोस काम बड़े लोगोंने एकान्तमें रहकर ही किये हैं। उन्नति और प्रगतिकी सम्पूर्ण योजनाएँ शान्तचित्तसे एकान्तमें ही बना और पनपी हैं।

एकान्तसेवनसे मनको शान्ति मिलती है। वर्तमान जीवनकी कठिनाइयोंको अच्छी तरह सोच-विचारकर सुलझानेके लिये एकान्तकी बहुत आवश्यकता है। एकान्तमें रहनेसे मौलिक विचार खूब आते हैं। हम समस्याके हर पहलूपर सोच सकते हैं, महत्त्वपूर्ण अंशों-पर मनको एकाग्र कर सकते हैं। हमें विचार करने, भला-बुरा सोचनेमें बाधा नहीं पड़ती और मन पूरी तरह अपने काममें लगा रहता है। एकान्तमें मन संसारकी हलचलोंसे दूर रहता है। एकान्तमें ही पुस्तक-निर्माण, काव्यरचना, विज्ञानके महत्त्वपूर्ण नये-नये आविष्कार, मौलिक चिन्तन, आत्मचिन्तन इत्यादि कार्य अच्छी तरह पूर्ण होते हैं।

परंतु यह ध्यान रखना चाहिये कि एकान्तवास इतना अधिक न होने पाये कि मनुष्योंसे मिलने-जुलनेमें वैराग्य उत्पन्न होने लगे।

मनका यह स्वभाव है कि वह एक ही समयपर दो जगह नहीं टिक सकता। जब वह संसारकी बाहरी हलचलमें, माया-जाल, रुपया-पैसा, नौकर या घर-बारके चिन्तनमें लगा रहता है, तो अपने आन्तरिक जगत्की शक्तियोंको खो बैठता है। दूसरी ओर जब वह आन्तरिक राज्यमें प्रवेश पाता है, तब बाहरकी सुध-बुध भूल जाता है। इसलिये पूर्णता सिद्ध करनेके लिये भीतर और बाहर—दोनों जगत्में सावधान रहना चाहिये।

जन-समुदायमें रहना जितना लाभदायक और आवश्यक है, उतना ही एकान्त-सेवन भी जरूरी है। एकान्तसेवी मनुष्य एक सफल वृक्षके समान होता है, जिसकी जड़ बहुत गहरी होती है। उसके विचार गूढ़ और दृढ़ होते हैं। जीवन तथा जगत्की सच्ची कुंजी उसीके पास रहती है।

सब महात्माओंने एकान्तवास किया है। किसीने पर्वतपर तो किसीने कलकल-निनादिनी रम्य सरिताके तटपर रहकर अध्यात्म-दर्शन, चिन्तनसे परिपूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं। कवियोंने काव्यरचना की है। चित्रकारोंने सुन्दर चित्रोंका निर्माण किया है। धर्मके गूढ़ रहस्योंका उद्घाटन एकान्तवासमें ही हुआ है। उन्नतिके नये-नये विचार हमारे एकान्तवासमें ही आते हैं।

सच्चा एकान्तवास वह है जब हमारा मन बाह्य-वृत्तियोंसे अलग हो जाय। हम बाह्य जगत्में सोये हुएके समान हो जायँ और अन्तर्जगत्में पूर्ण चैतन्यता, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण जागृति बनी रहे। जो लोग ऐसी अवस्था प्राप्त कर लेते हैं, उनको पूर्ण श्रद्धा प्राप्त होती

है। उन्हें अप्राप्त वस्तुओंकी प्राप्तिमें पूरा विश्वास रहता है। उन्हें सत्य और ज्ञानका अनुभव हो जाता है। उन्हें यह अनुभव हो जाता है कि वे वह कार्य कर सकते हैं। यही कारण है कि उन्होंने जैसा चाहा वैसा कर डाला।

एकान्तमें अच्छी तरह चिन्तन-मनन करके आप भी जो चाहे कर सकते हैं। उन्नतिशील विचारधाराएँ रख सकते हैं और चाहें तो विगाड़ भी सकते हैं। जिस वस्तुकी आप इच्छा करें उसे अन्तः-करणसे चाहें, उसके लिये अधीर हो जायँ और ऐसी कल्पना और अनुभव करें कि उस वस्तुके बिना अब नहीं रहा जाता या काम नहीं चल सकता। इस प्रकार इच्छित वस्तुकी प्राप्तिमें दृढ़ विश्वास करें, तो वह अवश्य प्राप्त होगी।

विचारशक्तिके विषयमें बहुत-सी पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं और लिखी जा रही हैं, परंतु यह माळूम होता है कि अभीतक कुछ भी नहीं लिखा गया है। हम देखते हैं कि यह शक्ति सबके पास है। परंतु कोई भी इस शक्तिका पूरी तरह उपयोग नहीं कर रहा है।

अपने स्वप्नों और विचारोंको दृढ़तासे, मजबूतीसे, पूरी-पूरी रफ्तारसे मनमें लिखिये। अपने आदर्शको कभी मत बदलिये। यदि आप सुन्दर विचारोंपर दृढ़ रहेंगे, तो उन्हींके अनुसार आपकी दुनिया बन जायगी। स्वस्थ और उन्नतिशील मन ही आपकी उन्नतिका आधार है।



धार्मिक कथाएँ कहने और सुननेका पुण्य

हिंदू ऋषि और पुराणोंके रचयिता विद्वान् बड़े बुद्धिमान् थे। सत्य, न्याय, प्रेम, संयम और नैतिकताका संदेश देनेके लिये उन्होंने अनेक प्रकारकी धार्मिक और नैतिक कथाओंकी सृष्टि की है। भारतका पौराणिक और धार्मिक कथा-साहित्य बड़ा समृद्धिशाली है। उसमें नाना प्रकारके नीतिसम्बन्धी दृष्टान्त भरे पड़े हैं। अनेक शिक्षाप्रद कथाएँ हैं, जिनमें अद्भुत गुप्त संकेत भरे हैं।

हमारा प्राचीन साहित्य बड़ा उपयोगी, कल्याणकारी, उद्बोधक और नैतिक है। मनुष्यके जीवनमें आनेवाली अनेक निगूढ़तम गुत्थियोंके कल्याणकारी हल उसमें प्रस्तुत किये गये हैं और वे हल भी इतनी सरल और स्पष्ट भाषामें हुए हैं कि नीति, न्याय, प्रेम और चरित्रकी दृढ़ताके पुण्य भाव मनुष्यके अन्तर्जगत्में आसानीसे जम जाते हैं।

एक विद्वान्के शब्दोंमें, 'हमारा प्राचीन साहित्य, विशेषतः नाटक-साहित्य आदर्शवादी था। नाटक सुखान्त थे। उन नाटकोंमें नायक धर्म और नीतिका प्रतीक होता था। अतः आचार्यों और समाजको उसका पराभव किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं था। वह धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरप्रशान्त और धीरललित प्रकारका होता था। यदि नायक पराजित होता तो धर्म और नीतिके अनुसरण करनेकी व्यर्थता समाजके सामने स्पष्ट हो जाती और उसका

परिणाम समाजमें अधर्म और अनाचार फैलना ही होता। अतः हमारे प्राचीन आचार्योंने अपनी धार्मिक कथा-कहानियों और नाटकोंमें धर्म और न्यायके प्रचारार्थ नायककी विजय सर्वत्र दिखायी।' इन्हीं नैतिक आदर्शों तथा उत्तम चरित्रोंकी प्रतिष्ठाके लिये धर्मकथा-साहित्यका निर्माण हुआ है। उन्हें पढ़नेपर जीवनमें प्रतिपल चरित्र-दृढ़ता तथा सद्गुणोंके भाव संचालित होते हैं। सत्कर्मकी ओर प्रवृत्ति होती है और साथ ही हृदयमें सुरुचि उत्पन्न होती है। इससे हमारा हृदय तमाम संचित विष-विकारों और दुर्बलताओंका परित्याग कर गुणरूपी अमृत ही ग्रहण करता है।

धार्मिक कथाएँ भारतीय ज्ञान, नीति, धर्म तथा उच्चकोटिके नैतिक सिद्धान्तोंको जनतातक पहुँचाने और निगूढ़ गुत्थियोंको सरल सीधी भाषामें प्रस्तुत करनेकी बोलियाँ हैं।

इनका प्रचार सर्वत्र है। बूढ़ी दादी या नानी बच्चोंको विशेष-रूपसे धार्मिक कथाएँ सुनाती है। हमारे दार्शनिकोंने ऐसे त्यौहार और पर्व बनाये हैं जिनमें खास प्रकारकी धार्मिक कथा कहने या कथा बिठानेकी योजनाएँ हैं। ब्राह्मण और कुछ पण्डित कथा कहनेमें विशेषज्ञ भी समझे जाते हैं।

धार्मिक कथाओंका बड़ा वैज्ञानिक महत्त्व है। जब हम किसी उपयोगी और नैतिक नियम, परम्परा, मान्यता, सूत्र, उपदेश या मन्त्र आदिको बार-बार भिन्न-भिन्न कहानियोंमें नये रूपोंमें सुनते हैं या जनताको पूरी निष्ठा और आत्म-विश्वाससे सुनाते हैं तो हमारा गुप्त मन इनको दृढ़तासे ग्रहण कर लेता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक

विचारक फ्रायडके अनुसार हमारा महत्त्वपूर्ण अंश हमारे मस्तिष्कका अचेतन स्वरूप है। हमारा ऊपरी मन इस गुप्त मनपर सहज स्वाभाविक नियन्त्रण रखता है। हमारे गुप्त मनमें अनेक क्रूर, स्वार्थ-परायण, असभ्य, अनगढ़, दुर्दमनीय प्रवृत्तियाँ, वासनाएँ और दलित इच्छाएँ भरी रहती हैं। सभ्य आदमी उन्हें विद्रोहिनी तथा अराजक समझकर उन्हें दमन करनेकी चेष्टा करता है। पर वे मरतीं नहीं, बल्कि रूप बदलकर चरित्रमें प्रकट होती हैं।

हमारी धर्म-कथाएँ जब हमें बार-बार सुनायी जाती हैं, तो हमारा गुप्त मन अपनी पुरानी दुष्प्रवृत्तियोको त्यागकर नये कल्याणकारी और समाजके लिये उपकारी सूत्र ग्रहण करता जाता है। वासनाएँ दब जाती हैं और नैतिक गुण विकसित हो जाते हैं। हमारी धर्म-कथाओंका निर्माण ही ऐसे मनोवैज्ञानिक तरीकोसे किया गया है कि न्याय, सत्य, प्रेम, त्याग और श्रेष्ठताकी ही प्रतिष्ठा हो। दुष्प्रवृत्तियों-की सदा पराजय ही दिखायी जाय। शील गुणकी विजय पढ़ते-पढ़ते हम स्वयं इन्हें अपने जीवनमें उतारते हैं। अपने अव्यक्त प्रदेशका नैतिक नव-निर्माण करते हैं। संसार तथा समाजके नैतिक नियमके विषयमें हमारा विश्वास जम जाता है। प्रत्येक भारतीय धर्म-कथा हमारी नैतिक बुद्धिको जगाती है; जिससे कहने और सुननेवाले अर्थात् दोनोंको ही लाभ होता है। यह नैतिक बुद्धि मनुष्यको सभ्य, सुसंस्कृत और पवित्र बनानेमें बड़ी सहायता करती है।

भारतमें धर्म-कथाओंका वृहत् भंडार है। आज बहुत-सी कथाएँ तो लुप्तप्राय हो रही हैं। कुछ पुराने विविध धर्मग्रन्थोंमें

दबी पड़ी हैं। जरूरत इस बातकी है कि इन कथाओंको बड़े-बूढ़े और प्रौढ़ स्त्री-पुरुष याद करें और नित्य बच्चोंको सुनावें। इन्हींके माध्यमसे नैतिक शिक्षाकी योजना बनायी जा सकती है। नयी पीढ़ीको नियन्त्रित और संयमशील बनानेके लिये ये धर्म-कथाएँ बड़ी उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

धर्म-कथाएँ कहनेवालेका मन सदा पवित्र वातावरणमें निवास करता है। उसका मन और शरीर ईश्वरीय चैतन्यशक्तिके नाना वृत्तान्त सुनता है और दिव्य तेजोमय आत्माकी ओर अग्रसर होता है। हमारी धर्म-कथाएँ हमें पाप-बुद्धिसे छुड़ाती हैं। कहने और सुननेवाला दोनों ही ईश्वरके अस्तित्वका अनुभव करते हैं।

धर्म-कथाओंमें मन और आत्माकी चिकित्सा, पुनरुद्धार, पुनरुज्जीवन एवं प्राणसंचारकी अद्भुत शक्तियाँ हैं। ये हमें पुण्य, सत्य, नीति, प्रेम, त्याग इत्यादि ईश्वरीय विभूतियोंसे भर देती हैं, हमारे रक्तमें पुण्य-प्रवाहको तेज कर देती हैं। वे हमें भय, विपत्ति, रोग और दरिद्रतामें भी सान्त्वना, उत्साह और प्रेरणा देनेवाली हैं। इन कथाओंमें ऐसे सैकड़ों प्रसंग आते हैं जिनसे हमें विपत्तिमें धैर्य बँधता है, आवेशमें विवेकके नेत्र खुले रहते हैं और कल्याण-चिन्तनमें सहारा मिलता है। भारतका अध्यात्म-चिन्तन सरल और सुबोध शैलियोंमें हमारी धर्म-कथाओंमें भरा पड़ा है। अतः अधिक-से-अधिक धर्म-कथाएँ पढ़िये, दूसरोंको सुनाइये और उनके संदेशपर विचार कीजिये।



धर्मबुद्धिकी अवहेलनासे मानसिक क्लेश

प्रत्येक मनुष्यमें ईश्वरीय तत्त्व विद्यमान है, जो उसे धर्म और अधर्म, भले और बुरे, उचित और अनुचितका विवेक कराता है और निरन्तर सत्यमार्गपर चलते रहनेकी प्रेरणा देता है। इस नीर-क्षीरविवेक शक्तिको हम धर्मबुद्धि कह सकते हैं। ईश्वरीय दैवी विधानका स्वरूप कुछ ऐसा है कि सत्य, नीति और धर्मके मार्गपर चलते रहनेसे हमें मानसिक और आत्मिक शान्ति मिलती है। इसके विपरीत असत्य, झूठ, पाप, अनीति, मिथ्याचारके रास्तेका अनुसरण करनेसे मानसिक क्लेश उत्पन्न होता है। नाना प्रकारकी चिन्ताएँ व्यर्थ ही सताती रहती हैं।

धर्मबुद्धि प्रत्येक व्यक्तिमें जन्मसे ही होती है, पर कुछ व्यक्ति अपनी परिस्थितियाँ ऐसी बना लेते हैं कि वे उसके संकेतको नहीं सुनते। पर्याप्त समयतक समस्यापर सोच-विचार नहीं करते। धार्मिक दृष्टिसे निर्णय नहीं करते। फल यह होता है कि धीरे-धीरे धर्मबुद्धिका क्षय हो जाता है। निर्णयोंमें धर्मके प्रतिकूल आचरण करना पड़ जाता है, धर्मबुद्धिको दबाकर प्रतिकूल निर्णय और आचरणसे मनुष्यको हानि या प्रतिशोधका गुप्त डर बना रहता है। मनुष्य चिन्तामें घुलता जाता है। शूलकी तरह धर्मबुद्धिके

प्रतिकूल आचरण मनुष्यमें भय, चिन्ता, बुरे स्वप्न, हृदयकी धड़कन, सिर-दर्द और अशान्ति पैदा करता है।

एक बार महाराज हरिश्चन्द्र कर्तव्य और अकर्तव्यका निर्णय न कर सकनेके कारण चिन्तामें फँस गये। क्या उचित है, क्या अनुचित है यह न सोच सकनेके कारण वे मानसिक क्लेशसे पीड़ित थे। उनका मन अशान्तिसे भरा हुआ था। मोहका पर्दा उनपर बुरी तरह छाया हुआ था। महारानी शैव्याने इन शब्दों-द्वारा उनके मानसिक क्लेशका निराकरण किया और धर्मबुद्धिको जाग्रत् किया—

त्यज चिन्तां महाराज स्वसत्यमनुपालय।
श्मशानवद् वर्जनीयो नरः सत्यबहिष्कृतः॥
नातः परतरं धर्मं वदन्ति पुरुषस्य तु।
यादृशं पुरुषव्याघ्र स्वसत्यपरिपालनम्॥
अग्निहोत्रमधीतं वा दानाद्याश्चाखिलाः क्रियाः।
भजते तस्य वैफल्यं यस्य वाक्यमकारणम्॥
सत्यमत्यन्तमुदितं धर्मशास्त्रेषु धीमताम्।
तारणायानृतं तद्वत् पातनायाकृतात्मनाम्॥

(मार्कण्डेयपुराण ८। १७-२०)

महारानी शैव्याने अपने पति महाराज हरिश्चन्द्रसे कहा—

'महाराज! चिन्ता छोड़िये, अपने सत्यकी रक्षा कीजिये। जो मनुष्य सत्यसे विचलित होता है, वह श्मशानकी भाँति त्याग देने योग्य है।

'हे नरश्रेष्ठ ! पुरुषके लिये अपने सत्यकी रक्षासे बढ़कर कोई धर्म नहीं बतलाया गया है ।

'जिसका वचन निरर्थक हो जाता है (जो धर्मबुद्धिके अनुसार कर्तव्य निश्चित नहीं करता), उसके अग्निहोत्र, स्वाध्याय तथा दान आदि सम्पूर्ण निष्फल हो जाते हैं ।

'धर्मशास्त्रोंमें बुद्धिमान् पुरुषोंने (धर्मबुद्धिद्वारा पोषित) सत्यको संसार-सागरसे तरनेके लिये सर्वोत्तम साधन बताया है । इसी प्रकार जो धर्मबुद्धिकी अवहेलना करता है, जिसका मन वशमें नहीं है, ऐसे पुरुषोंको पतनके गर्तमें गिरानेके लिये असत्यको ही प्रधान कारण बतलाया गया है । धर्मबुद्धिके अनुसार कार्य करना ही जीवनका सबसे बड़ा लाभ है ।'

आसक्तिरहित धर्मबुद्धिके द्वारा ही आचरण करना चाहिये । धर्मके पालनसे, प्रतिदिनके कार्योंमें धर्म-प्रयोग करनेसे मनुष्यके अन्तःकरणकी शुद्धि होती है । सब प्रकारके क्लेश दूर होते हैं । धर्म केवल पुस्तकोंमें पढ़ने मात्रकी ही वस्तु नहीं है, प्रत्युत नित्य-प्रतिके जीवनमें उतारनेकी वस्तु है । धर्मबुद्धिके अनुकूल आचरण करनेसे मनुष्य दैनिक व्यवहारमें कोई गलती नहीं करता, जिसके लिये बादमें प्रायश्चित्त करना पड़े ।

मनुष्यके मनकी अनेक वृत्तियाँ हैं—स्वार्थवृत्ति, भोगवृत्ति, दम्भवृत्ति और धर्मवृत्ति । जब कोई समस्या सामने आती है, तो इन नाना वृत्तियोंमें संघर्ष चलने लगता है । जब जिस वृत्तिकी प्रधानता या प्रमुत्व होता है, तब वैसा ही निर्णय हो जाता है; लेकिन मनके

शान्त संतुलित अवस्थामें आते ही पाशविक वृत्तियोंके निर्णयकी असत्यता प्रकट हो जाती है, तब धर्मबुद्धि अपना दिव्य प्रकाश दिखलाती है। उसमें हमें भोगवृत्तियोंकी निस्सारता प्रकट हो जाती है, पश्चात्ताप होता है और धर्मबुद्धि इस कुकृत्यकी सजा देती है। मनुष्यको स्वयं अपने-आप ही ग्लानि हो जाती है। आत्मभर्त्सनाके फलस्वरूप अनेक व्यक्ति आत्महत्याएँतक कर लेते हैं।

धर्मबुद्धिके पालनसे चरित्रमें सद्गुणोंका विकास होता है। धर्मबुद्धिका सुख अमलमें है, केवल जानकारीमें नहीं। धर्मको दैनिक जीवनका आधार बना लेनेसे ही जीवन सुखद और फलदायी हो सकता है। धर्मबुद्धिके विकाससे चित्तकी शुद्धि, विचारोंकी पवित्रता और आचरणकी स्वच्छता आती है।

जब आप पूरी तरह शान्त रहते हैं, मन संतुलित रहता है, किसी प्रकारका बाहरी दबाव आपपर नहीं होता, तो आपके मन-मन्दिरमें भगवान् उदित होते हैं और आपको नेक सलाह देते हैं। इसीपर निरन्तर अग्रसर होते रहिये। ईश्वरीय प्रेरणापर भरोसा रखनेवाला कठिन अवसरोंपर भी नेक सलाह पाता है। भविष्य उसके लिये अन्धकारकी वस्तु न रहकर एक दिन-जैसा स्पष्ट रहता है।

जो मनुष्य ईश्वरपर भरोसा रखता है और ईश्वरकी कृपाके बलपर सदा शान्तिके साथ धर्मसम्मत कार्योंमें लगा रहता है, उसका जीवन सबके लिये प्रकाशदायक हो जाता है।



इस जगत्में प्रभुशासन ही चलता है !

हम समझते हैं कि 'पापको कोई देखता नहीं है तथा पुण्यका प्रत्यक्ष फल प्राप्त नहीं होता है'—किंतु वास्तवमें बात ऐसी नहीं है। समाजमें निरन्तर एक ईश्वरीय शासन-विधान चल रहा है। हमें चर्मचक्षुओंसे यह दृष्टिगोचर नहीं होता, पर अलक्षितरूपसे यह प्रभु-शासन कभी मन्द नहीं पड़ता। पुण्य सदा फलता है तथा पापीका नाश होता है। यह निश्चित है।

उस व्यापक शासकके सामने संसार-पट खुला हुआ है। कोई पर्वतपर छिपकर भी पाप कर रहा हो, वह भी उसे दीखता है। कोई गुप्त-दान और चुपचाप पुण्यकार्य कर रहा हो, उसका प्रत्यक्ष लाभ मिलता है। सदाचारियोंके पुण्य-कार्योंसे ही पृथ्वी टिकी हुई है।

कोई बचकर चलता हो, छिप-छिपकर काम करता हो, अकड़-अकड़कर गर्वमें डूबा हो, उस शासकसे कोई छिपकर नहीं रह सकता।

जहाँ दो व्यक्ति गुप्त बैठकर भी बातें करते हैं, वहाँ प्रभु तीसरे बनकर सम्मिलित रहते हैं।

(अथर्ववेद ४ । १६ । २)

ज्ञान-चक्षु खोलनेवाली कुछ घटनाएँ

(१)

एक बड़े लोकप्रिय और सफल जजने, जिन्हें ३२ वर्षोंका अनुभव प्राप्त है तथा जिन्होंने निष्पक्षता, सतर्कता और न्याय-

कुशलतामें कीर्ति प्राप्त की है, अपने जीवनकी अनेक घटनाएँ सुनायी थीं, जिनसे प्रभुशासनकी सत्यता स्पष्ट होती है—

ईश्वरप्रेरणासे न्यायमें सहायता मिली

सन् १९३३ की घटना है ।

वह जमाना रजवाड़ोंका था । राजघरानोंके सम्पर्क और शिफारिशपर ही नौकरी और पदोन्नति होती थी । मेरी नौकरी भी जोधपुर राजघरानेकी शिफारिशपर लगी थी । कोई प्रतियोगिता या चुनाव नहीं हुआ था । उन्होंने मुझे उपयुक्त समझा । बस, उनके अनुग्रहसे मैं जज बन गया । मेरा रोम-रोम उनके प्रति उपकारोंका ऋणी था । वे मेरे अन्नदाता या यों कहूँ जीवनदाता ही थे ।

संयोग कहिये या मेरी अग्निपरीक्षा कहिये, एक बार मेरे कोर्टमें एक मुकदमा आया, जिसमें उन्हीं व्यक्तिने शिफारिश की, जिन्होंने मेरी नौकरी लगायी थी ।

मैंने मुकदमेका अध्ययन किया तो मै इस नतीजेपर पहुँचा कि ज्यादती राजघरानेकी ओरसे ही हुई थी और वहींसे सरकारी काममें हस्ताक्षेप भी किया गया था ।

मेरे सामने पेचीदा सवाल था । एक ओर उन महाशयकी शिफारिश थी और दूसरी ओर जजकी हैसियतसे न्यायका निर्णय मेरे ऊपर था । एक ओर कृतज्ञताका बोझ, तो दूसरी ओर निष्पक्ष न्यायका आन्तरिक तकाजा ।

एक अजीब मानसिक उथल-पुथल थी । भावना और कर्तव्यके

संघर्षने मुझे व्यथित कर डाला। मैं किधर निर्णय दूँ? मुझे विक्रमादित्यके न्यायासनकी प्राचीन विश्रुत कथाएँ बार-बार कर्तव्यकी ओर ठेल रही थीं, साथ ही राजघरानेके प्रति वफ़ादारी अपनी ओर खींच रही थी।

'मै सोचता, 'राजघरानेके पक्षमें निर्णय देनेसे मेरा स्वार्थ सधता है और यदि मैं राजघरानेके विरुद्ध फैसला देता हूँ तो मेरी नौकरी मिट्टीमें मिल सकती है।'

फिर मेरा विवेक जागकर मुझे सावधान करता—'तू जजकी कुर्सीपर बड़ी जिम्मेदारीकी जगह बैठा है। न्यायका दण्ड तेरे हाथमें है। तुझे नीर-क्षीर अलग-अलग करना है। अपराधी और निर्दोषकी परख करनी है। यदि अपराधीको दण्ड न मिला तो तू न्यायासनसे गिर जायगा। विक्रमादित्यकी आत्मा तुझे धिक्कारेगी। सत्य और न्यायका मार्ग ही ग्रहण कर।'

यह मानसिक संघर्ष मुझे व्यग्र करता रहा। एक ओर समाजमें प्रतिष्ठाका लालच था, दूसरी ओर ईश्वरीय विधानके विरुद्ध कुछ करनेका गुप्त भय।

मेरी आत्मा चीत्कार कर उठी। मनमें अनेक भाव थे—'हे भगवन्! मैं क्या करूँ? कर्तव्य-बोध दो मुझे!'

अन्तमें मेरे भीतर प्रभु बोले। मैंने सुना, कोई चुपचाप कह रहा था—

'सांसारिकताकी संकुचितता त्याग दे। निष्पक्ष न्याय कर।

तू ईश्वरका प्रतिनिधि है। याद रख, तेरे हाथों शिवत्व स्थिर रहना चाहिये।'

बस, मैंने निर्णय कर लिया। संशयके बादल छँट गये। अब मै भावनाके कीचड़से मुक्त हो विवेक और न्यायकी सीधी सड़कपर चल रहा था। मेरे हाथ फैसला लिख रहे थे। मैंने क्या लिखा यह मुझे मालूम नहीं। पर फैसला लिखा गया। दृढ़तापूर्वक सच्चे मनसे लिखा गया।

सबको आशा थी कि मेरा निर्णय राजघरानेके पक्षमें होने जा रहा था।

दूसरे दिन सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। फैसलेमें मैंने राज-घरानेको दोषी ठहराया था और उनके विपक्षमें फैसला देते हुए सजा भी दी थी। अपने ही एक मित्र और हितैषीको स्वयं मेरी ही कलमसे सजा मिल रही थी! मैं सोचता था कि मेरा फैसला राज-घरानेको हमेशाके लिये मेरा शत्रु बना देगा। सम्भव है, वे मेरा अहित भी कर बैठें। नौकरी ही छूट जाय।

लेकिन आश्चर्य! महान् आश्चर्य!!

तीन दिन बाद उनसे मुलाकात हुई तो उन्होंने पीठ ठोककर शाबासी दी और कहा—'हमारा जजका चुनाव सही निकला। कसौटीपर तुम खरे उतरे। यदि तुम इस मुकदमेमें न्यायसे गिर जाते तो हमें हार्दिक क्लेश होता। तुम्हारा काम न्याय करना है। कौन जीतता है, कौन हारता है, कौन सजा पाता है, कौन मुक्त होता

है—यह देखना नहीं। तुम इस परीक्षामें सच्चे उतरे। तुमपर हमें गर्व है।'

वह दिन मेरी जिंदगीका मोड़ था। तबसे भगवान्‌की कुछ ऐसी कृपा और प्रेरणा रही कि मेरे अधिकांश फैसले न्यायकी दृष्टिसे सराहे गये। सजा पाकर भी अपराधी संतुष्ट रहे। मैं मानता हूँ कि आध्यात्मिक क्षेत्रमें मनुष्यकी सर्वोत्तम उपलब्धियाँ न्याय और तर्क हैं। न्यायालय, न्यायाधीश और वकील मानव-जातिके आध्यात्मिक विकासके प्रतीक हैं।

भगवान् स्वयं मुश्किलें आसान करते हैं

एक बारकी बात है कि असेम्बली-चुनावसम्बन्धी चार मुकदमे मेरे पास निर्णयके लिये आये। काँग्रेसके ८९ तथा गैर-काँग्रेस पार्टीके ८७ वोट पड़े थे। केवल तीन वोट खारिज कर देनेपर समूची सरकार बदल सकती थी। बड़ा जोर-शोर था। दोनों पार्टियाँ इस प्रयत्नमें थीं कि जजको प्रभावित कर दें और अपनी सरकार बना लें। जनतामें भी बड़ी हलचल और सरगर्मी थी। रोज उत्तेजित सभाएँ होतीं और नागरिक शान्ति-भङ्ग होनेका भय था। पुलिसकी सरदर्दी बढ़ी। मेरी निष्पक्ष नीतिके कारण मेरे पास सीधे शिफारिश-के लिये तो कोई नहीं आया, किंतु मुझतक यह सूचना पहुँची कि मेरे निर्णयसे भारी सनसनी फैलेगी और कुछ राजनीतिक गुट नाराज हो जायँगे। अजीब समस्या थी।

मैंने मनको टटोला। आत्माको झकझोरा, तो फिर अन्तर्ध्वनि आयी। मैंने सुना—

'मेरा शरीर परमात्माका है। मेरी बुद्धि, इन्द्रियाँ, मन और प्राण—ईश्वरके द्वारा संचालित होते हैं। मेरे मन, वचन, कर्ममें किसीका अनिष्ट नहीं है। मैं अभय हूँ। सत्य और न्याय मेरे आदर्श हैं। मेरे लिये परमात्माने संसारमें नीर-क्षीरविवेक करनेका कार्य दिया है। जहाँ परमात्मा है, वहाँ मैं हूँ। जहाँ मैं हूँ, वहाँ न्याय है। संसारमें मेरा कोई द्वेषी नहीं, मेरे द्वारा किसीपर अन्याय नहीं होगा।'

मैंने अर्जियोंको खूब अध्ययन किया। इतना सूक्ष्म अध्ययन शायद पहले कभी न किया होगा। अर्जियोंमें कुछ-न-कुछ त्रुटि निकली और रद्द कर दीं। सरकार ज्यों-की-त्यों रही। काँग्रेसकी ही गवर्नमेंट बनी रही। दो वोटका अन्तर ही बना रहा। मेरे निर्णयसे दोनों ही पार्टियाँ प्रसन्न थीं। मेरी लोकप्रियता दोनोंमें समानरूपसे बनी रही।

ईश्वरके प्रति गुनहगार

एक मुकदमा आया। एक युवतीको एक मजदूरने छेड़ा था। पुलिसके सब-इन्सपेक्टरने उस मजदूरको मेरे सामने पेश किया। युवतीसे अपराधी पहचनवाया गया। उसने उसे पहचानते हुए कहा कि 'इसी व्यक्तिने मुझे छेड़ा था।' दूसरा कोई व्यक्ति नहीं था। बस, मैंने सजा सुना दी। उस मजदूरको सजा दे दी गयी।

कोई डेढ़-दो मास बाद वही बुजुर्ग थानेदार मेरे पास आये और उस पुराने मुकदमेका हवाला देते हुए बोले, 'जज साहब! आप तो कभी धोखा नहीं खाते थे। उस मुकदमेमें तो आपसे गलती हुई।'

'यह क्या कहते हैं ?' मैं आश्चर्यमें पड़ गया। 'हे भगवन् ! यह क्या, मेरे हाथो अन्याय कैसे हुआ ?'

फिर नये सिरेसे छानबीन की तो मालूम हुआ कि मुकदमा बनाया गया था। असली बात यह थी कि एक दुश्चरित्र ठेकेदारके यहाँ वह युवती मजदूरनी मजदूरी करने आयी थी और उसीने उसे छेड़ा भी था। पर उन दोनोंको रुपया-रिश्वत देकर उस ठेकेदारको मुकदमेसे बिल्कुल निकाल दिया गया था। लड़कीने थानेमें रिपोर्ट दी थी, पर पुलिसने मामला कुछ और ही ढंगसे पेश किया था।

वास्तवमें मुझसे गलती हो गयी थी, यद्यपि मेरा कसूर नहीं था। अपने हाथों यह गलती मुझे इतनी वेदनापूर्ण लगी कि मानसिक आघातमें मैं तीन दिन बुखारमें पड़ा रहा। बड़ी आत्मग्लानि हुई। न्यायके प्रति, अपनी आत्माके प्रति तथा ईश्वरके प्रति मैं गुनहगार था। वह बुखार प्रभुके द्वारा दी हुई सजा थी।

गुप्त दैवी सहायता

अभी कुछ दिनका एक अनुभव है। रामतारण चक्रवर्ती अपनी पत्नी और बच्चोंके साथ छोटे सालेके विवाहमें जा रहे थे। हवड़ा स्टेशनसे उन्होंने गाँवके लिये एक बैलगाड़ी ली। गाड़ीवानको संदेह हो गया कि इनके पास बहुत-सा जेवर और रुपया है। उसने उन्हें लूटनेकी तरकीब सोची। बीचमें एक नदी पड़ी। यहीं उस दुष्टने बैलगाड़ीको खड़ा कर दिया और बोला, 'पास ही मेरा गाँव है। दो आदमियोंको ले आऊँ, तब यह गाड़ी नदीके पार जा सकेगी।' यह कहकर वह चुपचाप चला गया। कुछ देर बाद वह

दुष्ट गाड़ीवान दो लठैतोंको लाया और रामतारण बाबूको छुरा दिखाकर उनका जेवर और रुपया लूट लिया। साथ ही शोर मचानेकी कोशिशमें हत्या करनेकी धमकी दी। इधर रामतारण मन-ही-मन ईश्वरीय रक्षाके लिये प्रार्थना कर रहे थे। एकाएक उन्होंने क्या देखा कि बैल पागल-से हो गये और रस्सा तुड़ा सींगोंसे उन दुष्टोंको मारने लगे। बैलोंका पागलपन बढ़ता गया। यहाँतक कि उन्होंने तीनों व्यक्तियोंको इतना घायल कर दिया कि वे जमीनपर रेंगने लगे। इतनेमें और यात्री भी उधरसे आ निकले। उनकी सहायतासे रामतारणको सारा जेवर और धन वापस मिल गया। भगवान्‌की गुप्त दैवी सहायताका यह चमत्कार है।

ईश्वरने मौतके मुँहसे बचाया

युद्धकालका एक सच्चा अनुभव है।

एक सैनिकके मुँहपर गोली लगी। वह मरा तो नहीं, घायल होकर तड़पने लगा। डाक्टरने उसे ऑपरेशनकी सलाह दी।

सब लोग समझते थे कि यह सिपाही घातक पीड़ासे सुबहतक जरूर मर जायगा; लेकिन सैनिकको प्रभुकी दैवी शक्तिमें अखण्ड विश्वास था। वह चुपचाप प्रार्थनाद्वारा उसी शक्ति-स्रोतसे ताकत खींचने लगा। उसने प्रभुसे प्रार्थना की—

'हे शक्तिके स्रोत! मुझे इतनी शक्ति दीजिये कि मैं इस विकट ऑपरेशनके कष्टको दृढ़तापूर्वक सहन कर सकूँ। मुझे कष्ट-निवारक आत्मबल दीजिये। मै अपनेको आपके हाथमें सौंप रहा हूँ। अब मेरा कोई अनिष्ट नहीं होगा।

फिर उसने अनुभव किया कि ईश्वरीय शक्ति उसे मजबूत बना रही है। उसके शरीरके अणु-अणुमें शक्तिका संचार हो रहा है। परमात्माकी शक्ति उसे सँभाले हुए है। उस आध्यात्मिक शक्तिको मनमें धारणकर वह निश्चिन्त सो गया। प्रातः उठा तो उसे आश्चर्य हुआ। उसमें नयी ताकत भर गयी थी। लोग समझते थे कि वह मर चुका होगा, पर वह प्रसन्नतापूर्वक बोला —

'डाक्टर, मै ऑपरेशनके लिये तैयार हूँ। मुझे उससे लाभ होगा। आप गोली निकाल दीजिये।'

सभी उसके साहसपर चकित थे। वास्तवमें उसका ऑपरेशन सफल हुआ और वह बहुत दिनोंतक नौकरी करता रहा। बादमें उसने बताया कि वह आध्यात्मिक शक्तिका अद्भुत प्रभाव था। ईश्वरीय विश्वासके द्वारा उसकी संकटकी घड़ी टली थी और वह मौतके मुँहमेंसे बचा था।

ईश्वरीय प्रेरणासे स्वयं अपनेको सजा

कभी-कभी ईश्वर स्वयं हमारे अंदर बोलता है और हम अपनी गलतियोंके लिये स्वयं अपनेको सजा देते हैं।

क्लोवर (साउथ करोलिना, अमेरिका) का एक समाचार है कि एक मेयरने, जो यहाँके स्थानीय जज भी हैं, अदालतमें अपने खिलाफ आरोप लगाये और स्वयंको दोषी पाया। सजा दी। मेयर साहबसे एक मामूली सड़कपर उनकी मोटरसे एक दुर्घटना हो गयी थी। उन्होंने अपने खिलाफ पेशी की और स्वयं अपनेको दोषी ठहराया। इसके लिये मेयरने स्वयं अपनेको १५ दिनकी कैद अथवा १५ डालर (७५ रुपये) जुर्मानेकी सजा सुनायी।

× × × ×

मुरैनाका एक समाचार है कि १५ अगस्तके स्वतन्त्रतादिवसके अवसरपर पुलिसके सम्मुख नगरा ग्रामनिवासी कुख्यात डाकू बलदेवसिंह और मुन्सीसिंहने आत्मसमर्पण कर दिया । इनकी गिरफ्तारीके लिये ५००) रु० का इनाम घोषित था । कहते हैं कि डाकुओंको अपने निर्दय पाप-व्यवसायसे घृणा हो गयी और प्रायश्चित्तस्वरूप वे आत्मसमर्पणको तैयार हो गये ।

भगवान् अपने भक्तकी उलझनें सुलझाते हैं

श्री ई० स्टेन्ले जोन्स अमेरिकाके प्रसिद्ध मिशनरी है । वे अमेरिकासे भारतमें आने लगे, तो स्वास्थ्य खराब हो गया । सबने सलाह दी कि उन्हें वापस लौट जाना चाहिये; पर वे न माने और अपने बढ़ते हुए संकटोंका बोझा लिये हुए भारत आ पहुँचे । थकानको मिटानेके लिये महीनों पहाड़ोंपर रहे । वे अपने संकटका वृत्तान्त इन शब्दोंमें लिखते हैं—

मेरा दिमाग, शरीर और स्नायु सब थक चुके थे । मेरी शक्ति पूरी तरह जवाब दे चुकी थी । मुझे भय था कि शारीरिक दृष्टिसे मैं जीवनभर बेकार रहूँगा । वह मेरे जीवनका अत्यन्त अन्धकारमय समय था । उन दिनों मैं लखनऊमें कई सभाओंका आयोजन कर रहा था । एक रात प्रार्थना करते समय एक ऐसी घटना घटी जिसने मेरे जीवनको पूर्णतया बदल दिया । प्रार्थना करते समय मैं अपने विषयमें बिल्कुल नहीं सोच रहा था ।

एकाएक सुनायी पड़ा—'क्या तुम वह काम करनेके लिये तैयार हो जिसके लिये मैंने तुम्हें भारत बुलाया है ?'

मैंने उत्तर दिया—'नहीं, भगवन्! मैं थक चुका हूँ। मेरी शारीरिक शक्ति जवाब दे चुकी है।'

उत्तरमें सुनायी पड़ा, 'यदि तुम वह सब मुझपर छोड़ दो और उनकी चिन्ता न करो, तो मैं सब सँभाल लूँगा।'

मैंने तुरंत उत्तर दिया—'प्रभु! जैसी आपकी इच्छा।'

'मेरे हृदयमें बड़ी शान्ति मिली और वह मेरे अङ्ग-अङ्गमें व्याप्त हो गयी। कोई चुपचाप मेरी सहायताको आ गया था। मुझमें अपार शक्ति आ गयी थी। मैं खुशीसे फूला नहीं समाया। जब मै रातको अपने स्थानपर लौटा तो मेरे पाँव जमीनपर नहीं पड़ते थे। धरती पवित्र बन गयी थी। फिर तो मैं कई दिनोंतक दिनभर काम करनेके बावजूद रातको देरतक काम करता रहा। उस घटनाको अब वर्षों हो गये, पर मैं भूल नहीं पाता हूँ। मैं सब कुछ भगवान्‌पर छोड़ता हूँ और सदा भगवान् मेरी सहायता करते हैं।

मैं भगवान्‌के हाथमें सुरक्षित हूँ

श्री जोसेफ एल० रयान, सुपरवाइजर फोरेन डिविजन, रोयल टाइपराइटर कम्पनी, न्यूयार्कसे अपना अनुभव इस प्रकार लिखते हैं—

'मैं मुकदमेमें फँसा था और उसके लिये मुझे बहुत भारी मानसिक बोझ और चिन्ताका सामना करना पड़ा। जब मुकदमा खतम हो गया, तब मै गाड़ीमें बैठकर घर लौट रहा था। मुझे एकाएक मूर्छाने घेर लिया। दिलकी बीमारी थी। मेरे लिये साँस लेना भी असम्भव था। जब मैं घर गया तो डाक्टरने मुझे इन्जेक्शन दिया। जब मुझे होश आया तो मैंने देखा मेरी अन्त्येष्टि क्रियाकी तैयारियाँ मौजूद थीं।

'मैंने अपने परिवारके लोगोंके चेहरोंपर भयंकर विषाद देखा। मैंने जान लिया था कि मेरी नाव डगमगा रही थी। बादमें मुझे पता चला कि डाक्टरने मेरी पत्नीसे कह दिया था कि आध घंटेके अंदर शायद मेरी जीवन-लीला समाप्त हो जाय। मेरा दिल इतना कमजोर हो गया था कि मुझे हिलने-डुलने और बोलनेकी मनाही कर दी गयी थी।

'मैंने अपनी आँखें बंद कीं और पूरी निष्ठा और सच्चे हृदयसे प्रार्थना की, '*होइहि सोइ जो राम रचि राखा*।' हे राम! होगा वही जो तुम्हें मंजूर होगा। मैं तुम्हारे हाथमें सुरक्षित हूँ।'

'जैसे ही मैंने इस विचारको अपनाया, मुझे राहत मिली। मेरा मृत्युका डर विलीन हो गया। यदि भगवान्‌की अदृश्य शक्ति उस समय मेरी सहायता न करती तो मैं आजतक जिंदा न होता। मेरा विश्वास है कि इस विश्वमें प्रभुशासन चल रहा है। पापकी सजा और पुण्यका मधुर फल प्रत्यक्ष यहीं मिलता है।'

इस संसारमें गुप्तरूपसे ईश्वरीय शासन-विधान चल रहा है

याद रखिये, गुप्तरूपसे इस संसारमें प्रभुशासन चल रहा है। अच्छाईका फल अन्तमें उत्तम होता है। ईमानदारी और सदाचारसे किये गये कार्यका फल सदा उत्तम और स्थायी होता है। ईश्वरका वरदान सदा साधुपुरुषके साथ होता है। प्रभुके शासनमें सर्वत्र न्याय है। सम्भव है कुछ देर लगे, किंतु अन्तमें भलाई, ईमानदारी, कर्तव्यपालन, न्याय, निष्पक्षता, सदाचारका फल श्रेष्ठ ही होता है।

इसके विपरीत पापका कोई कार्य चाहे कितने ही छिपकर क्यों न किया जाय, ईश्वर उसे देखते हैं और देर-सबेर अवश्य सजा देते हैं। कोई भी दुष्कर्म बिना सजाके नहीं रह सकता।

आप जिन्हें समाजमें फलता-फूलता देखते हैं, वह उनके पूर्वकृत सत्कर्मों और पुण्यकर्मोंका ही प्रभाव है। पापी और बेईमान सजाके बिना बच नहीं सकता। पुण्यसे शाश्वत सुख और पापसे दुःख, व्याधि, रोग, शोक—यही प्रभुका शासन है।

वेदोंमें प्रभुके शासनके विषयमें स्पष्ट किया गया है—

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम्।
द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद् वेद वरुणस्तृतीयः॥
(अथर्ववेद ४ । १६ । २)

अर्थात् स्मरण रखिये (उस) व्यापक प्रभुके आगे यह संसार-पट स्पष्ट खुला हुआ है। (वे हर जगह आपके अच्छे-बुरे कार्योंको देखते हैं।)

कोई ठहरा हुआ हो या चल रहा हो, कोई वचकर चलता हो, छिप-छिपकर चलता हो या अकड़-अकड़कर चलता हो, उस परम प्रभु परमात्माकी दृष्टिसे कुछ भी भूला हुआ नहीं हो सकता।

जहाँ दो व्यक्ति गुप्त (छिपकर) बैठकर भी बातें करते हैं और यह समझते हैं कि कोई नहीं सुन रहा है, वहाँ प्रभु तीसरा बनकर शामिल रहता है।

इसलिये पाप-पुण्य छिप नहीं सकता।

उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञ उतासौ द्यौर्बृहती दूरेअन्ता ।
उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी उतास्मिन्नल्प उदके निलीनः ॥
(अथर्ववेद ४ । १६ । ३)

अर्थात् प्रभुका शासन कहाँ नहीं है ? उसके नेत्रोंसे क्या छिपा है ? यह भूमि उसीकी है। यह महान् विस्तृत आकाश उसीका है।

दोनों सागर उस प्रभुकी कुक्षियोंके समान हैं और इस छोटे-से पानीमें भी विद्यमान हैं। यदि पानीमें छिपकर भी कोई पुण्यकर्म किया जाय तो उसका श्रेष्ठ परिणाम और पापकर्म किया जाय तो कुपरिणाम निकलता है।

उत यो द्यामतिसर्पात् परस्तान्न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः ।
दिव स्पृशः प्र चरन्तीदमस्य सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम् ॥
(अथर्ववेद ४ । १६ । ४)

अर्थात् चाहे कोई आदमी अपने पापकर्म (चोरी, हिंसा, पक्षपात, व्यभिचार, मद्यपान, झूठ, कपट इत्यादि) को छिपानेके लिये आकाशको भी पार करके निकल जाय, पर यह कब सम्भव है कि वह ईश्वरीय शासनसे बाहर हो सके ?

याद रखिये, उस सबसे बड़े शासकके सतर्क दिव्य सिपाही इस संसारमें सर्वत्र चौकन्ने होकर पाप-पुण्यकी खोज कर रहे हैं और हजारो नेत्रोंसे रात-दिन भूमिके बीचमेंसे भी हमारे कार्योंका मूल्याङ्कन कर रहे है।

अग्निः परेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य ।
सम्राडेको वि राजति ॥ (अथर्ववेद ६ । ३७ । ३)

अर्थात् प्रभुके न्यायकी दिव्य ज्योति दूर-से-दूर चमक रही है। वही भूत और भावी कामनाओंका लक्ष्य है। उसीकी न्याय-रश्मि सबके ऊपर राज्य करती हुई सदा जगमगाती है।

ईश्वरके द्वारा मिली हुई सजाएँ

श्री····पुलिस सुपरिंटेंडेंट साहबके इकलौते पुत्र थे। मेरे साथ वे कक्षा ७ से कक्षा १० तक पढ़े थे। शहरके सबसे धनसम्पन्न और रईस आदमियोंमें उनकी गिनती थी। उनके पुत्र मोटरमें बैठ पढ़ने आते थे और बड़े शानसे जीवन व्यतीत करते थे। उनके विवाहमें हमें भी निमन्त्रित किया गया था। २०—२२ हजारका गहना और कपड़ा उन्हें दहेजमें मिला था। दोनों बड़े ही अमीर थे। धनकी धनसे शादी हुई थी। पिताकी सिफारिशसे श्री···भी थानेदार बन गये। उनके ठाटकी कुछ न पूछिये। हर प्रकारकी रंगीनी और मस्तीका दौरदौरा चलता रहता था। पिता कुछ विलासी प्रकृतिके थे। रिश्वत, झूट-कपट, मारधाड़की खूब कमाई आती थी। उनकी संगतिमें श्री····ने शराब पीना सीखा। पिताकी मृत्युके बाद घरका बोझ उनके ऊपर आ पड़ा। कोई नियन्त्रण न रहा। शराबखोरीकी आदत उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी।

आज श्री···फटेहाल मिलते हैं। उनकी सारी सम्पत्ति शराबकी राह निकल चुकी है। पत्नी अध्यापन करके निर्वाह करती है। वे आवारागर्दी करते हैं। ऊपरी कमाईका जो धन जल्दी आया था, उतनी ही जल्दी हाथसे निकल गया है। ईश्वरकी सजा उन्हें मिल रही है। तिरस्कृत और उपेक्षाका जीवन वे बिता रहे हैं।

प्रभु-शासनमें उन्हें झूठफरेब, मद्यपान, अनियन्त्रण, असंयमकी सजा मिल रही है !

× × × ×

श्री···बाबू सेक्रेटेरियटमें उच्च पदपर कार्य करते थे। रजवाड़ोंमें सेक्रेटरी सब गुप्त बातें जानते है और अपने लाभकी कर गुजरते हैं····बाबूने भी घोटाला किया और एक बड़े लंबे बाड़ेको—जिसमें २०–२५ राजके मकान थे, ले बैठे। बात बढ़ी तो नौकरीसे त्यागपत्र दे दिया। दो लाखकी जायदाद थी। उन्होने सोचा—'शेष उम्रके लिये यह काफी हैं। अब राजकी नौकरीकी क्या जरूरत है।' कुछ वर्ष बड़ी मस्तीसे कटे। खाना-पीना, मित्रोंकी आवभगत अच्छी होती रही। शराबका शौक था। उम्रके साथ वह भी बढ़ा। फिर क्या था, एक-एककर सारी जायदाद स्वाहा हो गयी। आज····बाबूकी छोटी-सी दूकान है। वृद्ध हो गये हैं और एक-एक पैसेके लिये मुहताज हैं। जैसे रुपया आया, वैसे ही निकल गया है।

× × × ×

श्री···प्रसादने शराबके ठेकोंमें ढेरों रुपये कमाये। उनकी कई आलीशान कोठियाँ हैं। दिन-रात वे स्कूटरपर इस दूकानसे उस दूकानपर चक्कर लगाते रहते। उनके एकमात्र पुत्रका विवाह धूमधामसे हुआ। शहरभरमें धूम थी। लड़का मनचला था, जिसका एक पॉव सिनेमामें रहता था। उसे पत्नी पसंद न आयी। पत्नीसे मुक्ति पानेके लिये आवेशमें आकर वह उसकी हत्या कर

बैठा। नदीमें फेंकते हुए वह पकड़ा गया। कत्लका मुकदमा चला और अनाप-शनाप रुपया बहानेपर बड़ी मुश्किलसे प्राण बचे। अब भी कोई-न-कोई मुकदमा चलता ही रहता है। शराबमें कमाया रुपया उसी मार्गसे निकल गया।

× × × ×

श्री····माने हुए इंजीनियर हैं। ३० वर्षोंतक सरकारी इंजीनियरके जिम्मेदार पदपर कार्य कर चुके हैं। इंजीनियरको भी ऊपरी आमदनीका मोह होता है; फिर हमारे····* तो इस कलामें दक्ष थे। बड़े ठेकेदारोंसे मिलकर खूब सरकारी ठेकोंसे रुपया उड़ाया। मद्यपान, वेश्यागमन, व्यभिचार, मांसभक्षण सब कुछ किया। दो बार सरकारी मुकदमा भी चला, पर वकीलोंपर रुपया पानीकी तरह बहाकर साफ बच गये। कई लाखके आदमी हैं। पर ईश्वरीय प्रकोप यह है कि उनके कोई भी संतान नहीं है। इधर-उधर अनेक अनैतिक सम्बन्ध किये हैं। उनके कारण बड़ी ही बेइज्जती है। सभी थू-थू करते हैं। किसी भले घरमें आना-जाना नहीं है। गुप्त इन्द्रियके रोगोंसे जिंदा ही नरककी यातनाएँ भुगत रहे हैं। उनका जीवन अशान्ति, अतृप्ति और वासनाके ताण्डवसे रौरव नरक बना हुआ है। ईश्वरीय सजा पूरी चोटके साथ मिल रही है!



* लेखकने उपर्युक्त तीनों घटनाओंमें नाम लिखे थे। पर सम्पादकने नाम निकाल दिये हैं—सम्पादक

*

नाम तो एक भगवान्‌का !

(बालक-बालिकाओंके नाम इस प्रकार चुनिये)

हिंदू ऋषि-मुनि तथा विचारकोंको स्वरविज्ञानका गहरा ज्ञान, अनुभव तथा पहुँच थी। उन्होंने एक-एक स्वर, एक-एक शब्द, एक-एक नाममें छिपी हुई गुप्त नैतिक, मानसिक, आध्यात्मिक और उच्च शक्तियोंकी खोज की थी और जनसाधारणमें ऐसे शब्दों तथा नामोंका प्रचार किया था, जिनसे समाजकी परोक्षरूपमें उन्नति होती रहे। नागरिकोंको देशकी प्राचीन गौरवमयी संस्कृति, धर्म, नीति और इतिहासका ज्ञान रहे और वे अपने नररत्नोंको भूलें नहीं। देशका अतीत सदा उनके मानस-नेत्रोंके सामने रहे और वे धार्मिक महापुरुषोको सदा स्मरण करते रहें। हमारे यहाँके नामोंकी पद्धति स्वर-विज्ञानके नियमोंपर खड़ी हुई है। हमारे अधिकांश नामोंका गुप्त अर्थ है और कुछ नाम तो ऐसे महत्त्वपूर्ण हैं कि उनके उच्चारण-मात्रसे मनमें पवित्र भावो और उच्च आदर्शोंका संचार होता है तथा सात्त्विक वातावरणकी सृष्टि होती है। सम्भव है, कोई ऐसा व्यक्ति हो जो जान-बूझकर परमात्मा या देवी-देवताओंके नामोंका उच्चारण और कीर्तन न करे, लेकिन हिंदू-नामकरणपद्धति इस ढंगसे रक्खी गयी है कि अनजानेमें ही किसी-न-किसी देवता या महापुरुषका नाम घरभरमें फैलता रहे।

हमारे यहाँके कुछ नाम

हिंदुओंके सबसे बड़े देवता भगवान् श्रीरामचन्द्र और योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण हुए हैं। 'राम' और 'कृष्ण' उनके संक्षिप्त रूप हैं। 'राम' और 'कृष्ण'का कीर्तन करनेसे इन दोनों महान् देवताओंके अद्‌भुत कार्य, उत्कृष्टतम चरित्र, गुण, रूप, स्वभाव, शक्ति और आदर्श मनुष्यके मन तथा आसपासके वातावरणमें फैलते हैं। उच्च स्वरसे 'राम-राम' या 'कृष्ण-कृष्ण' उच्चारण करनेसे वातावरण नैतिक और आध्यात्मिक शक्तियोंसे भर जाता है। मनुष्यकी तो क्या, आसपासके विकार और पाप क्षय हो जाते हैं। जो व्यक्ति इस कीर्तनको सुनता है, उसमें भी देवत्वके सद्‌गुणोंका संचार हो उठता है। सर्वत्र पवित्रताकी लहरें फैल जाती हैं।

लेकिन कुछ ऐसे सांसारिक व्यक्ति हैं जो भगवान्‌का भजन-कीर्तन नित्य नियमित रूपसे नहीं करते; व्यापार, घर-गृहस्थ, परिवार या सांसारिक कार्योंमें फँसे रहते हैं। ऐसे व्यक्तियोंके लिये यह जरूरी था कि उनसे भगवान्‌के किसी नामको बरबस उच्चारण कराया जाय और बार-बार उच्चारण कराकर उनकी मुक्तिका द्वार खोला जाय। इसलिये बड़ी संख्यामें ऐसे नाम बनाये गये जिनके प्रारम्भ या अन्तमें 'राम' या 'कृष्ण' शब्दोंका प्रयोग हो। बच्चोंका नाम तो मनुष्य दिनमें दस-बीस बार पुकारता ही है। बस, बच्चोंके नाम पुकारनेसे भगवान्‌का नाम भी मुँहसे निकलता रहता है और इस प्रकार मनुष्यके वातावरणकी शुद्धि होती रहती है। जिस बालकका नाम किसी देवी-देवतापर है, वह भी धीरे-धीरे उन्हींके

शुद्ध गुण और आध्यात्मिक शक्तियाँ प्राप्त कर लेता है। उसे सदा अपनी श्रेष्ठताका ज्ञान रहता है।

भगवान् श्रीरामकी पुण्यस्मृतिको सजग करनेके लिये हमारे पूर्वजोंने ऐसे अनेक नाम बनाये हैं जिनके प्रारम्भ या अन्तमें 'राम' शब्दका प्रयोग हुआ है, जैसे—रामचन्द्र, श्रीराम, सियाराम, सीताराम, रामकुमार, रामलाल, राममोहन, रामदयाल, रामलखन, रामप्रसाद, रामनरेश, रामचरन, रामसिंह, रामप्रकाश, रामकिशन, रामप्रतापसिंह, जैराम, राजाराम, संतराम, बलीराम, हरीराम, परशुराम, रामउजागर, रामदास, रामनारायण, रामनयन, रामलला, रामविलास, रामशरन, रामकिशोर, रामगोपाल, रामकृष्ण, रामखेलावन, रामगोविन्द, रामजीदास, रामजीलाल, रामजीवनसिंह, रामजीशरण, रामदत्त, रामदहिन, रामधन, रामदुलारे, रामदीन, रामधर, रामधारीसिंह, रामनन्दन, रामनाथ, रामपदार्थ, रामपाल, रामपरीक्षा, रामप्रीति, रामबली, रामहित, राममूर्ति, रामसेवक, रामबालक, राममनोहर, रामलोचनशरण, रामवृक्ष इत्यादि।

योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी पुण्य-स्मृति तथा गुण बनाये रखनेके लिये अनेक नाम बनाये गये, जिनके शुरू या अन्तमें कृष्ण, किशन, श्याम, कन्हैया आदि शब्दोंका इस प्रकार उपयोग हुआ—श्रीकृष्ण, किशन, रामकृष्ण, कृष्णगोपाल कृष्णलाल, कृष्णचन्द्र, कृष्णसहाय, कृष्णस्वरूप, कृष्णदास, कृष्णबिहारी, कृष्णमूर्ति, कृष्णदयाल, कृष्णमोहन, हरीकृष्ण, कन्हैया, कन्हैयालाल, राधाकृष्ण, जयकिशन, राधेश्याम, श्रीकृष्णराय, श्यामदत्त, श्यामधारी, श्याम,

श्यामनारायण, श्यामबहादुरसिंह, श्याममनोहर, श्याममोहन, श्यामलाल, श्यामवदन, श्यामविहारी, श्यामसुन्दर, श्यामकान्त, मनमोहन, गोपीकृष्ण, गोपाल, मुरलीधर, वंशीधर, अतुलकृष्ण आदि।

'हरि' और 'नारायण' भी ईश्वरके नाम हैं। 'हरि' और 'नारायण' शब्दको लेकर कुछ नाम बनाये गये—जैसे हरिदास, हरिदेव, हरिनामदास, हरिनारायण, हरिवंशसहाय, हरिशरण, हरिकृष्ण, हरिदत्त, हरिद्वारीलाल, हरिशंकर, हरिश्चन्द्र, हरिसेवक, हरिहरनिवास, हरिहर, हरिराम, हरीश, हरेकृष्ण, नारायण, नारायण-स्वरूप, जगन्नारायण इत्यादि।

'श्री' शब्दसे विष्णुकी पत्नी लक्ष्मीका बोध होता है। इसीका अर्थ कमला और सरस्वती भी है। यह कमलका भी प्रतीक है। इससे धर्म, अर्थ और कामकी सिद्धि होती है। धन-दौलत और कीर्ति मिलती है। इसमें कान्ति और चमकका भी भाव है। अतः 'श्री' शब्दका प्रयोग कर हिंदुओंने अनेक नाम प्रचारित किये हैं जैसे श्रीकंठ (महादेव), श्रीकान्त (विष्णु) श्रीकृष्ण, श्रीदाम (सुदामाका नाम), श्रीधर (विष्णु), श्रीनिवास (विष्णु और वैकुण्ठ), श्रीपति (विष्णुनारायण, हरि) श्रीमन्त, श्रीरंग (विष्णु), श्रीरमण (विष्णु), श्रीवत्स (विष्णु), श्रीलाल, श्रीनाथ, श्रीनाथसिंह, श्रीधर, श्रीनारायण, श्रीप्रकाश, श्रीमन्नारायण, श्रीमोहन, श्रीराम, श्रीहरि इत्यादि।

'शिव' महादेव शंकरका पवित्र नाम है। वह परम मङ्गलकारी एवं कल्याणकारी है। 'शिव' शब्दसे जलका भी बोध होता है और

जल जीवनका मतलब रखता है। जहाँ जल है, वहाँ जीवन है, बिना जल जीवन नहीं। इसीलिये शिवजीकी जटाओंसे गङ्गाजल बहनेका विधान रक्खा गया है। शिवका एक अर्थ 'मोक्ष' भी है। शिव सृष्टिका संहार करनेवाले और पौराणिक त्रिमूर्तिके अन्तिम देवता हैं। अतः अनेक नाम 'शिव' या 'शंकर' शब्दोंको लेकर बनाये गये थे। जैसे—शिवनन्दन, शिवस्वरूप, शिवप्रसाद, शिवाजी, शिवशंकर शंकरलाल, शंकराचार्य, शिवशंकरप्रसाद, शंकरस्वामी, शिवबालक, शिवरत्न, शिवसहाय, शिवमूर्ति, शिवसेवक शिवपूजनसहाय, शिव-नारायण, शिवप्रताप, शिवनाथ, शिवदानसिंह, शिवकुमार, शिवचन्द्र, शिवदत्त, शिवचरण, हरिशंकर आदि।

'ब्रह्म' ब्रह्मके तीन सगुण रूपोंमेंसे सृष्टिकी रचना करनेवाला हितकारी रूप है। यह विधाताका सूचक है पितामह है। अतः 'ब्रह्मा' शब्दको लेकर अनेक हिंदू नाम प्रचलित हुए—जैसे ब्रह्मानन्द, ब्रह्मसहाय, ब्रह्मादत्त।

'विष्णु' हिंदुओंके एक प्रधान देवता हैं जो सृष्टिका भरण-पोषण और पालन करनेवाले हैं तथा ब्रह्मका एक विशेष रूप माने जाते हैं। इस 'विष्णु' शब्दको लेकर अनेक नाम बने हैं, जो हमें संसारमें समाज-सेवाकी याद दिलाते हैं। कुछ नाम देखिये—विष्णु-प्रसाद, विष्णुदयाल, विष्णुहरि, विसुनस्वरूप, विष्णुस्वरूप, विष्णुगुप्त, विष्णुचन्द्र, विष्णुशरण, विष्णुराम, विष्णुदत्त, विष्णुप्रभाकर इत्यादि।

'हनुमान्' बल, पराक्रम, वीरता, ब्रह्मचर्य, आज्ञाकारिताके लिये प्रसिद्ध हैं। मनुष्य जब भय या संकटमें होता है, तो अनुकूल-

स्वामी वीर महाबली हनुमान्का स्मरण करता है। इस नामके स्मरणसे मनमें शक्ति और साहस पैदा होता है। खोया हुआ आत्मविश्वास जाग्रत् होता है। मनुष्य अपना मानसिक संतुलन प्राप्तकर नवीन उत्साहसे कर्तव्य-पथपर आगे बढ़ता है। अतः महाबली हनुमान्को लेकर नाम बने हैं, जैसे—हनुमानप्रसाद, हनुमानदास, हनुमन्त, हनुमान्सहाय, महावीर, महावीरप्रसाद, पवनकुमार।

'जानकी' जनककी पुत्री, महापतिव्रता सीताजीके पावन चरित्रकी यादगारमें अनेक नाम चले हैं। यह बालिकाओंका नाम होता है, पर पुरुषोंके नाममें भी इसका प्रयोग किया गया है, जैसे—जानकीनन्दन, जानकीनाथ, जानकीलाल, जानकीजीवन, जानकीशरण, जानकीवल्लभ, जानकीप्रसाद, सीताराम, सीताशरण, सीतापति आदि।

'राधा'को लेकर कुछ नाम बने, जैसे—राधेलाल राधारमण, राधाकृष्ण राधावल्लभ, राधाशंकर, राधामोहन, राधिकादास, राधागोविन्द आदि।

लक्ष्मीके प्रति जनसाधारणकी बड़ी रुचि और श्रद्धा रही है। वे विष्णुकी पत्नी और धनकी देवी हैं सांसारिक सुख और समृद्धि देनेवाली हैं। धन-दौलत उन्हींकी कृपासे मिलती है। शोभा और सौन्दर्यपर भी उनका अधिकार है। इसलिये बहुत-से हिंदू अपनी कन्याओंका नाम लक्ष्मी ही रखते हैं। पुरुषोंके नामोंमें भी 'लक्ष्मी' जीके पवित्र शब्दका प्रयोग हुआ है। इससे जनसाधारणका रुपये-पैसेके प्रति मोह प्रकट होता है। 'लक्ष्मी'से सम्बन्धित कुछ नाम

देखिये, जैसे—लक्ष्मीपति, लक्ष्मीधर, लक्ष्मीलाल, लक्ष्मीनिवास, लक्ष्मीशंकर, लक्ष्मीनारायण, लक्ष्मीनिधि, लक्ष्मीकान्त, लखमीचन्द्र, लक्ष्मीप्रसाद, लक्ष्मीसागर, लक्ष्मीनाथ, लक्ष्मीदत्त ।

'ईश्वर' शब्दको लेकर ईश्वरीप्रसाद, ईश्वरचन्द्र, जगदीश्वर, इत्यादि नाम चले । यह भी महादेवका एक नाम है ।

इन्द्र हमारे एक प्रसिद्ध वैदिक देवता हैं, जिनका स्थान अन्तरिक्ष है और जल बरसाते हैं । देवताओंके राजा कहे गये हैं । ये ऐश्वर्य और विभूतिके प्रतीक हैं । श्रेष्ठ हैं । बड़े हैं । अतः 'इन्द्र' शब्द और उसी अर्थको लेकर कुछ नाम प्रचलित हुए, जैसे—नरेन्द्र, महेन्द्र, इन्द्रजीत, इन्द्रदत्त, इन्द्रदेव, इन्द्रनाथ, इन्द्रनारायण, इन्द्रकुमार इत्यादि ।

'गणेश' हमारे ऋद्धि-सिद्धि देनेवाले प्रधान देवता हैं । उनकी कृपासे मनुष्यको लक्ष्यकी सिद्धि होती है और मार्गकी सब बाधाएँ क्षणमात्रमें दूर हो जाती हैं । हम जिस कार्यको कठिन समझते हैं, गणेशका नाम लेकर करते हैं और वह सदा पूर्ण होता है । अतः गणेशका स्मरणमात्र ही बाधा दूर करनेवाला है । कन्याओंका नाम प्रायः गणेशी रखा जाता है । 'गणेश' शब्दसे ये नाम प्रचलित हुए हैं—गणेश, गणपति, गजाधर, गणपतिचन्द्र, गणपतिसिंह, गणेशदत्त, गणेशप्रसाद, गणेशीलाल आदि ।

गङ्गाजीके प्रति हिंदूमात्रके हृदयमें अगाध श्रद्धा है । उनमें स्नान करनेसे तीनों ताप दूर होते हैं । भारतीय मनीषियोंने इसे कल्याणकारिणी, कलिमलहारिणी, पतितपावनी तथा मोक्षदायिनी आदि

सद्विशेषणोंसे विभूषित किया है। गङ्गाजीके अवतरणकालसे आजतक समस्त महात्माओंने उनकी महिमाका गान किया है। गङ्गा, गीता, गायत्री, गणेश हमारे यहाँके प्रेरणास्रोत हैं। अतः 'गङ्गा' शब्दको लेकर काफी नाम बने हैं, जैसे—गंगाप्रसाद, गंगाधर, गंगानन्द, गंगापति, गंगाविष्णु, गंगाशरण इत्यादि।

इसी प्रकार यमुना भगवान् श्रीकृष्णकी पावन लीलाओंसे सम्बद्ध है। 'यमुना' शब्दका भी इसी प्रकार प्रयोग किया गया है, जैसे—यमुनाप्रसाद, जमनाप्रसाद, जमनादास।

चन्द्रमाको हम पूजते हैं। 'चन्द्र' आनन्ददायक और हर प्रकार मङ्गलकारी है। उपवासके बाद चन्द्रमाके दर्शन कर भोजन-ग्रहणका विधान है। अतः 'चन्द्र' शब्दको लेकर कुछ नाम बने हैं, जैसे—चन्द्रमौलि (शिव), चन्द्रलेखा, चन्द्रभूषण (महादेव), चन्द्रभाल (शिव), चन्द्रधर (शिव), चन्द्रचूड़ (शिव), चन्द्रगुप्त, चन्द्रमणि, चन्द्रशेखर (शिव), चन्द्रकिशोर, चन्द्रकान्त, चन्द्रदेव, चन्द्रप्रकाश, चन्द्रप्रभा, चन्द्रबली, चन्द्रमणि, चन्द्रभानु, चन्द्रमनोहर, चन्द्रमाराय, चन्दालाल, चन्द्रराज, चन्द्रसिंह, रामचन्द्र, चन्द्रावती, चन्द्रिकाप्रसाद, जैचन्दलाल, चन्दूलाल।

'जगदीश' परमेश्वरका नाम है। इस शब्दसे विष्णु तथा जगन्नाथका भी बोध होता है। अतः 'जगदीश' नाम कल्याणकारी है। इसीसे हमारे यहाँ अनेक नाम चलाये गये। जैसे—जगदीश्वर, जगन्नाथ, जगदीशचन्द्र, जगदीशनारायण, जगदीशप्रसाद, जगदीश-सहाय, जगदीशसिंह, जगनलाल, ज़गनसिंह।

'जय' शब्द विष्णुके एक पार्षदका नाम है। इससे 'लाभ' और 'विजय' का बोध होता है। जय लगानेवाला नाम संसारमें सर्वत्र विजयी होता है, शत्रुओंको हराता है। अतः 'जय' का प्रयोग अनेक हिंदू नामोंमें किया गया है, जैसे—जयपाल (विष्णु), जयमंगल, जयकान्त, जयकिशोर, जयगोपाल, जयचन्द्र, जयदेव, जयदेवप्रसाद, जयनाथ, जयनारायण, जयराम, जयभगवान इत्यादि ।

'दिनेश' दिनके अधिपति हैं। इनसे सर्वत्र प्रकाश फैलता है। दिनेश ज्ञानका प्रतीक है। इसलिये हमारे यहाँ 'दिनेश' को लेकर भी कई नाम बने, जैसे—दिनेशचन्द्र, दिनेशनन्दिनी, दिनेशदत्त, दिनेशनन्दन, दिनेशनारायण, दिनकर इत्यादि ।

'देव'का अर्थ है देवता अर्थात् वह मनुष्य जो देवताओं-जैसे सद्गुण अपने चरित्रमें रखता है। देवता वह है जो समाजको अधिक-से-अधिक देता है और कम-से-कम लेता है। वह उच्चतम देवगुणोंसे विभूषित होता है। उसका जीवन ही समाजके लिये है। अतः हमारे यहाँ 'देव' शब्द लगाकर पवित्रताका बोध कराया गया। जैसे—देवदत्त, देवराज, देवनारायण, देवनाथ, देवव्रत, देवकृष्ण, हरदेव, रामदेव, कृष्णदेव, लक्ष्मणदेव, देवर्षि। इसी प्रकार 'देवी' शब्द भी प्रयुक्त हुआ, जैसे—देवीदत्त, देवीदयाल, देवीदास, देवीदीन, देवीप्रसाद, देवीरत्न, देवीलाल, देवीशरण, देवीसहाय। स्त्रियोंके नामोंके अन्तमें 'देवी' शब्द पवित्रताका द्योतक है। अधिकांश स्त्रियोंके नामोंके साथ हमारे यहाँ देवी जोड़ दिया जाता है। कुछ स्त्रियोंके नाम इस प्रकार हैं। जैसे—द्रौपदीदेवी, सावित्री-

देवी, हरिदेवी, महादेवी, सुमित्रादेवी, लक्ष्मीदेवी, दुर्गादेवी, कौशल्या-देवी, रमादेवी, गायत्रीदेवी, चित्रादेवी, मृदुलादेवी, सीतादेवी, राधादेवी, जानकीदेवी, लखमीदेवी, सरस्वतीदेवी, अनसूयादेवी, नारायणीदेवी, विष्णुदेवी, रामदेवी, गिरिजादेवी, पार्वतीदेवी इत्यादि ।

'धर्म' शब्दका प्रयोग बच्चेकी धार्मिक प्रवृत्तियाँ दृढ़ करनेके लिये अनेक स्थानोंपर किया गया है । जैसे—धर्मपाल, धर्मप्रियलाल, धर्मलाल, धर्मवीर, धर्मसिंह, धर्मेन्द्र, धर्मदत्त, इत्यादि ।

'नन्द' आनन्द और हर्षका सूचक है । परमेश्वरका एक नाम है । विष्णुका नाम है । साथ ही नन्द गोकुलके गोपोंके मुखिया थे, जिनके यहाँ श्रीकृष्णको उनके जन्मके समय वसुदेवजी जाकर रख आये थे । अतः नन्दका भी काफी प्रयोग हुआ है, जैसे—नन्द-किशोर, नन्दकुमार, नन्ददुलारे, नन्दलाल, नन्दनन्दन (श्रीकृष्ण), हरिनन्दन, सुमित्रानन्दन, पार्वतीनन्दन, नन्दन, नन्दिनी, नन्दा (दुर्गा, गौरीका नाम), नन्दीश्वर (शिव) इत्यादि ।

इसी प्रकार हमारे समाजमें असंख्य पवित्र नाम हैं, जिनका सम्बन्ध प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षरूपसे हमारे धर्म, संस्कृति, वेद, पुराण, पवित्र तीर्थ, नदी, ऋतुसे संयुक्त है । जिस बच्चेमें हम जैसे गुणोंका विकास करना चाहते हैं, वैसे गुणोंका बोध करानेवाला नाम ही चुनना चाहिये । हमारे यहाँ नारियोंके भी असंख्य पवित्र नाम हैं जो देवियों, पतिव्रताओं, विदुषियों या वीराङ्गनाओंके नामोंपर हैं । अपने बालक-बालिकाको उच्चतम, श्रेष्ठतम और पवित्रतम धार्मिक नामसे ही सम्बोधित कीजिये । इससे आप, वह बालक, परिवार

नगर, देश सभीका कल्याण होगा। प्राचीन गौरवमयी संस्कृतिकी यादगार तरोताजा बनाये रखनेके लिये ये नाम महत्त्वपूर्ण है।

नामका चुनाव बहुत सूझ-बूझसे कीजिये। हमारे पूर्वजोंकी यह बुद्धिमानी तथा भगवन्निष्ठा थी कि वे नामकरणमें प्रायः ऐसे ही नाम रखते तथा घरमें, पत्रव्यवहारमें, परस्पर मिलनेमें भी ऐसे शब्दोंका उच्चारण करते जिनसे भगवान्का सम्बन्ध होता। पत्रोंमें सबसे ऊपर ॐ, श्रीहरि, श्रीरामजी आदि लिखते। पत्रोमें अमुकसे अमुककी जय रामजीकी, रामराम, जयगोपाल, जय माताजी बंचना, मिलनेपर जय ठाकुरजी, जय रामजी, जय श्रीकृष्ण, जय शंकर, जय माताजी अदि कहते। भीख माँगनेवाले नारायण, हरि, जय शंकर, जय दुर्गे, जय हरि पुकारते, मरनेपर शवयात्रामें रामनाम सत्य है, हरिहरि आदि उच्चारण करते, नहाते समय भगवान्का नाम, सोते समय भगवान्का नाम, उठते ही भगवान्का नाम, जम्हाई लेते भगवान्का नाम--इस प्रकार प्रथाके रूपमें ही दिनमें कई बार सहज ही भगवान्के मङ्गलमय नामोंका उच्चारण हो जाता। अजामिलने बच्चेका नाम 'नारायण' रक्खा था और अन्तसमयमें 'नारायण' नामका उच्चारण करके वह पवित्र हो गया। यह हमारी पवित्र संस्कृतिका ही एक अङ्ग था। अब कलात्मक नाम रक्खे जाते हैं। पढ़े-लिखे लोगोंके पत्रव्यवहार आदिमें तो कहीं भूलकर भी भगवन्नामका सम्पर्क नहीं आ पाता। यह वास्तवमें बहुत बड़ी हानि है। इस ओर ध्यान दिया जाय तो अच्छा है।

कभी ऐसे थे हम !

भारतकी प्रशस्त परम्पराएँ फिरसे लौटें

भारतीय संस्कृति संसारकी संस्कृतियोंमें अन्यतम है। संसारमें हिंदू तत्त्ववेत्ता ही सबसे अधिक विद्वान् और दूरदर्शी हुए थे तथा उन्होंने भारतीय संस्कृतिकी नींव ऐसी पुष्ट आधारशिलाओंपर रक्खी थी, जिससे मनुष्यके सर्वोच्च सद्गुणोंका विकास होता है। इसमें ऐसे-ऐसे आधारभूत तत्त्वोंको प्रोत्साहन दिया गया है, जिनका विकास होनेपर नररत्नोंका जन्म होता है और जो आज भी मानवताके सिरमौर हैं। भारतीय संस्कृतिके वातावरणमें ढलकर महापुरुष जन्म लेते हैं।

भारतीय संस्कृतिके ढाँचेमें ढले हुए नर-रत्न अपने दिव्य प्रकाशसे संसारमें प्रकाश उत्पन्न करते आये हैं और इसी आकर्षणके कारण विश्वकी जनता उन्हें जगद्गुरु चक्रवर्ती शासक एवं भूसुर—पृथ्वीका देवता मानती थी। भारत स्वर्गकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ समझा जाता था। अतीत भारतका इतिहास इस तथ्यका मुक्तकण्ठसे उद्घोष कर रहा है।

भारतीय संस्कृतिके वातावरणके कारण प्राचीन भारतमें घर-घर स्वर्ग-जैसी शान्ति एवं सद्भावनाओंका निवास रहता था। पिता-पुत्रके बीच कैसे भव्य और पवित्र सम्बन्ध थे, इसका उदाहरण देखना हो तो विमाताकी आज्ञासे १४ वर्षोंके लिये वनवास जानेवाले रामचन्द्र, अंधे माता-पिताको कंधेपर काँवरमें बिठाकर तीर्थ करानेवाले श्रवणकुमार, पिताके दानपर यमपुरी खुशी-खुशी प्रस्थान करने-

वाले नचिकेता, पिताको संतुष्ट करनेके लिये आजीवन ब्रह्मचर्यका पवित्र और दृढ़ व्रत लेनेवाले भीष्मका चरित्र पढ़ लेना चाहिये।

भाई-भाईके प्रति क्या कर्तव्य है, इस सम्बन्धकी झाँकी लेनी हो तो राम, लक्ष्मण और भरतका चरित्र पढ़ लेनेसे सहज ही हो जाती है। कौरवोंको जब यक्षोंने बंदी बना लिया था, तो युधिष्ठिरने भ्रातृ-प्रेमसे वशीभूत होकर, कटुता होते हुए भी, उन्हें शत्रुसे मुक्त कराया था। पुष्करके दुर्व्यवहारको भुलाकर नलने अपने भाईको क्षमा कर दिया था। ऐसे भ्रातृ-स्नेहके उदाहरण भारतमें पग-पगपर मिलते हैं।

सच्चे मित्र कैसे होते हैं ? इसका उदाहरण श्रीकृष्णने सुदामा और अर्जुनके साथ अपना कर्तव्य पालन करके दिखाया था। कहाँ द्वारकाके राजा श्रीकृष्ण, कहाँ दीन सुदामा। लेकिन धन और ऐश्वर्य मित्रताके मार्गमें बाधक न बन सका। प्रेम, सहानुभूति, दया, करुणा, भाईचारेके सामने धन और ऐश्वर्य न टिक सका।

पति-पत्नीके बीच कैसे आदर्श सम्बन्ध होने चाहिये, इसके असंख्य उदाहरण भारतमें मिलते हैं, जो हमारे यहाँके पत्नीव्रती पुरुष और पतिव्रता नारियोंने पग-पगपर उपस्थित किये हैं। सीता, सावित्री, शैव्या, दमयन्ती, गान्धारी, अनुसूया, सुकन्याकी कथाएँ भारतमें आज भी घर-घर गायी जाती हैं। पर-स्त्रीको माता एवं पुत्री समझनेवाले भी सभी कोई थे। छत्रपति शिवाजीद्वारा यवन-कन्याको आदरसे सुरक्षित रूपमें राजमहलमें पहुँचा देना, अर्जुनका उर्वशीको लौटा देना, कचका रूप-गर्विता देवयानीका प्रस्ताव अस्वीकार करना, शूर्पणखाका लक्ष्मणद्वारा उपहास-जैसे इन्द्रिय-संयमके असंख्य प्रसंग

हमारे इतिहासमें भरे पड़े हैं। भीष्म और हनुमान्-जैसे अखण्ड ब्रह्मचारी भारतमें प्रचुर संख्यामें मिलते है। विश्वमें शायद ही कोई ऐसा देश होगा, जहाँ ऐसे अद्भुत उदाहरण इतनी बड़ी संख्यामें मिल सकें।

अतिथि-सत्कार भारतमें एक धार्मिक कृत्य है। अतिथिको हम देवतासे किसी प्रकार भी कम नहीं मानते। शायद भारत ही वह देश है, जहाँ आतिथ्यभावना इतनी ऊँचाईपर पहुँच पायी है। अतिथिकी सेवा और सत्कारके लिये मोरध्वजका अपना शरीरतक दे देना, दुर्भिक्ष-पीड़ित समयमें अनेक दिनोसे भूखे ब्राह्मण-परिवारका अपनी थालीकी रोटियाँ चाण्डालको दे देना आदि अनेक प्रकाश-स्तम्भ महाभारतमें देखे जा सकते हैं। कबूतर-जैसे छोटे-से पक्षीकी रक्षाके लिये राजा शिविने अपना मांस काट-काटकर दे दिया था और जीवनकी जरा भी परवा न की थो। इसी प्रकार महारानी कुन्तीने ब्राह्मण-कुमारके बदले अपने पुत्र भीमको राक्षसका आहार बननेके लिये भेजा था—ये सब उदाहरण भारतके इतिहासमें एक उच्च दिशाके सूचक है।

अपने स्वार्थ, सुख-साधन, धन-सम्पदा-संग्रह, ऐश-आरामको लात मारकर अपनी आत्माका कल्याण करनेके लिये लोकसेवक और परमार्थका जीवन व्यतीत करनेमें भारतीय व्यक्ति अपने जीवनकी सफलता मानते रहे हैं। गौतम बुद्ध अपने राजपाट और सौभाग्यको छोड़कर, हिंसा और अज्ञानमें डूबे संसारको दया और आत्मज्ञानकी शिक्षा देनेके लिये निकल पड़े थे। कहाँ एक ओर विपुल धन-ऐश्वर्य, कहाँ दूसरी ओर महान् त्याग, संयम और वैराग्य। इसी प्रकार

भगवान् महावीरने लालची और विषयासक्त दुनियाको त्याग और संयमका पाठ पढ़ानेके लिये अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया था। भगीरथने राज-सुखको छोड़कर दीर्घकालतक कठोर तप किया था और प्यासी पृथ्वीको तृप्त करनेके लिये तरण-तारिणी गङ्गाका अवतरण करानेका महान् कार्य पूर्ण किया था, यह है सर्वोच्च त्याग और सेवाके क्षेत्रमें भारतका योगदान !

यही वह उच्चतम संस्कृति है, जिसने संसारका हित करनेके लिये कभी अपनी कुछ परवाह नहीं की थी।

भगवान् बुद्ध जब अपनी जीवन-लीला समाप्त करने लगे, तो उनके प्रिय शिष्योंने कातर होकर उनसे पूछा—

'भगवन् ! आप तो मुक्तिके लिये प्रयाण कर रहे है, अब हमारा मार्ग-दर्शन कौन करेगा ?'

बुद्धने उत्तर दिया—'जबतक संसारमें एक भी प्राणी बन्धनमें बँधा हुआ है, तबतक मुझे अपनी मुक्तिकी कोई कामना नहीं है। मैं मानवमात्रका उत्कर्ष करनेके लिये बार-बार जन्म लेता और मरता रहूँगा।'

ऐसी थी उनकी लोकहितकी भावना। अपने लिये कुछ नहीं बहुजनसुखाय, बहुजनहितायमें भगवान् बुद्ध सतत प्रयत्नशील रहे।

स्वामी दयानन्द सरस्वती भी योगसाधना करते हुए हिमालय गये थे। यहाँ उन्हें ईश्वरीय प्रेरणा हुई कि 'लोक-सेवा ही सर्वोत्तम योगसाधना है।' स्वामीजी यह लोक-सेवाका अमूल्य उपदेश लेकर तपस्यासे लौट आये और जीवनभर जीर्ण-शीर्ण रूढ़ियोंसे आबद्ध अज्ञान-ग्रस्त जनतामें सद्ज्ञानका प्रचार करनेमें ही अपनी साधना

मानते हुए उन्होंने जीवन समाप्त कर दिया। जनताको रूढियोंसे मुक्तकर आडम्बरशून्य जीवनकी ओर उन्मुक्त करना ही उनके जीवनका चरम लक्ष्य रहा।

भारतीय संस्कृतिमें आध्यात्मिक ज्ञानके विस्तारके लिये गुरु-शिष्यकी प्रशस्त परम्परा रही है। यह भारतकी विश्व-संस्कृतिको मौलिक और अभूतपूर्व देन है। हमारे देशमें गुरु-शिष्यकी परम्पराका शरीरका सम्बन्ध नहीं, सीधे आत्मासे है। साधकका जीव गुरुके जीवका शिष्य बनता है। इसलिये गुरुके शरीरत्यागके पश्चात् भी उसको उनसे निर्बाध प्रेरणा मिलती रहती है। हमारे यहाँ गुरु आत्मरूप है, देहरूप नहीं। शिष्य भी तब ऐसे ही होते थे। वे गुरुके लिये बलिदान करनेको सहर्ष तैयार रहते थे। एकलव्य, आरुणि, उद्दालक, धौम्य, नचिकेता आदि भारतीय शिष्योंके चरित्र पढ़नेसे हमें भारतीय संस्कृतिपर सहज ही गर्व होने लगता है।

आप पूछेंगे, भारतीय संस्कृतिमें पले हुए राजा कैसे होते थे? इसका एक उदाहरण राजा जनकके चरित्रसे मिल सकता है। वे प्रजाकी सेवाको ही अपने जीवनका महत्तम उद्देश्य मानते थे और सच्चे अर्थमें प्रजाके सेवक थे। अपने जीवन-निर्वाहके लिये वे परिश्रम करके स्वयं कमा लेते थे और राजकोषसे अपने व्ययके लिये एक कौड़ी भी नहीं लेते थे। जनक राज्य-कार्य और न्याय-व्यवस्था अपना कर्तव्य माना करते थे और जीविकाके लिये स्वयं खेती करके अन्न उत्पन्न कर लेते थे। स्वयं सब श्रम करते थे और

उन्हें जन-जीवनके कष्टोंका भी पर्याप्त ध्यान था। वे जन-जीवनमें साधारण व्यक्तियोंकी तरह दिलचस्पी लेते थे।

छत्रपति शिवाजीका आदर्श भी यही था। उनके गुरुका नाम समर्थ रामदास था। वे निरन्तर गुरु रामदासजीके आदर्शोंपर चलते थे। यहाँतक कि एक समय तो ऐसा आया कि उन्होंने अपना सारा राज्य ही गुरुके चरणोंपर अर्पित कर दिया था और स्वयं गुरुके आज्ञानुसार एक मुनीमकी तरह राज्यका संचालन करते रहे। उसी देख-रेखमें मराठाराज फला-फूला और असंख्य प्रतिकूलताके बावजूद पनपता रहा, भयंकर कठिनाइयोंमें भी उसकी निरन्तर उन्नति होती रही।

भरतका उदाहरण खोजे भी संसारमें अन्यत्र नहीं मिलेगा। राजा रामकी चरण-पादुकाओंको ही शासक मानकर वे स्वयं एक तुच्छ सेवककी भाँति चौदह वर्षोंतक राज-संचालन करते रहे थे। हर प्रकारका अवसर होते हुए और ज्येष्ठ भ्राताके दूर रहनेपर भी कभी उन्होने राजको हड़प कर जानेकी कल्पनातक नहीं की। यह भारतीय संस्कृतिके उच्च संस्कारोंका ही प्रताप था।

आज भी धौलपुर राजगद्दीके मालिक नृसिंह भगवान् और मेवाड़की राजगद्दीके मालिक भगवान् एकलिंगजी माने जाते रहे हैं। इन स्थानोंके राजाओंने कभी स्वयंको अधिपति नहीं माना। केवल अपने-आपको राज्यका विनम्र सेवक और संचालक माना। पीछे यद्यपि यह बात दिखावामात्र रह गयी, पर प्रारम्भमें यह त्याग भी उसी श्रृंखलाका एक प्रतीक अवश्य था।

राजा विक्रमादित्य प्रजाकी वास्तविक स्थितिसे परिचय प्राप्त करनेके लिये भेष बदलकर प्रजाजनोंकी कठिनाइयाँ जाननेके लिये घूमते रहते थे। प्रजाकी सच्ची सेवा, उनकी उन्नति और खुशहालीके लिये सदा-सर्वदा सब कुछ करनेको प्रस्तुत रहना, उनके सुख-सुविधाओंको बढ़ाना—यही उनका प्रधान लक्ष्य रहा था। इसी प्रकार महाराणा प्रताप राज-सुखकी परवा न करके जीवनभर मेवाड़को आजाद करानेके लिये स्वाधीनता-संग्राममें धर्मयुद्ध करते रहे थे। महान् राजपुत्र वीर दुर्गादास राठौर और छत्रसालकी गाथा सर्वविदित है। ये शासक हमारी संस्कृतिके प्रतिनिधि हैं।

राजा ही नहीं, यहाँके मन्त्रीगण भी निःस्वार्थ, त्यागी, निर्लेप और कुशाग्रबुद्धि हुए हैं। अपने व्यक्तिगत लाभकी कभी कोई कामना उन्होंने नहीं की। वे सदा निष्पक्षभावसे सत्यकी रक्षा करते रहे। अपराधके प्रति वे कठोर रहे। चाणक्यका जीवन भारतीय संस्कृतिका नमूना है। विश्वका यह अद्भुत कुशाग्रबुद्धि कूटनीतिज्ञ एक फूसकी झोपडीमें गरीब लोगोंकी भाँति अपना जीवन व्यतीत करता था और राज्य-कोषमेंसे अपने व्यक्तिगत व्ययके लिये कुछ भी नहीं लेता था।

कहनेका तात्पर्य यह है कि भारतीय संस्कृतिमें वे मूलभूत तत्त्व, वे उच्च आदर्श, वह नैतिकता, वह त्याग, तपस्या, बलिदान, संयमकी भावनाएँ भरी पड़ी हैं, जिनके वातावरणमें रहनेसे महा-पुरुषोंका जन्म हो सकता है।

दोनोंकी उपासना एक साथ सम्भव नहीं

'प्राणोंका संकट आनेपर भी धर्मकी रक्षा आवश्यक है। सर्वस्व त्यागकर भी मनुष्यको अपना धर्म-मार्ग नहीं छोड़ना चाहिये।'

ये शब्द भीष्मपितामह कह रहे थे। वे तीरोंकी शय्यापर मरणासन्न पड़े थे। अन्तिम समय आ गया था। मृत्यु जब निकट आती है तो पुरानी स्मृतियाँ धीरे-धीरे याद आती हैं। अच्छी-बुरी सब बातें एक-एक कर उनकी चेतनाके पटलपर आ रही थीं। वे सबको ज्ञानका उपदेश दे रहे थे। अनेक व्यक्ति सुन रहे थे।

'सर्वस्व त्यागकर भी धर्म-मार्ग नहीं छोड़ना चाहिये।' यह बात सुनकर द्रौपदीको हँसी आ गयी। सब द्रौपदीकी ओर देखने लगे आश्चर्यसे।

'द्रौपदी हँसी क्यों? क्या उसे यह महत्त्वपूर्ण बात अनुचित प्रतीत हुई? उसके मनमें क्या कोई शंका है? कोई मतभेद है? आखिर क्या बात है?'

द्रौपदीकी वह मुस्कराहट अनुभवी पितामहके ज्ञान-नेत्रोंसे न छिप सकी। वे बोल उठे—

'तुम मेरी बातपर हँसी क्यों बेटी! क्या कोई शंका है?'

बेचारी द्रौपदीको उस हँसीपर बड़ी आत्मग्लानि हो रही थी। वह सोच रही थी कि 'हाय! मुझसे कैसी अशिष्टता हो गयी।' वह मारे लज्जाके गड़ी जा रही थी। उसके मुँहसे शब्द नहीं निकल रहा था। वह चुप थी निःशब्द, मानो काठ मार गया हो। क्या कहे?

आवेशमें आदमी कहनेको कुछ कह जाता है, पर उसे बादमें अपने कार्यपर बड़ा पश्चात्ताप होता है। जैसे छोड़ा हुआ तीर वापस नहीं आ सकता, उसी प्रकार एक बार मुँहसे निकला हुआ शब्द भी कदापि नहीं लौटता। द्रौपदीकी हँसी क्या अब वापस आ सकती थी। वह संकोचमें चुप थी। सोचती थी चुप रहनेसे बात स्वयं ही टल जायगी। व्यर्थ ही क्यों बोलें, कहीं कुछ और अनुचित बात मुँहसे न निकल जाय।

पर भीष्म तो भीष्मपितामह थे। वे जबतक बातको स्पष्ट न कर दें शान्त नहीं रह पाते थे।

दुबारा आग्रहपूर्वक भीष्मने द्रौपदीसे कहा—

'पुत्री! संकोच मत करो। तुम मेरी बातपर हँसी थी। उस हँसीका कारण मैं अनुमान कर रहा हूँ। किंतु तुमसे उसे स्पष्ट करना चाहता हूँ।

अब द्रौपदी क्या करे?

कबतक चुप रहे। वह न भी कहे, तो भी भीष्म स्वयं ही उसे समझनेवाले थे। अब उनकी पुरानी आपबीती शब्दोंके रूपमें वह निकली। उन्हें वे दिन याद आ गये जब भरी कौरव-सभामें उनके सामने ही उनका अपमान किया गया था।

वे बोलीं, 'महात्मन्! आपके आजके धर्मोपदेश और उस दिनके वचनोंमें, जब मैं एकवस्त्रा होकर दुःशासनद्वारा अपमानित की जा रही थी और कौरवोंकी जुएकी सभामें आपसे धर्म-रक्षाके लिये कातर प्रार्थना कर रही थी, बड़ा अन्तर पाकर ही मुझे एकाएक हँसी आ गयी थी। क्षमा करें।'

'आज आप धर्मकी जो व्याख्या कर रहे हैं, उसे ही यदि मान लिया गया होता, तो हमारे कुलका नाश ही न हुआ होता। क्षमाकी प्रार्थना है।'

भीष्म थोड़ी देर चुप रहे। ऐसा मालूम होता था, मानो वे मन-ही-मन कुछ खोज रहे हैं। उनके मनमें तर्कका शीतल समुद्र उठ रहा था। अन्तमें वे बोले—

द्रौपदी! तुम्हारी शंका ठीक ही है। तुम्हारे इस प्रश्नसे मैं नाराज नहीं हूँ; पर शंकाका समाधान कर देना चाहता हूँ।

'कौरवोंकी सभामें मैं पैसेका दास था। जानते हुए भी मैं धर्मकी बात नहीं कह सकता था।

'उस समय धनको मैंने धर्मसे ऊँचा समझा था।'

द्रौपदी बोली, 'महात्मन्! यह कैसे? आप तो सदा धर्मको ही धनसे ऊँचा कहा करते हैं।'

भीष्मने उत्तर दिया, 'जिस आदमीके पाससे धन मिलता है, उसके पाप और पुण्यका भी असर उस रुपयेके साथ जुड़ा रहता है। पापसे कमाया हुआ धन विकार और वासना ही पैदा करता है। सब विकार उसमें इकट्ठे रहते हैं। पापसे अर्जित धन स्वयं तो नष्ट होता ही है, लेनेवालेको भी नष्ट कर देता है। उस पापपूर्ण धन और राजसी भोजनसे पैदा हुआ खून मेरी धमनियोंमें बहता था। उस दूषित रक्तसे मेरी बुद्धि भ्रष्ट थी। मैं क्या करता, विवेक साथ नहीं दे रहा था।

'आज अर्जुनके तीखे तीरोंने वह दूषित रक्त बहा दिया है।

मौत आ रही है। मैं संसारको त्यागनेवाला हूँ। मेरी दैवी बुद्धि अब निखर आयी है। मृत्युकी आसन्नताने संसारके मोह और रागका पर्दा, धनका लोभ मेरे सामनेसे हटा दिया है।

'मै साफ देख रहा हूँ कि जीवनमें धनकी उपासना—केवळ रुपया कमाना और भोग-विलासको ही जीवनका लक्ष्य बना लेना—मनुष्यको पिशाच बना देता है। वह क्षुद्र स्वार्थमें लगकर, केवळ अपना स्वार्थ साधनेके मोहमें दूसरोंका रक्त चूसकर ही धन संग्रह करता है। अपने अधीन व्यक्तियोंकी उचित माँग और सच्ची सलाह भी उसे पसंद नहीं आती, पाप और अत्याचार भी उसे बुरे नहीं लगते। धर्मकी रट लगाये रहकर भी वह अधर्म करता रहता है।

'इसलिये मै अपनी दैवी बुद्धि और विवेकके बलपर सत्य कहता हूँ कि धन, विलास, पापाचार, भोग इत्यादि जीवनका लक्ष्य नहीं है। वह भोग-विलास, यह धनकी उपासना (यह काळा बाजार, रिश्वत, कामचोरी, अनुचित लाभकी दुष्प्रवृत्ति) मनुष्यको डुबो देती है।

'धर्मके रास्तेपर चलना ही मनुष्यता है। ईमानदारी, सत्यनिष्ठा और आत्मसंयम ही भगवान्‌का मार्ग है।

'जहाँ केवल धनकी उपासना है, वहाँ पाप है और उसमें दुर्मति हो सकती है। दुष्टता, अत्याचार, अन्याय और क्रूरता भी रह सकते हैं। धर्म और अन्यायोपार्जित अर्थ—दोनोंकी उपासना एक साथ वैसे ही नहीं हो सकती, जैसे सूर्य और अन्धकार एक साथ नहीं रह सकते।'

द्रौपदीकी शंकाका समाधान हो गया।



वे सब हमें छोड़ जाते हैं, पर यह हमको नहीं छोड़ता !

हम असंख्य व्यक्तियोंसे मित्रता करते हैं, पर एक समय वह आता है जब वे हमें छोड़ जाते हैं। हम अकेले रह जाते हैं। बिल्कुल अकेले!

हम अनेक मकान, जमीन, जायदाद, आराम और सुख-सुविधाकी असंख्य वस्तुएँ सग्रह करते हैं। बड़ी सावधानीसे उन्हें सहेजते है, टूटनेपर दुरुस्त कराते हैं; किंतु वे हमें छोड़ देती हैं। हमसे उनका कोई निकट सम्पर्क नहीं रह पाता।

हमारे बन्धु-बान्धव, इष्ट-मित्र, सगे-सम्बन्धी, पद-अधिकार, सार्वजनिक सम्मान, ऊँचे ओहदे तथा अधिकार——सब हमें अकेला छोड़ देते हैं। कोई भी सदा-सर्वदा हमारा साथ नहीं देता। हमेशा हमारे साथ नहीं रहता। हमारा अपना हितैषी और परम सुहृद् इनमें कोई नहीं है। सभी थोड़ी देरके साथी है, जैसे मार्गके मुसाफिर!

किंतु एक ऐसी चीज है, जो सदा-सर्वदा जन्मसे——उसके भी पहलेसे हमारे साथ रहती है और मृत्युके बाद भी हमारे साथ जाती है।

आप पूछते है, वह क्या है? हम उसे लेना चाहते हैं, पहचानना चाहते हैं, सदाके लिये अपनाना चाहते है। उस मित्र हितैषी सहायकका नाम बताइये?

उत्तर व्यासजीके शब्दोंमें सुनिये——

एकः प्रसूयते विप्रा एक एव हि नश्यति।
एकस्तरति दुर्गाणि गच्छत्येकस्तु दुर्गतिम्॥
असहायः पिता माता तथा भ्राता सुतो गुरुः।
ज्ञातिसम्बन्धिवर्गश्च मित्रवर्गस्तथैव च॥

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं जनाः ।
मुहूर्तमिव रोदित्वा ततो यान्ति पराङ्मुखाः ॥
तैस्तच्छरीरमुत्सृष्टं धर्म एकोऽनुगच्छति ।
तस्माद्धर्मः सहायश्च सेवितव्यः सदा नृभिः ॥

(ब्रह्मपुराण २१७ । ४—७)

याद रखिये मनुष्य अकेला ही जन्मता है, अकेला ही मरता है, अकेला ही दुर्गम कठिनाइयोंको पार करता है और अन्तमें (अपने दुर्गुणों और पापोंके कारण) दुर्गतिको प्राप्त होता है।

पिता मरनेवालेका साथ नहीं दे सकता, माता उसके साथ नहीं जा सकती, भाई कुछ सहायता नहीं कर सकते, पुत्र काम नहीं आ सकता, गुरु भी दूर हट जाता है । जाति-बिरादरीवाले मरघटतक पहुँचाकर लौट आते हैं। सम्बन्धी और मित्रवर्ग इनमेंसे कोई भी मरनेवालेका साथ नहीं दे सकते ।

घरके लोग मृत व्यक्तिके शरीरको लकड़ी और मिट्टीके ढेलेकी तरह त्यागकर अलग खड़े हो जाते हैं।

वे घड़ीभर रोकर रह जाते हैं । चिताको जलती छोड़ प्राणीसे मुँह मोड़कर चले जाते हैं। वे सब उसे छोड़ जाते हैं—

पर 'धर्म' उसको नहीं छोड़ता ।

धर्म अकेला ही मनुष्यके साथ जाता है। वह मरनेपर भी युग-युगतक मनुष्यका त्याग नहीं करता ।

अतः संसारमें धर्म ही मनुष्यका सच्चा सहायक है । वही मनुष्यका सच्चा मित्र, सम्बन्धी, पिता-माता और गुरु है।

इसलिये मनुष्यको शाश्वत—सदा साथ चलनेवाले इस धर्मका सतत सेवन करना चाहिये ।

हमारा मानसिक धर्म

'धर्म' बड़ा व्यापक और महान् शब्द है। इसमें बड़ा अर्थ समाया हुआ है। सम्पूर्ण धर्मकी व्याख्या कौन कर सका है।

लेकिन धर्मके मूल तत्त्व हम जान सकते है। इन आधारभूत तत्त्वोंको जीवनमें उतार सकते हैं। इनसे जीवनको सुखी, शान्त और तृप्त बना सकते हैं। उन्नति कर समाजमें लाभ उठा सकते हैं। स्वयं मनमें शान्ति-लाभ कर सकते हैं। वह हमारा धर्म क्या है ?

लीजिये सुनिये—

मानसं सर्वभूतानां धर्ममाहुर्मनीषिणः।
तस्मात् सर्वेषु भूतेषु मनसा शिवमाचरेत् ॥

(महाभारत, शान्ति० १९३ । ३१)

अर्थात् बुद्धिमान् सब प्राणियोंके लिये मुख्य धर्म मानसिक धर्मको कहते हैं। वह मानसिक धर्म क्या है ?

सब प्राणियोंके सम्बन्धमें अपने मनमें सदा कल्याणकी भावना रखना। मन-वचन-कर्मसे किसीका बुरा न चाहना ही मानसिक धर्म है। जैसा हम मनमें दूसरोंके लिये विचार करते हैं, वैसा ही वातावरण तैयार होता है। दूसरोंके प्रति ईर्ष्या, द्वेष या क्रोधका भाव हमारे गुप्त मनमें विषैले वातावरणका निर्माण करता है। फिर यही हमें महान् हानि पहुँचाता है। दुर्भावसे हम स्वयं भी उद्विग्न बनते हैं।

इसके विपरीत, 'सब सुखी रहें, सबकी उन्नति हो, सब स्वस्थ रहें, सबको समृद्धि मिले'—ये भाव रखनेसे स्वयं हमारा मन तृप्त रहता है, दूसरोंको भी हमारे आशीर्वादसे लाभ पहुँचता है।

मनसः प्रतिकूलानि प्रेत्य चेह न चेच्छसि।
भूतानां प्रतिकूलेभ्यो निवर्तस्व यतेन्द्रियः ॥

हे मानव ! तू इस संसारमें और दूसरे लोकमें भी मनकी प्रतिकूल भावनाओंको नहीं चाहता । अतः संयम करके तुझे भी प्राणियोंके प्रतिकूल कर्मका आचरण नहीं करना चाहिये ।

जिन कार्यों या विचारोंसे प्राणियोंकी भलाई या उन्नति नहीं होती, जिनसे किसीको प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष लाभ नहीं होता, वे अधर्म और पापमूलक हैं ।

मनुष्य होकर भी जो किसीका कोई उपकार नहीं करता, उसके जीवनको धिक्कार है । उससे अच्छे तो वे पशु हैं, जिनका चमड़ा मरनेपर दूसरोंके काम आता है ।

शीलयुक्त स्वभाव, शौर्य, आलस्यका अभाव, विद्या और अच्छा मित्र—ये पाँच धार्मिक अक्षय निधियाँ हैं, जिन्हें न कोई चुरा सकता है, न अपहरण कर सकता हैं । इन्हें उत्तरोत्तर विकसित करना धर्मका अङ्ग है ।

असता धर्मकामेन विशुद्धं कर्म दुष्करम् ।
सता तु धर्मकामेन सुकरं कर्म दुष्करम् ॥

जो मनुष्य धर्म-जैसे दैवी गुणकी कामना तो करता है, परंतु अपने आचरणको शुद्ध नहीं बनाता, उसके लिये शुद्ध कर्म करना कठिन है; परंतु जो धर्मकी कामना करनेवाला आचरणको भी शुद्ध बनाता है, वह कठिन कार्यको भी आसान कर लेता है ।

धर्म हमारे आचरणसे प्रकट होना चाहिये । अनेक बार हम धर्मका ढोंग करते रहते हैं । अपनी पशुवृत्तियोंतकको संयमित नहीं करते । इन पशुवृत्तियोंको काबूमें रखना, सबसे मधुर और शिष्ट बातें तथा व्यवहार करना, कभी कुशब्दोंका प्रयोग न करना, सबसे 'आप' कहकर सम्बोधन करना, सबके प्रति सम्मान प्रदर्शित करना,

दूसरोंके सद्गुणोंकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करना, अपने वायदेको पूरा करना—ये सब हमारे दैनिक आचरणके अङ्ग है। जो धर्म-जैसे दैवी गुणको ग्रहण करनेका सम्मान लेना चाहते हैं, उन्हें अपना आचरण सभ्य और सुसंस्कृत बनानेका प्रयत्न करना चाहिये। धार्मिक व्यक्तिको समाजमें पूरी तरह शिष्ट और मधुर होना चाहिये। शुद्ध और सत् आचरण ही धर्मका अङ्ग है।

धर्मस्य विधयो नैके ये वै प्रोक्ता महर्षिभिः।
स्वं स्वं विज्ञानमाश्रित्य दमस्तेषां परायणम्॥
(महाभारत, शान्ति० १६० । ६)

महर्षियोंने अपने-अपने दृष्टिकोणसे धर्मके अनेक भेद कहे हैं। पर उन सबमें दम—आत्म-संयम सर्वोत्कृष्ट है।

आत्म-संयमसे अर्थ है—स्वयं अपने आपको सुधारने, विकसित करने, बुराइयाँ त्यागने तथा काम, क्रोध, मोह, लोभ और इन्द्रिय-विकारोंको रोकनेका प्रयत्न करना। आत्म-संयमीका अपनी इन्द्रियोंपर काबू होता है। तनिक-सा भी विकार या दुर्गुण उसे सहन नहीं होता। पान, बीड़ी, सिगरेट, चाय, कोको, कहवा, गाँजा, चरस, शराब इत्यादि कोई व्यसन उसके पास नहीं फटक सकते। व्यभिचार और अनैतिकता तो उसे किसी भी तरह आकृष्ट नहीं कर सकते। वह अपनी पाशविक वृत्तियोंपर कठोर नियन्त्रण रखता है।

धार्मिक व्यक्तिको अपने मनपर कठोर नियन्त्रण रखना चाहिये। गंदा विचार, गंदे स्थान, गंदे दृश्य कदापि नहीं देखने चाहिये। मनकी स्वच्छता धर्म है—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
चित्ते चलति संसारो निश्चले योग उच्यते॥

स्मरण रखिये, आपका विकारोंसे भरा हुआ मन ही आपके कल्पित भय और बन्धनोंका कारण है। स्वच्छ और निर्मल मन ही आपको सुख, शान्ति, मोक्ष प्रदान करनेवाला मित्र है। चित्तको भली दिशाओंमें चलाने और शक्ति-साहसके विचार धारण करनेमें ही धर्म है, योग है। मनको गलत दिशाओंमें वहकने देनेसे सारा संसार प्रपञ्च दीखता है। इसी चित्तके ठिकाने रहनेसे, स्थिर और संतुलित रहनेसे ही मोक्ष है।

पूर्णे मनसि सम्पूर्णं जगत्सर्वं सुधाद्रवैः।
उपानद्गूढपादस्य ननु चर्मावृतैव भूः॥
(योगवाशिष्ठ ५।१२।१४)

यदि मनपर काबू हो गया, तो सारा संसार अमृतसे भरा हुआ दीखेगा। पैरमें जूता पहन लेनेसे सारी पृथ्वी चमड़ेसे ढकी हुई प्रतीत होती है।

दमात् तस्य क्रियासिद्धिर्यथावदुपलभ्यते।
दमो दानं तथा यज्ञानधीतं चातिवर्तते॥
(महा० शा० १६०।८)

याद रखिये, जो मनुष्य आत्मसंयमी नहीं है, उसकी कोई क्रिया सफल नहीं होती। आत्मसंयम दान, यज्ञ और ज्ञानसे भी बढ़कर है।

सत्यार्जवे धर्ममाहुः परं धर्मविदो जनाः।
दुर्ज्ञेयः शाश्वतो धर्मः स च सत्ये प्रतिष्ठितः॥
(वनपर्व० २०९।४२)

धर्मका रहस्य जाननेवाले सत्य और सरलताको परमधर्म कहते हैं। शाश्वत धर्मका ज्ञान कठिनाईसे होता है, परंतु वह शाश्वतिक धर्म सत्यमें ही पाया जाता है।

हम वास्तवमें जैसे नहीं हैं, वैसे दिखानेका ढोंग करना अधर्म है। धर्ममें नकलीपन या धोखेबाजी नहीं चल सकती। यदि हम सच्चे सेवी हैं, सच्चे नेता हैं, सच्चे समाजसुधारक हैं, तब ही अपने आपको सेवक, नेता या समाजसुधारक कहें। व्यावहारिक जीवनमें कपट और नकली पनको कदापि स्थान न दें। धर्म अभिनयमें नहीं है।

हम प्रायः देखते हैं कि मनुष्य भगवा-वस्त्र पहिन, राम-रामवाले वस्त्रोंको धारणकर, हाथमें माला-कमण्डलु लेकर, दाढ़ी बढ़ाकर धर्मके नामपर या सफेद खादी पहन और गाँधी टोपी लगाकर देशभक्तिके नामपर जनताको पथभ्रष्ट करते हैं। उनके जीवनमें धर्मसे तनिक भी लाभ नहीं होता। यह असत्य आचरण धर्मका सबसे बड़ा शत्रु है। बाहर-भीतर एक होना धर्मका मूल तत्त्व, है। सच्चा धार्मिक व्यक्ति वह है जिसके जीवनमें छिपानेके लिये कुछ भी अवशेष न रह जाय। पारदर्शी काँचकी तरह सब कुछ उजागर रहे, स्पष्ट रहे। जहाँ कुछ छिपानेके लिये है, वहीं पाप है मनुष्य पापको छिपाता है, सत्य सूर्यकी भाँति दीप्तिमान् है। इसलिये दैनिक जीवन और सार्वजनिक व्यवहारमें सच्चे बनिये, बनावटीपन, ढोंग, धोखेबाजीका तुरंत परित्याग कर दीजिये।

सत्यसे ही पृथ्वी स्थिर है। सत्यसे ही सूर्य प्रकाश देता है। सत्यसे ही वायु बहती है। सब कुछ सत्यके ही बलपर स्थिर है।

ये कुछ तत्त्व धर्मके अङ्ग हो सकते हैं। इनके शुद्ध विकाससे मनुष्य शान्त सुखी और स्वस्थ रह सकता है। समाज और देशका उपकार कर सकता है। धर्म हमारी नैतिकता, बुद्धि और सन्मतिका विकास करता है। हमें सच्चे अर्थोंमें मनुष्य बनाता है।

धर्मो योनिर्मनुष्याणां देवानाममृतं दिवि ।
प्रेत्यभावे सुखं धर्माच्छश्वत्तैरुपभुज्यते ॥
सदाचारः स्मृतिर्वेदास्त्रिविधं धर्मलक्षणम् ।
चतुर्थमर्थमित्याहुः कवयो धर्मलक्षणम् ॥
असाधुभ्योऽस्य न भयं चोरेभ्यो न च राजतः ।
अकिंचित्कस्यचित् कुर्वन्निर्भयः शुचिरावसेत् ॥
सर्वं प्रियाभ्युपगतं धर्ममाहुर्मनीषिणः ।
पश्यैतं लक्षणोद्देशं धर्माधर्मे युधिष्ठिर ॥

(महा० शान्ति०)

'धर्म मनुष्योंका मूल है, धर्म ही स्वर्गमें देवताओंको अमर बनानेवाला अमृत है, धर्मका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य मरनेके अनन्तर नित्य सुख भोगते है ।,

'परम्परागत सदाचार, स्मृति और वेद—ये तीनों धर्मके स्वरूपका बोध करानेवाले हैं । विद्वान् पुरुषोंने प्रयोजन अथवा फलको भी धर्मका चौथा लक्षण माना है (अर्थात् जिसका उद्देश्य एवं परिणाम शुभ है, वह धर्म है) ।'

'जो किसीका कुछ भी अनिष्ट नहीं करता, उसे न दुष्टोंसे भय है, न चोरोंसे और न राजासे ही । वह परम पवित्र एवं निर्भय होकर रहता है ।'

'युधिष्ठिर ! जो बर्ताव अपनेको प्रिय जान पड़ता है, वही सब यदि दूसरोंके प्रति किया जाय तो उसे मनीषी पुरुष धर्म मानते हैं । संक्षेपमें धर्म-अधर्मको पहचाननेका यही लक्षण समझो ।'